



चौमासा

वर्ष-26 अंक-81
नवम्बर 09-फरवरी, 2010

सम्पादक
डॉ. कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र



आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल का प्रकाशन

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

सम्पर्क

आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादेमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल,
बाणगंगा, भोपाल-462003
E-mail : mplokkala@rediffmail.com

मूल्य

एक प्रति बीस रूपये
वार्षिक पचास रूपये
आजीवन सदस्यता पन्द्रह सौ रूपये
चौमासा का वार्षिक शुल्क अनुषंग पुस्तिका के साथ सौ रूपये

प्रचार/प्रसार

श्रीमती उर्मिला पारखे, प्रवीण गावण्डे

शब्दांकन

आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

आवरण

लौह शिल्प, बस्तर, अकादमी के संकलन से, छायांकन-श्री राजेन्द्र जांगले।

मुद्रण

शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय, भोपाल

- चौमासा में प्रकाशित सामग्री लेखकों के अपने कार्य और विचार हैं। आवश्यक नहीं कि अकादमी उससे सहमत हो।
- पत्रिका और प्रकाशन से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल रहेगा।

डॉ. कपिल तिवारी, निदेशक, आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक द्वारा शासकीय केन्द्रीय मुद्रणालय, मैदा मिल, भोपाल से मुद्रित कराकर आदिवासी लोक कला एवं तुलसी साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल, बाणगंगा, भोपाल से प्रकाशित।

सम्पादक-डॉ. कपिल तिवारी

इस अंक में

- साहित्य और जीवन / डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी / 5
- भारतीय साधना और ज्ञान परम्परा में नाथ सम्प्रदाय / प्रो. राजमति दिवाकर / 8
- लोक का रंगमंच / आशीष त्रिपाठी / 16
- रंगों की प्रवृत्ति / डॉ. ऋतुराज वासिष्ठ / 20
- लोकगीतों में नारी-सौंदर्य / डॉ. अर्जुनदास केसरी / 26
- छत्तीसगढ़ी परम्पराएँ / डॉ. पीसीलाल यादव / 32
- महानदी घाटी के लोक नृत्य / प्रो. अश्विनी केशरवानी / 40
- छत्तीसगढ़ी वाचिक परम्पराएँ / निरंजन महावर / 45
- उत्तरांचल में भवन निर्माण कला / डॉ. दिवा भट्ट / डॉ. जे.एस.खर्कवाल / 68
- अरुणाचल की वाचिकता / डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह / 72
- मालवी गीतों में जीवन / डॉ. शशि निगम, अरूण निगम / 74
- गालो जनजाति की लोकोक्तियाँ / डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय / 80
- बागरी लोक साहित्य और संस्कृति / डॉ. बिट्टो जोशी / 84
- तागिन जनजाति का महोत्सव : सी दोन्यी / तारो सिन्दिक / 89
- बस्तर के कुम्हार / डॉ. राजेश सिंह / 94
- लोकगाथा : गणीनाथ गोविन्द जी / अश्विनी कुमार आलोक / 102
- भोजपुरी आख्यान : शोभानयका / विद्या सिन्हा / 108
- लोक कला की परम्परा / डॉ. मोहनसिंह मावड़ी / 111
- कुमाऊँ और भारतीय कहावतें / प्रो. शेरसिंह बिष्ट / 115
- कमार जनजाति / डॉ. सुशील सोमवंशी 'नेताम' / 122
- स्वतंत्रता संग्राम और संत / जीवन सिंह ठाकुर / 140
- खाटू श्याम बाबा / बी.एल. द्विवेदी / 145



साहित्य और जीवन

डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी

यदि कोई मुझसे पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की महिमा केवल चार शब्दों में बताने के लिए कहे, तो मैं उत्तर दूँगा- साहित्य और जीवन का सामंजस्य। साहित्य के प्रति उनके दृष्टिकोण का एक उदाहरण एक बार उनकी चिट्ठी मिली कि 'वृन्दावन में संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के आश्रम में जाओ तो उनका दो सौ बावन बीघा महाकाव्य देखना।' मैंने ब्रह्मचारी जी से उनके महाकाव्य के प्रति जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होंने मुझे 'भागवती कथा' काव्य दे दिया, पर मैंने उनसे 'दो सौ बावन बीघा' काव्य के संबंध में पूछा, तब उन्होंने कहा कि 'दो सौ बावन बीघा' नाम का कोई काव्य तो मैंने नहीं लिखा, हाँ जो मेरा खेत है, वह दो सौ बावन बीघे का है। कृषियज्ञ को काव्य रचना की उपमा देकर उन्होंने किताबी दुनिया से बाहर आकर जीवन को देखने का पाठ पढ़ाया। साहित्य जीवन की ही एक प्रक्रिया है और जीवन के लिए है। जीवन के संदर्भों से दूर 'शब्दों के घटाटोप' से बनना ही क्या है? वे कहते थे कि- 'जिसे चलती-फिरती किताबों (अर्थात् मानवचरित) को पढ़ने का मौका मिला हो, वह निर्जीव सूखी किताबों को पढ़कर क्या करेगा?

बड़ी मेहनत से किताबों का मसाला इकट्ठा कर लेते, परन्तु किताबें लिखने का समय वे पत्र लिखने में बिता देते। जितनी किताबें नहीं लिखीं, उतने आंदोलन खड़े कर दिये। किताबें छपती तो लाइब्रेरी में सज जाती, पर उनका लेखन तो जनजीवन को उद्वेलित कर सकता था, करता था, क्योंकि उनकी मूल साहित्य चेतना जीवन के प्रवाह का अंग बन चुकी थी। मनुष्य और प्रकृति का अन्योन्य संबंध, जनगण की मैत्री, सांस्कृतिक स्वराज्य तथा सौहार्द्र और समता का भाव उनका मिशन था।

प्रवासी भारतवासी का प्रश्न हो या प्रांतनिर्माण का, बुन्देलखण्ड बावनी हो या घुमकड़ी दल की आयोजना, स्वाध्याय मंडल हो या समाज सेवक विद्यालय- वे आसपास के लोगों को बटोरते और उनसे कमर कस लेने को कहते। वे सोचते थे कि जनतंत्र की समस्याओं का समाधान जनता की भागीदारी से ही संभव है और उसके लिए जन-जागरण करना ही होगा।

वेद व्यास की गद्दी पर बैठकर जिन लोगों ने अपनी पैनी कलम का उपयोग आम, नीम, जामुन, पीपल और बरगद के पौधों की जड़ काटने के लिए किया है, ताकि एरंड को ही महावृक्ष सिद्ध किया जा सके, उनके सामने उदाहरण है कि पं. बनारसीदास चतुर्वेदी

ने नये लेखकों की नर्सरी बनायी, बाग लगाये जो आगे चलकर वन और उपवन बने। उनका सिद्धांत वाक्य था- कीरति के बिरवा कवि हैं, इनको कबहू कुम्हलान न दीजै। कवियों और साहित्य सेवियों की कीर्तिरक्षा के लिए उन्होंने अथक प्रयास किये- सत्यनारायण कविरत्न जयंती हो, पद्मसिंह शर्मा शताब्दी और श्रीधर पाठक ग्रंथावली हो या नाथूराम शर्मा शंकर स्मृतिग्रंथ। श्रमजीवी पत्रकारों के हितों की रक्षा का प्रश्न उठाया, वनों की रक्षा के लिए आवाज बुलन्द की। राज्यसभा की मेम्बरी के बारह वर्ष शहीदों के श्राद्ध में लगाये और स्वतंत्रता आन्दोलन में क्रांतिकारियों के योगदान को जनता के सामने लाये।

कस्मै देवाय हविषा विधेम? साहित्य रूपी यज्ञ का देवता कौन है? शब्द की आहुतियाँ हम किस देवता के लिए निवेदन करें? उनके 'कस्मैदेवाय' अग्रलेख ने इस प्रश्न पर बहस छेड़ दी कि लेखन प्रतिबद्ध और सोद्देश्य हो या उद्देश्यहीन? प्रतिबद्धता हो तो किसके प्रति हो? बतलाने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रश्न को लेकर विभिन्न मतवादों के अखाड़ों पर कितनी कसरत और कुशियाँ चलीं, पर न किसी मतवाद की घंटी उनके गले में बँधी और न ही कोई राजनैतिक उन्हें अपनी कंठी दे सका।

6 दिसंबर 1953 को उन्होंने श्री जगदीशचंद्र माथुर को पत्र लिखा- We worship the political power, knowing in our hearts of hearts, That it is क्षणभंगुर If you could only see the दरबारगीरी Of our poet and eminent writers, you will be disgusted. अपनी कलम की आजादी के लिए कितनी बड़ी कीमत पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने चुकायी थी, इसके साक्षी स्वयं महात्मा गांधी थे।

कहने को वैश्वीकरण का दौर चलता रहा है, परन्तु यह विश्व मानव की विराटता का नहीं, बाजार की भूमंडलीय सत्ता का दौर है, जिसके लिए मनुष्य केवल उपभोक्ता है और प्रकृति केवल कच्चा माल। बाजार में मनुष्यता का तोलमोल हो रहा है और साहित्य किताबों में दुबका हुआ मनुष्य की महिमा के इस क्षरण को टुकुर-टुकुर देख रहा है। पं. बनारसी दास चतुर्वेदी का अग्रलेख पूछ रहा है- कस्मै देवाय हविषा विधेम।

देशी-विदेशी चैनल अभिव्यक्ति की आजादी बताकर मनुष्य की दबी हुई पशुता और वासनाओं को उभारने वाले कार्यक्रम परोस रहे हैं। अपराध और आतंक की फसल को यूरिया खाद देने

वाले इस अभियान के विरुद्ध घासलेटी-आन्दोलन खड़ा करने समर्थ विश्वविद्यालयों के विभागों और खास-खास लोगों की मंडली में सिकुड़े हुए साहित्य के पास आयेगा भी कहाँ से? घासलेटी आंदोलन का वह आक्रामक मोर्चा, जिसके सामने चन्द हसीनों के खतूत अपनी मस्ती भूल गये। ऐसे आंदोलन जीवन और साहित्य के सामंजस्य का परिणाम होते हैं। ऐसे आंदोलन शब्द और आचरण की एकता से जन्म लेते हैं।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के ये पत्र बता सकते हैं कि किस प्रकार लोकचित्त का सहारा पाकर उनके विचार में आंधी, तूफान और बिजली जैसी ऊर्जा भर जाती थी और वह विचार आन्दोलन बन जाता था। उनके जिस आन्दोलन ने जनजीवन और साहित्य जगत को सबसे अधिक उद्वेलित किया, वह जनपद आन्दोलन है। जनता में साहित्य बसे और साहित्य में जनता बसे। फरवरी 1934 के विशाल भारत में उन्होंने लिखा, जब तक जनपदों का साधारण जन जागरित नहीं होता, जब तक उसकी नस-नस में बिजली का संचार नहीं होता, तब तक राष्ट्र की प्रगति कैसे हो सकती है? अकेले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बूते की बात नहीं है कि वह साहित्य का अमृत संदेश उस अंतिम व्यक्ति तक पहुँचा सके जो सुदूर देहात के खेतों-खलिहानों में काम कर रहा है। अब समय आ गया है कि हम ब्रज साहित्य मंडल, अवध साहित्य मंडल तथा बुन्देल साहित्य मंडल जैसी सहस्रों सांस्कृतिक इकाइयों की स्थापना करें, जहाँ से साधारण जनता स्वस्थ मानसिक भोजन, प्रेरणा और स्फूर्ति प्राप्त कर सके।

भाषा और संस्कृति के लोकतन्त्र की यह आवाज पूरे देश के जनपदीय जीवन में गूँजी- हे सिंहासन के देवता! अब जनजीवन के बीच पधारो। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा कि 'साहित्य का नगरों में पालापोसा गया जो रूप है और जिसे भगवान चरक की भाषा में हम 'कुटी प्रावेशिक' कह सकते हैं, उसके दायरे से बाहर निकल कर जनपदों में स्वच्छंद वायु और आतप में पनपने वाले साहित्य के वातातपिक-स्वरूप की परख करने में हम जितने अग्रसर होंगे, साहित्य और जनता के बीच गहरी खाई पाटने में उतने ही सफल होंगे।'

जनपद आंदोलन ने हमें साहित्य की इस अविच्छिन्न वाचिक परम्परा या श्रुति परम्परा से जोड़ा, जहाँ मनुष्य केवल वर्तमान नहीं युगंधर है, बीते युगों का Epitome। जनपद आंदोलन ने बताया

कि जनपदीय साहित्य अनिवार्य रूप से जनपदीय बोली अथवा लोकभाषा में होता है और जनपदीय जीवन में रचा-बसा होता है। वह एक ओर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमण करता है तो दूसरी ओर एक जनपद से दूसरे जनपद में जाता है तथा दूसरे से तीसरे जनपद में पहुँचता है। जहाँ पहुँचता है, वहाँ की भाषा में कायाकल्प कर लेता है। देवेन्द्र सत्यार्थी ने भारत वर्ष के भिन्न-भिन्न जनपदों की तीर्थयात्रा करके ऐसी गाथाओं-गीतों के उदाहरण प्रस्तुत कर दिये, जो ब्रज और राजस्थान से चले और कर्नाटक तक पहुँचे। गूगापीर और सुरही की जनपदीय यात्रा का भूगोल सामने आया तो जनपद आंदोलन ने बता दिया कि जनपद तो घाट है, गंगा नहीं। गंगा तो मनुष्य के सामूहिक जीवन की अविच्छिन्न परम्परा है। जनपद आन्दोलन ने मनुष्य को जीवन की समग्रता में देखा। मुस्लिम परिवार में उसने जच्चा गीत सुना- 'अलबेली जच्चा मान करै नंदलाल से' और हिन्दू परिवार के आंगन में सुना- 'सैयद सोये गोद में दै दै गहरी नींद जगाबै बीबी फातिमा।' जनपद आन्दोलन ने जनपदीय जीवन में उतर कर प्रत्यक्ष देखा कि जाति-पाँति, वर्ण-वर्ग, धर्म-संप्रदाय की रेखायें कितनी सतही हैं और मनुष्य की सामूहिक संवेदना कितनी गहरी है। जनपद आंदोलन ने प्रकृति, मनुष्य और संस्कृति के अन्योन्य संबंध का साक्षात् किया।

जनपद आन्दोलन का बहुत तीखा विरोध भी हुआ और ऐसा स्वाभाविक भी था, क्योंकि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह एक क्रांति थी, परन्तु पं. बनारसी दास चतुर्वेदी का व्यक्तित्व इतना उदार था, उनका हाजमा इतना दुरुस्त था कि वे सारे विरोध को पचा गये, इसलिए विरोध के बावजूद जनपद आन्दोलन व्यापक और प्रचंड होता चला गया। इतने प्राणवान् लोग जनपदीय-जीवन में उतर आये थे- भोजपुरी में महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन और कृष्णदेव उपाध्याय, बुन्देलखण्ड में कृष्णानंद गुप्त, गौरी शंकर द्विवेदी, रामचरण हयारण, मालवा में श्याम परमार, निमाड़ में रामनारायण उपाध्याय, मैथिली में राम इकबाल सिंह 'राकेश', छत्तीसगढ़ में श्यामाचरण दुबे, राजस्थान में देवीलाल सामर। अकेले डॉ. सत्येंद्र ने ब्रज साहित्य मंडल के सत्तर ग्राम केन्द्र स्थापित किये। 1952 में ब्रज साहित्य मंडल का हाथरस- अधिवेशन हुआ, तो भारत के राष्ट्रपति राजेंद्रबाबू पधारे और उनके सान्निध्य में विभिन्न लोकभाषाओं के प्रतिनिधि आये तथा आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में अन्तर जनपदीय परिषद् बनी और उसके मुख पत्र

'जनपद' का सम्पादन सम्हाला-आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल ने।

लोकभाषाओं का प्रवाह अब इतना तीव्र हो चुका है कि इसे रोकने की बात तो असंभव कल्पना है ही, इसकी अनदेखी भी नहीं की जा सकती। जिस प्रकार हिमालय से निकली अनेक छोटी-छोटी धारायें एक दूसरे में समाहित होकर गंगा बनती हैं, आगे चलकर अनेक नदियाँ अपने को गंगा में विलीन करती हैं और अंत में जनजीवन का पापताप हरण करते हुए गंगा स्वयं भी महासागर में समा जाती है। उसी प्रकार जनपदीय भाषाएँ राष्ट्र भाषा की प्राणधारा हैं। भाषाओं का फैसला सेमिनारों में नहीं, जनता के जीवन में होता है। भाषाओं के पारस्परिक संबंध और एकता का आधार विभिन्न जनपदों और प्रान्तों की जनता की पारस्परिक घनिष्टता और संवाद है।

भिन्न-भिन्न प्रदेशों में वहाँ की लोकभाषाओं की अकादमियाँ और स्वयं सेवी संस्थाएँ कार्यरत् हैं, विश्वविद्यालयों में भी लोक भाषाओं के विभाग बन गये हैं, आकाशवाणी के रीजनल केन्द्रों से नियमित रूप से लोकभाषाओं के साहित्य का प्रसारण किया जाता रहा है, इतनी पत्रिकाएँ निकली हैं तथा लोकजीवन और संस्कृति के विविध पक्षों पर इतने अनुसंधान हुए हैं कि उस सबका आकलन करने के लिए हिन्दी जनपदीय साहित्य वृहद इतिहास लिखे जाने की आवश्यकता है। लोकजीवन के अन्तर जनपदीय तथा अन्तर-प्रान्तीय अध्ययनों की आवश्यकता है और भारत की समग्र लोक संस्कृति के साक्षात्कार के लिए भारतीय लोकवार्ता कोश की आवश्यकता है। इनसे भी पहले उस साझे मंच की आवश्यकता है, जिसे पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जनपदीय भाषाओं का मायका कहा करते थे, जिस प्रकार सगी बहनें मायके में जाकर अपने मन की बातें करती हैं, उसी प्रकार ऐसा केन्द्र बने जहाँ विभिन्न जनपदीय और प्रान्तीय भाषाएँ पारस्परिक संवाद बढ़ायें, अन्तर जनपदीय सौमनस्य और सहकार बढ़े, क्षेत्रीयता के जोश की जगह अन्तर जनपदीय दृष्टिकोण का विस्तार हो। पं. बनारसी दास चतुर्वेदी के जीवन का मिशन साहित्य और जीवन का सामंजस्य था और जनपद आंदोलन लोकजीवन और लोकचेतना की गहराई में विद्यमान अक्षय ऊर्जा के अजस स्रोत की पहचान है। साहित्य के सामने यह एक प्रश्न है कि क्या लोकमंगल से बड़ी साहित्य की कोई कसौटी है? और क्या लोक जीवन से बड़ा साहित्य का कोई गंतव्य है?

भारतीय साधना और ज्ञान परम्परा में नाथ सम्प्रदाय

प्रो. राजमति दिवाकर

भारतीय ज्ञान परम्परा तत्त्वार्थ का बौद्धिक विमर्श और मात्र वैचारिक स्थापना न होकर साधना के आध्यात्मिक स्वानुभव की दर्शन परम्परा है। यहाँ 'दर्शन' का अर्थ 'प्रत्यय' और सिद्धांत न होकर समष्टि की ज्ञानात्मक स्वानुभूति अधिक है। इसी कारण भारतीय ज्ञान परम्परा के अर्थार्थ को साधना की विविध आध्यात्मिक परम्पराओं से पृथक कर नहीं समझा जा सकता। विभिन्न धार्मिक-आध्यात्मिक सम्प्रदायों की अपनी विशिष्ट साधना पद्धतियाँ रही हैं। इनमें दीक्षित साधकों के अपने स्वानुभव, परवर्ती कालों में इन सम्प्रदायों के सिद्धांत की तरह प्रस्तावित किये गये हैं। दार्शनिक सैद्धांतिक प्रस्तावनाओं की एक लम्बी परम्परा में, भाष्य और टीकाएँ भी की गई हैं- हम चाहें तो इन्हें 'दर्शन' की बौद्धिक प्रस्तावनाओं की तरह मान सकते हैं। इन्हें भी विशिष्ट सम्प्रदायों के तत्त्वार्थ के गुरुकुल और एक सम्प्रदाय की सुदीर्घ विचार परम्परा की तरह समझना चाहिये।

'नाथ सम्प्रदाय' भारत में आध्यात्मिक साधना और तत्त्वार्थ की एक विशिष्ट परम्परा है। इस मत के आदिगुरु 'नाथ रूपी' परमेश्वर हैं। मत्स्येन्द्र, गोरक्ष, जालन्धर, चर्पटी, चतुरंगी और विचारनाथ आदि सिद्ध पुरुष, इस मत के विशेष प्रसिद्ध प्रचारक रहे हैं। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने उल्लेख किया है-अभिनव गुप्त ने 'तन्त्रालोक' में जिस 'अर्धत्र्यम्बक-मार्ग' अथवा 'तुरीय मार्ग' का उल्लेख किया है, कुछ आचार्यों के मत से वह नाथ मार्ग का ही प्राचीन रूप है- कहीं-कहीं यह मत 'अति मार्ग' नाम से भी परिचित है।

'सिद्ध सिद्धांत पद्धति', 'सिद्ध सिद्धांत संग्रह', 'विवेक मार्तण्ड', 'नाथ सूत्र', 'गोरक्ष उपनिषद्', 'निरंजन पुराण', 'योगबीज', अमनस्क आदि ग्रन्थ इसी सम्प्रदाय के हैं। 'अवधूत सम्प्रदाय' से नाथ सम्प्रदाय का सम्बन्ध था।

नाथमत में परतत्व या परब्रह्म को अव्यक्त, अनाथ एवं अनादि निधन कहा गया है- उनकी एक स्वरूपभूत शक्ति (निज शक्ति) है, जो उनसे सर्वथा अभिन्न है, साधारणतः उसे इच्छा स्वरूप में जाना जा सकता है। स्वातन्त्र्य ही उसका स्वरूप है- उन्मेष फलस्वरूप उससे पराशक्ति का आविर्भाव होता है। आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत प्रस्तावना और भक्ति आन्दोलन के पूर्व नाथ और सिद्ध सम्प्रदाय ही भारतीय लोक जनपदों में प्रभावशील धर्म-सम्प्रदाय रहे हैं। परवर्ती कालों में इस पर शाक्त और शैव आगम का ही प्रभाव पड़ा। कुछ अध्येता तो इसे शिव-शक्ति रूप तथा योग और तंत्र का मिश्रित सम्प्रदाय भी मानने लगे थे। आठवीं-नौवीं सदी तक शिव-शक्ति मूर्तियाँ तंत्र साधना का प्रतीक ही बन गयीं। इसी समय नाथों की परम्परा की योग साधना का भी गहन प्रभाव था। इसी मत से शाक्त और

कश्मीरी शैव साधक (लौकिक) रूप से उभरे, जिसमें तंत्र-मंत्र, श्रीविद्या साधना, पंचमकार-साधना, षट्चक्र अनुसंधान विधि आदि प्रभावशील थे। शाक्तों की साधना के भारत में पचहत्तर से अधिक शक्तिपीठ स्थापित हुए। माध्वाचार्य ने 'सर्व दर्शन संग्रह की टीका' में उल्लेख किया है कि 'शिव-शक्ति' के उपासक रूपों में 'लकुलीश', 'कापालिक', 'कालमुखी', 'रूद्रतांत्रिक' आदि विरोधी पंथ उस समय प्रचलित रहे, जो 'नाथ सम्प्रदाय' के समानान्तर चलते रहे और बाद में उन्हीं में शामिल हो गये। इससे साफ पता चलता है कि ईसा की 10वीं से 12वीं सदी तक नाथ साधना अत्यन्त लोकप्रिय हो चुकी थी।

नाथ सम्प्रदाय के साधक नाथपंथ को अनादिकाल से प्रचलित मानते हैं। 'नाथ पंथ' नामक अपनी पुस्तक में प्रसिद्ध अध्येता डॉ. शांति प्रसाद चंदोला ने लिखा- 'नाथ सृष्टि' ब्रह्मा की सृष्टि से भिन्न है। ब्रह्मा व विष्णु की उत्पत्ति सलिल से होती है। यह सृष्टि अज्ञान आवरण से आच्छादित है और हिंसावृत्ति से जीवन यापन करती है। राग-द्वेष, लोभ मोहादि से भयकातर है, तथा संशय से सुख-दुख व धर्म को प्राप्त है। यह सृष्टि विष्णु के पालन से चलती है। किन्तु नाथ, सदाशिव की 'अखण्ड सृष्टि' से उत्पन्न है और 'शिवत्व' में 'पूर्णत्व' मानती है। इससे लगता है कि नाथ पंथी योगी 'सदा शिव' की साधना करते हैं। वे काया को 'सिद्धदेह' या 'सिद्ध काय' कहते हैं, क्योंकि गुरु द्वारा सिद्ध की विभूति दी जाती है और उससे ही साधना की शुरुआत मानते हैं- जो योगी साधना से सिद्ध-काया को पा लेता है। वही योगेश्वर शिव का साधक और अवधूत शिव बनता है- वही नाथ पद का अधिकारी कहलाता है।

नाथपंथ पुस्तक में चंदोला शिवतत्व का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं कि 'नाथों के शिव ही विधेश्वर हैं, वे ही अवधूत शिव हैं। त्रिपुर तत्त्व पर लिखी हुई नित्योस्व टीका में नाथों की वंदना से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि 'नत्वा नाथ पराशिव मुखां विधेश्वरं महाराज्ञो तदीयप्रतनां नाथां तदन्त पराम्।' इससे स्पष्ट है कि नाथ सम्प्रदाय के इष्ट-आदि-प्रभु सदाशिव ही हैं। वस्तुतः जो साधना लोक-चित्त में अपना स्थान बना लेती है, वही तो जनमानस में आध्यात्मिक-प्रभाव वर्षों वर्ष-स्थायी रखती है, यह-नाथपंथियों ने किया। कबीर-दादू नक आदि पर उनका प्रभाव देखा जा सकता है।

नाथ सम्प्रदाय के सम्बन्ध में लम्बे समय तक विविध धारणाएँ प्रचलित रही हैं। नाथ शब्द का प्रयोग भी कई रूपों में मिलता है, जैसे जैनों के प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ को नाथपंथी अपना योगेश्वर

मानते हैं। नाथ शब्द नया नहीं 'नाथान्त' नाम वालों को शिव का रूप मानते हैं। 'गोरक्ष सिद्धांत संग्रह' में नाथ शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'ना' का अर्थ है अनादिरूप शिव और 'थ' का अर्थ है स्थापित होना। 'हठयोग प्रदीपिका' में व्याख्या है कि 'ना' अर्थात् संसार से मुक्ति यानी मोक्ष का मार्ग ज्ञात कराने वाला और 'थ' का अर्थ, संसार के अज्ञान को स्थगित करने वाला अर्थात् आदिनाथ के आशय से हठयोगी ब्रह्मरूप शिव का साक्षात्कार करता है और अज्ञान और अविद्या से युवा साधक की भी संसारिक माया नष्ट होती है। इसी कारण नाथ शब्द अनादिशिव और संसार की माया को स्थगित करने के कारण दोनों पक्ष के एक साथ सिद्ध होते हैं, इसीलिए 'नाथ' शब्द का व्यवहार किया जाता है 'यथो' 'ना' अकारोड्नादिरूपं थकाराः स्थापित सदा। भुवनत्रय-मेवैकः श्री गोरक्ष नमोस्तु ते। गोरक्ष सिद्धांत संग्रह में नाथ शब्द की गति को बताने वाला है और संसार सागर से पार उतरने वाली नौका का प्रतीक है एवं सिद्ध-देह पाकर अवधूत नाथपंथी योगेश्वर का पर्याय बनकर अपनी लम्बी साधना के द्वारा तीनों लोकों से ऊपर जाता है। वस्तुतः ज्ञान के प्रकाशित साक्ष्य का रूप शिव है, जो शक्ति के साथ व्याप्त है, यही शिव की शक्ति सृष्टि का आदिवाक् है। वह स्थिति है, वह प्रकृति है, और वही शिव की श्रुति भी है। काल-कल्याण रूप है, ओंकार स्वरूप वाला है, काल रूपी शिव आगम का मूलभूत सार है। वे शिव की अपनी शक्ति के साथ दिक् का आधार लेकर दिक्काल में समाये हुए हैं। नाथ और सिद्ध साधना में योगेश्वर 'शिव' ही हैं, जो शक्ति की साधना से शाक्त आगम में परमपद भागीदार शिव हैं और यही परमशिव की आराधना, शैवागम के मूल में है।

शाक्त साधना परमशिव की बामा शक्ति आद्यशक्ति के रूप में साधक की इष्ट बनती है, वे इन्हें सदाशिव की महाशक्ति मानकर साधना करते हैं। शाक्त आचार भी चार प्रकार हैं- वामाचार दक्षिणाचार, कौलाचार और सिद्धांताचार। नाथपंथी कौलाचार को श्रेष्ठ मानते हैं, कुछ वामाचार को भी महत्त्व देते हैं। नाथपंथ में कौलाचार अवधूत मार्गियों की साधना का अंग है। शाक्तागम में कौलतंत्रों का विशेष वर्णन है। शाक्त आगम में 'तंत्र' तीन प्रकार के बताये गये हैं- आगम, यामल और डामर। सात्त्विक गुणों को आधिकारिक मानकर जिन तंत्रों को उपदिष्ट किया जाता है, उन्हें आगम। राजस गुणों को लेकर जिन तंत्रों को उपदिष्ट किया जाता है उन्हें यामल और तामसिक गुण वाले उपदिष्ट तंत्र को डामर तंत्र कहते हैं। तांत्रिकों और अवधूतों के क्रियाकलाप में नाथमत अंतर मानता है। तांत्रिक साधना की क्रियाओं, षट्चक्र भेदन आदि को

महत्त्व देते हैं और नाथ कपाल क्रिया एवं सहस्राचार में अमृत आनंद को महत्त्व देते हैं। इन्हें कापालिक भी कहा गया है, लेकिन कौलमार्गी अवधूत योगिनी क्रिया को महत्त्व देता है, जो योगिनी कौलमार्गी भी कहलाते हैं, गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्र नाथ का सम्बन्ध इसी कौलमार्ग से माना जाता है।

नाथ-सम्प्रदाय में आदिनाथ के नौ पुत्रों को भी योगेश्वर सिद्ध कहा है। जैन तीर्थकरों में प्रथम तीर्थकर आदिनाथ को 'नाथ' योगेश्वर, शिव मानते हैं। चौबीस तीर्थकरों में 'नाथान्त' नाम वाले सभी तीर्थकरों का सम्बन्ध नाथपंथ से रहा है। ऐसा अनेक जगह उल्लेख मिलता है। चौबीसवें तीर्थकर महावीर भी निगण्ट नाथ-पुत्र कहलाते हैं, अर्थात् महावीर बचपन में जिस पंथ में दीक्षित थे, वह पार्श्वपत्य नाथी सम्प्रदाय था, शायद इसीलिए 'नाथ-पुत्र' संज्ञा दी गई। इससे लगता है कि नाथ सम्प्रदाय महावीर और बुद्ध के पहिले भी प्रभावशाली था, जिसकी जैन आगम के आदिनाथ के समय से शुरूआत मानी गई है। श्रीमद्भागवत् के दूसरे अध्याय पाँचवें स्कंध में कथा है कि भगवान् ऋषभदेव योगेश्वर जंगल में साधना करते थे। एक बार भीषण अकाल पड़ा तो आदिनाथ ऋषभ ने अवध राज में अपनी योगमाया से सुखद वर्षा कराई, जिससे माता-पिता और प्रषनन बहुत प्रसन्न हुए। साधना के चमत्कार से प्रभावित होकर जनमानस ने उन्हें एक सिद्ध चमत्कारी महात्मा स्वीकार किया। उनकी श्रद्धा में हजारों शिष्य बन गए और प्रतिदिन आदिनाथ अपने दरबार में लोक अध्यात्म का शिक्षण देने लगे। धीरे-धीरे वे और उनके सारे दरबारी शिष्य वैराग्य लेकर जंगल में निकल गये और आदिनाथ अपने पुत्र भरत को राज देकर नाथपंथी योगी ससंघ नाथ की तपस्या में लीन हो गए। वे अपने पीछे नाथों की परम्परा विकसित कर गए, जिसमें धर्म प्रचार के लिए मौजी नाथ साधकों को आचार-विचार का आगम दे गए। श्रीमद्भागवत् के दूसरे अध्याय में पंचम स्कंध तक नव नारायणों की कथा परमहंस संहिता के रूप में चर्चित हुई, ऐसा उल्लेख है, जिसमें नारद जी द्वारिका में वसुदेव के पास पहुँचते हैं और पूछे जाने पर ऋषभ (आदिनाथ) के नौ पुत्रों के सम्बन्ध में योगेश्वर ऋषभनाथ और विदेह राजनिमि का सम्वाद सुनाते हैं, जो कथा नवनाथों के रूप में प्रचलित हुई और आगे भी नव नारायणों को नवनाथ के रूप में मानने की कथा योगी-सम्प्रदाय कृत ग्रंथ में मिलती है। जो महाराष्ट्र के संत योगी ज्ञानदेव द्वारा लिखित (तेरहवीं शताब्दी की) रचना है, जिसमें 'ऋषभ राजा' आदिनाथ हैं और उन ऋषभदेव के नौ पुत्र हैं, जो नौ नारायण या नव नाथ कहलाये, जिनका उल्लेख निम्नानुसार मिलता है-

कविनारायण	-	मस्त्येन्द्रनाथ
करभाजन नारायण	-	गहनीनाथ
अंतरिक्ष नारायण	-	ज्वलेन्द्रनाथ
प्रबुद्ध नारायण	-	कारिरायानाथ
आविर्होन नारायण	-	नागनाथ
पिप्पलायन नारायण	-	चर्पटनाथ
चमस नारायण	-	रेवणनाथ
हरिनारायण	-	भर्तृनाथ भर्तृहरि
द्रुमिल नारायण	-	गोपीचन्द्र नाथ

नाथपंथ के उपरोक्त नौ नाथों का एवं जैन धर्म के आदिनाथ और नाथपंथ के आदिनाथ दोनों के नाम पंथ प्रवर्तक के रूप में मिलते हैं। जैनमत की निवृत्ति मूलक योगप्रधान धारा इस पंथ को प्रवर्तन करने में महत्त्वपूर्ण रही है। तीर्थकरों के नाथान्त होने एवं 'नाथत्व पद' पाने के द्योतक हैं, जिसमें योगी साधक जब पूर्णत्व को प्राप्त होता है, तब 'नाथ' शब्द लगाकर सम्पूर्णता मानी गई है। महावीर को निगण्ट नाथ-पुत्र कहा, फिर महावीर ने जैन-धर्म अलग से प्रतिपादित कर धर्म की काया पलट कर दी हो। नाथपंथ का प्रभाव लोक जीवन पर व्यापक रहने के कारण आदिनाथ शिव नाथपंथ के प्रवर्तक के रूप में लोकचित्त में प्रसरित होते रहे हों। जो नाथ योगी सिद्ध हो जाते, उन्हें संसार से निश्चित ही मुक्ति मिल जाती है। ऋषभनाथ ने संसार के सभी विकारों से सिद्धि पाने वाले को सिद्ध कहा है, जो अशरीरी होते हैं। आज भी जैनियों के पंच नमस्कार मंत्र में सृष्टि के सभी सिद्धों को नमस्कार कहकर सिद्धों का महत्त्व बताया गया है।

नाथ सम्प्रदाय में गुरु शिष्ट सम्प्रदाय का सर्वोपरि महत्त्व है। गुरु आदिनाथ है, गुरु के नाद से ही 'नाथ पंथ' का आविर्भाव हुआ है। आदि शिव के नाद और शक्ति संचार से क्रमशः शिष्य परम्परा विकसित हुई, जिसमें उदयनाथ, मत्स्येन्द्र नाथ, गोरक्षनाथ, कनकाय नाथ भूषिकाय नाथ की गुरु शिष्य परम्परा क्रमशः विकसित हुई। गुरु के दिव्य-ज्ञान, दिव्य-तेज, दिव्य रूप से शिष्य शक्ति का पुंज बनता है। गुरु पिता कहलाता है और शिष्य उसका पुत्र। गुरु पिता अंतरनाद से शिष्य पुत्र को जाग्रत करता है, और इस पिता-पुत्र की सृष्टि से लौकिक सृष्टि के स्थान पर आध्यात्मिक जीवन शुरू होता है। नाद से दीक्षा शुरू होती है और दिव्य आध्यात्मिक शक्ति के उदय से योगी सिद्ध बन जाता है। गुरु नाद से तंत्र-मंत्र साधना द्वारा शिष्य को (अज्ञानतिमिराच्छन्न-जीव को) परम चैतन्य, एकरूप चिद्स्वरूप प्रकाशमान आत्मचेतस का साम्य रसानुभव कराते हैं। नाथ परम्परा में जो क्रम विकास मिलता है। गोरक्षटिल्ला

से प्रकाशित नवनाथ कथा में नाथ परम्परानुसार निम्नांकित रूप उपलब्ध हैं, जो पंचतत्वात्मक सृष्टि से प्रभावित है-

ज्योतिस्वरूप ओंकार महेश्वर	- आदिनाथ
धरणी स्वरूप पार्वती-शक्ति	- उदयनाथ
जलस्वरूप-ब्रह्म	- सत्यनाथ
तेज स्वरूप विष्णु	- संतोषनाथ
वायु स्वरूप शेषनाथ	- अचलनाथ
आकाश स्वरूप गणेश	- गजकंठडि नाथ
वनस्पति स्वरूप चंद्रमा	- चौरंगी नाथ
माया स्वरूप करुणामय	- मत्स्येन्द्रनाथ
अलक्ष्य स्वरूप अयोनिशंकर	- त्रिनेत्र गोरक्षनाथ

नवनाथों के बाद नाथपंथ में द्वादश सिद्ध, फिर उनसे बने चौरासी सिद्ध, बारह पंथ तथा अनेक योगी सम्प्रदाय शामिल हो गए। नाथपंथी मानते हैं कि नवनाथ और चौरासी सिद्ध और अनाथधारी अनंत सिद्ध सभी सम्पूर्ण मण्डल में सिद्ध-देह में विचरण करते हैं। जैन आगम से आदिनाथ ने सिद्धों को सिद्ध-देह नाथ अशरीरी बताया है और जो नित्य-विद्यमान है और सृष्टि नियंता भी है। साथ ही गुरु-शिष्य परम्परानुसार नाथपंथ में बारह (गुरुशिष्य) पंथों का उल्लेख मिलता है, अर्थात् 12 आचार्यों के बारह पंथ प्रवर्तक इनके 12 मठ बने और जिन्होंने अलग-अलग पंथ चलाये जो निम्नप्रकार से कहे गये हैं।

सत्यनाथ	- सतनाथी पंथ
रामनाथ	- रामनाथी पंथ या रामपंथ
धरमनाथ	- धर्मनाथी पंथ
लक्ष्मणनाथ	- नटेश्वरी पंथ या लक्ष्मणनाथी पंथ
दरियानाथ	- दरियानाथी पंथ
गंगानाथ (भीष्म)	- गंगानाथी पंथ (इष्ट भीष्म)
वैरागनाथ, भर्तहरि	- वैरागीनाथ या वैरागनाथ पंथ
रावल नाथ, नागानाथ	- रावलपंथ
जलन्ध नाथ	- जालन्धर नाथ पंथ
आईनाथ (विमला)	- आईपंथ
कपिलानाथ (कपिल मुनि)	- कपिलानी पंथ
धजनाथ (हनुमान)	- धजनाथी पंथ

उक्त बारह मठों के उत्तराधिकारी आज भी पूरे देश में अलग-अलग रूप में हैं। नाथ सम्प्रदाय ब्रिगज गोरक्षनाथ एण्ड कनफटा योगीज पुस्तक के पृ. 63 पर इन बारह पंथ के साथ कापालिक मत के 12 आचार्यों का उल्लेख है, जो शाबर तंत्र में भी

मिलता है। नित्या तंत्र में शिव ने स्वयं कहा है कि मेरे द्वारा निर्मित तंत्र को ही नवनाथों ने जगत में विस्तार दिया। षोडश नित्यातंत्र में शिव के साथ शक्ति की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि शाक्य तंत्र के चार आधार हैं- वैदिक, वैष्णव शैव और शाक्त। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी नाथ सम्प्रदाय नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि 'वैदिक आचार से वैष्णव श्रेष्ठ हैं, वैष्णव से शैव श्रेष्ठ है, और शैव से शाक्त श्रेष्ठ हैं।' वस्तुतः शैव और शाक्त दोनों एक तत्त्व-दर्शन के ही दो रूप हैं। नाथसम्प्रदाय में भी शिव और शक्ति उस परमतत्त्व के ही दो रूप हैं। नाथमत में एक श्लोक इस संदर्भ के लिए प्रचलित है, जो इस प्रकार से है-

शिवस्याभ्यन्तरे शक्तिः शक्तेराम्यंतरं शिवः।

अंतरं नैव जानीयाच्चन्द्र चंद्रिकयोरिकः॥

शिवशक्ति परस्पर एक है, इस विशिष्ट दर्शन को केन्द्रीय-दर्शन माना है, जिस पर नाथ-साधना अवलम्बित है। नाथपंथ में सृष्टि की उत्पत्ति और लय, स्वरूप और ज्ञान, समष्टि और व्यष्टि को संसार का कारण जीव आधार, शक्ति का स्वरूप, जीव-जगत और ईश्वर की विभिन्न भूमियाँ परस्परता और परम्पद के लिए देह सिद्धि सभी पर विचार किया गया है। नाथ-योगी मानते हैं कि अनंत शक्तिमान परमेश्वर अपने एकाकार आनंद स्वरूप में अवस्थित रहते हुए नाना ब्रह्माण्डों के अनेकानेक आकारों और रचनाओं में विलास करते हैं और अभेद रूप शिव समरस होकर सर्वत्र विद्यमान हैं। व्यवहार दृष्टि से ब्रह्म नाना आकारों एवं रूपों में विद्यमान है, परन्तु आंतरिक रूप से सदैव अवस्थित अंतरआत्मा में व्याप्त है। गोरखवाणी में कहा भी गया है कि-

'अवधू न कोई आवै न कोई जाई, कांसा नाद मधि एक समाई।'
यैके सूयै एकै प्रोया हार, सांभलि हो गोरख कहुँ विचार॥

अर्थात् इस संसार में कोई आता-जाता नहीं, वह अनादि अनंत है, सभी एक सूत्र से बंधे है। अविगत रहत, आवते न जाते, जैसा है तैसा ही रहते हैं, अर्थात् अविगत परम तत्त्व 'अनामा' है, उससे ही ब्रह्माण्ड है, परम ब्रह्म में इच्छा शक्ति विद्यमान है, जो जीवों के दुख-सुख भोगों के निमित्त सृष्टि और प्रलय में, प्रसार एवं संकोच धर्म वाली है। इस इच्छा शक्ति से ही परमतत्त्व में कर्तव्य बोध हुआ, फलस्वरूप ब्रह्माण्ड की रचना हुई। इस निजा शक्ति को नाथ-योगी इच्छा शक्ति कहते हैं। नाथों के द्वारा उपलब्ध संस्कृत-साहित्य-ग्रंथों के अनुसार 'अनामा' तत्त्व की 'निजा शक्ति' से प्रथम उन्मुखता रूप पराशक्ति है। पराशक्ति से स्पन्दनमात्र अपराशक्ति, अपराशक्ति से अहंकार रूपा सूक्ष्म शक्ति और सूक्ष्मशक्ति

से वेदनशीला कुण्डली शक्ति उद्भूत हुई है। इस अनामा तत्व में अंतर्लीन निजा, परा-अपरा सूक्ष्मा तथा कुंडलिनी-शक्तियों में पाँच-पाँच के क्रम से पच्चीस गुण विद्यमान हैं, इन गुणों का आश्रय लेकर विश्व उत्पत्ति का सिद्धांत नाथ पंथ में प्रचलित है, जो परम तत्त्व से कार्य-कारण उत्पत्ति के सिद्धांत से मिलता है।

नाथपंथी परम्परा और सिद्धों की ज्ञान परम्परा में सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी अवधारणा अलग है। नाथ साधक मानते हैं कि परमपिण्ड से एक परम शून्य निरंजन परमात्मा, पंच तत्वात्मक सृष्टि में आत्मसात् होकर अनाधिनिधन परमात्मा, अनादि पिण्ड से परमानंद, परमानंद से प्रबोध, प्रबोध से चित्तुदय, चित्तुदय से प्रकाश फिर प्रकाश से सोहं भाव में आविर्भूत होता हुआ परमपुरुष रूप में आता है। नाथपंथियों की अपनी विशेष पारिभाषिक शब्दावली प्रचलित है, जैसे- 'निरंजन का तात्पर्य परपिण्ड से है। ओम् का तात्पर्य अनादिपिण्ड से है। आकाश-वायु-तेज-तोया भट्टी-पंच महाभूत का तात्पर्य आदिपिण्ड से है?' गोरखवानी में पंचभूतमय महासाकार पिण्ड का नाम ही 'जोगी' है। इस महासाकार पिण्ड का सम्मिलित महाभाव ही शिव है, इस शिव से भैरव, भैरव से श्रीकंठ, श्रीकंठ से सदाशिव, सदाशिव से ईश्वर, ईश्वर से रूद्र, रूद्र से विष्णु, ब्रह्मा की मूर्ति आविर्भूत हुई, इसे ही यहाँ साकारपिण्ड की अष्टमूर्ति कहते हैं। इस अष्टमूर्ति के ब्रह्मा द्वारा साकारपिण्ड के पंचतत्त्व और पच्चीस गुण से नर नारी रूप प्रकृति बनी है। इस प्रकृतिपिण्ड में कर्म के पाँच गुण, काम के पाँच गुण, चहुं की सोलह कलाएँ (सत्रहवीं निजकला) सूर्य की बारह कलाएँ (तेरहवीं निजकला) और अग्नि की दस कलाएँ (ग्यारहवीं निज कला) विद्यमान है। इसी से प्रकृति पिण्ड पुनः-पुनः मातृकुक्षि से गर्भ पिण्ड रूप जीव उत्पन्न होता है। इस गर्भपिण्ड में दस प्रधान नाडियाँ, दस प्रधान वायु, दसधातु, दसद्वार, तीन सौ साठ अस्थि, साढ़े तीन कोटि रोम तथा रोमकूप, नवचक्र, षोडश आधार त्रिलस्थ एवं पंचाकाश विद्यमान है। ये सभी नाथपंथी साधना की विशेष शब्दावली है।

इस तरह नाथ-सम्प्रदाय में जो दर्शन की अवधारणा और व्याख्या है, वह शिव को ही नाथ के रूप में मानकर आध्यात्मिक साधना की जाती है। प्रायोगिक शब्दावली अलग है, परन्तु मूल तत्व-दर्शन उपनिषदों से प्रभावित है। शिव से भिन्न शक्ति महाप्रलय में अकुलावस्था युक्त है। वह काल की त्रैआयामिता से अलग संकोचशील बनकर सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करती हुई परम शिव में लीन हो जाती है और अपनी निजा रूपी इच्छा शक्ति से सृष्टि का पुनः प्रसार करती है। इस प्रसार संकोच के नियम से सृष्टि अनादि-

अनंत रूप से चलती रहती है। अतः सर्वाधिष्ठान पंथ-नाथपंथ में यह अनादि-अनंत सृष्टि एकाकार नाथ अथवा शिव ही यथार्थ है, सत्य है। दृश्य जगत में उस शिव का चैतन्य लघु रूप मनुष्य शरीर है। अतः इस शरीर के भीतर ही पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड के रहस्य को जानना और अभेद तत्व को प्राप्त करना समरसीकरण कहलाता है। इस समरसीकरण की रीति नाथ साधना का मुख्य वर्ण्य विषय है। यही सम्यक्ज्ञान है कि 'अनामा स्वयंसिद्धम् सर्वोषाम् मूलकारणं प्रसर संकोचहीन साम्यावस्था नाथ-योगी के चित्त स्थिरणीयकरण के लिए जरूरी है। यही दर्शन है जिसमें पृथ्वी यह शरीर है, जल-देह जल स्वेद आदि, अग्नि में क्षुधा-तृषा-निद्रहा-कांतिप्रभा वायु में श्वसन-भ्रमण है प्रसारण-संकुचन निरोध और आकाश में राग-द्वेष, भव लज्जा और मोह सभी शामिल हैं। पंच तत्वों के साथ पंच अंतकरण जिसमें मन-बुद्धि-अहंकार, चित्त और चैतन्य है। कुलपंचक गुण जिसमें सत्-रज्-तम काल और जीव दूसरी व्यक्ताख्य पंचक में इच्छा, क्रिया, माया, प्रकृति और वाक् है। प्रत्यक्ष पंचक में कर्म, काम, चंद्र, सूर्य-अग्नि है, ये सभी सार्थक पंचक कहलाती है।

इस सम्पूर्ण दर्शन के आधार पर नाथपंथी योगी-साधक साधना करता है। शरीर के भीतर शक्ति ही सम्पूर्ण कार्य व्यापार का मूल अधिष्ठान है। यह शक्ति ही जो चराचर सृष्टि को अनंत ब्रह्माण्ड से जोड़े हुए है। यही शक्ति कुण्डली जागरण से उद्भूत होती है। शक्ति जागरण की साधना मूलाचार से सहस्रत्रधार तक प्रकाश रूप पराशक्ति के अनुभव तक चलती है। यह पराकला, शक्ति द्वारा नित्य शुद्ध-बुद्ध-स्वरूप आत्मतत्त्व को स्वयं प्रकाश-बोध उपलब्ध होता है, यही प्रकाश बोधक साधक की सफलता है।

नाथ-सम्प्रदाय की साधना प्रणाली अनुभूति परक है। नाथ योगी की समस्त साधना प्रणालियाँ परमपद, पूर्णत्व अथवा शिवत्व प्राप्ति के लिए हैं। इसका वृहत्तर साहित्य भी उपलब्ध है, इस संदर्भ में सिद्ध सिद्धांत संग्रह के 4/35 में लिखा है-

*उर्ध्व शक्ति निपातोडथ मुमुक्षुणां कृतेन्यते ।
सव्रतत्वोदयध्वे वृत्ति त्रिर्नाम परम पदम् ॥*

अर्थात् दर्शन से अनुप्रमाणित समग्र नाथ-योगी-साधना 'सर्वथा उदय' से परम पद को पाने के लिए है। नाथ साधना प्रणाली बहुविधि और परमपद को पाने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाली है। नाथमतानुसार यह समग्र सृष्टि अनंत शक्ति का ही आत्म प्रकाश है। इन्द्रिय गोचर स्थूल सृष्टि, सूक्ष्मसृष्टि और सूक्ष्मतम कारण सृष्टि उस अनंत शक्ति का त्रिविध विस्तार है। पुरुषाकार

साधना प्रणाली नाथपंथी योगी का प्रथम सोपान है, जिसमें पंचतत्व का यह शरीर मन की परमशक्ति के माध्यम से परम शिव को निश्चय ही पा सकता है। अन्तर्मन का यह निश्चय और समर्पण स्थूल देह को सिद्ध देह में बदलने के लिए कर्म करता है। यह साधना शब्द से बिन्दु और बिन्दु से प्रकाश प्राप्ति के लिए नाथ योगी करते हैं। देह ही सबद है, वही प्रकाश है। इस संदर्भ में यह 'सबदहि ताला सबदहि कूची सबदहि सबदभय उजियाला! कांटा सेती कांटा धूटे, कुँजी से ही ताला (गोरखवानी, पृ. 20 से)

गोरखवानी में स्पष्ट उल्लेख है यह सबद रूपी देह से ही साधना द्वारा मुक्ति और परमपद की प्राप्ति होती है। सिद्ध देह के लिए साधना करनी होती है। इस संदर्भ में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज लिखते हैं कि 'आत्मशुद्धि के लिए सिद्ध देह की साधना जरूरी है।' सिद्ध-देह पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु इस पर योगी की इच्छा काम करती है। सिद्ध देह का विघटन कभी नहीं हो सकता, क्योंकि ये नित्य है। परन्तु संकोच-विस्तार हो सकता है, जहाँ माया से सम्बन्ध टूट जाता है। सिद्ध देह के लिए साधक सामर्थ्य के अनुसार इड़ा द्वारा पूरक, पिंगला द्वारा रेचक, बीच में कुम्भक का अभ्यास करता है। सुषम्णा द्वारा षट्चक्र भेदन का अभ्यास बढ़ाते हुए शक्ति का प्रकाश पाता है, तब सिद्ध देह में सर्वव्याप्ति का अनुभव करता है।

उदै न अस्त, राति न दिन, सबे सचगचर भाव न भिन्न
सोई निरंजन डाल न मूल, सर्वव्यापक सुषमन अस्थूल॥

सबदी, गोरक्ष वाणी पृ. 111

उपनिषदों में प्राप्त षट्-चक्र एवं अष्ट चक्र के स्थान पर नाथपंथी साधक नवचक्र की साधना करते हैं। नवचक्रों में क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, नाभि, हृदय चक्र, कण्ठ, तालु, भूचक्र निर्वाण और आकाशचक्र होते हैं। आकाश चक्र त्रिधावर्त भूमण्डलाकार ब्रह्मचक्र जिसके समीप ज्योति शक्ति के प्रति-एकनिष्ठ ध्यान उपदिष्ट है। यही पुरुषाकार तत्व साधना का पहला अंग है। फिर सर्वाधिष्ठानरूप सद्गुरु और गुरुतत्व की साधना है, जिसमें सद्गुरु ही साम्यावस्था में नित्य अधिष्ठित परम शिव स्वरूप है, परमतत्व का ज्ञाता है, उनके अनुग्रह से शिष्य साधना द्वारा देवाधिदेव शिव को पा लेता है। शास्त्रों में ईश्वर कृपा, गुरुकृपा, शास्त्र कृपा और आत्मकृपा का उल्लेख है, लेकिन नाथपंथी साधक सिर्फ और सिर्फ गुरुकृपा को ही सर्वोपरि मानता है। देहसिद्धि में गुरु की विशेष कृपा से संसार सागर से पार उतर सकता है। गोरखवाणी में उल्लेख है-

ससधातु का काया पिंजरा, सतगुरु जुगति बिन सूवा।
बाबा सतगुरु मिले, तब उबरा नहि तो परले न हुवा॥

गुरु ही गुणवंत है, गुरु ही बुद्धिवंत है, गुरु की वाणी सिद्ध-वाणी है, जितने बार गुरु को शीश झुकाओ, उतनी बार गुरु के जाग्रत-प्रकाश का अनुभव होता है।

यथा-
सुमि गुणवंता सुणि बुधिवंता, अनंत सिंधा की वाणी।
सीस नवावत सतगुरु मिलया जागत रेणि बिहारी॥

(-गोरखवाणी 107)

नाथ-साहित्य में ऐसे हजारों पद हैं, जिनमें सतगुरु महिमा गुरु कृपा का वर्णन है। आदिनाथ शिव रूप ही गुरु है और उनकी साधना से जो गुरु मिला है, वही सत्गुरु है। सत्गुरु से बड़ा कुछ भी नहीं है। अद्वय तारकोपनिषद में उल्लेख है। सत्गुरु ही तत्ववेत्ता है परमब्रह्म है- सतगुरु ही परा विद्या सिखाने वाला, परम गति को दिलाने वाला, परम उपदेश देने वाला है। परमगुरु की परमरीति से ही संसार सागर से पार उतरा जा सकता है- प्रस्तुत पद दृश्य है-

गुरुरेव परब्रह्म गुरुरेव परागतिः।
गुरुरेव पराविद्या गुरुरेव परायणम्॥
गुरुरेव पराकाष्ठा गुरुरेव परंधनम्।
यस्मात्तदुपदेष्टा सौ तस्मात् गुरुतरौ गुरुरिति॥

तत्त्व का उपदेष्टा गुरु ही परमगुरु है, बिना तत्वबोध देहसिद्धि नहीं, परम सिद्धि नहीं हो सकती। सतगुरु अपनी शिक्षा से दूसरा जन्म देता है। नाथ साधना गुरु-शिष्य परम्परा के कारण विकसित हुई थी और बहुत वर्षों तक प्रभावशील रही, इनकी सबसे प्रभावशील गुरु शिष्य परम्परा मच्छन्दरनाथ और गोरखनाथ की रही है।

नाथ-सम्प्रदाय में गुरु ही ज्ञान की परीक्षा करता है। गुरु ही योग सिखाता है। मत्स्येन्द्र लिखते हैं- 'गुरु सिख की एकै काया परचा होई तो बिहड़ि न जाया। (गोरखबोध, गोरखवाणी 195) गुरु ही परीक्षा करके शिष्य को यम-नियम की शिक्षा देकर अष्टांग-योग की जगह षष्ठांग योग यानी तीन बहिरंग आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और तीन अंतरंग धारणा, ध्यान और समाधि का विशेष उल्लेख है। बौद्ध तांत्रिक योग में भी इस प्रकार षडंग साधना का विवरण मिलता है।' साथ ही राजयोग को महत्त्व दिया है, जिसमें देह-शुद्धि को धर्म शुद्धि कहकर लययोग-हठयोग से अधिक महत्त्वपूर्ण राजयोग कहा गया है। आत्माराम योगी ने लिखा भी है-

राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी ।
 अमरत्य लयस्तत्त्वं शून्या शून्यं परं परम् ॥
 अमनस्कं तथाद्वैतं निरालंवं निरंजनम् ।
 जीवनमुक्ति सहजा तुर्या चैतयैक वाचकाः ॥

नाथपंथ राजयोग हठयोग के साथ सूक्ष्मवेद को महत्त्व देते हैं, जिसमें वेद्यत्री ऋक्-यजु-साम को माना है। पश्यंति रूपा सूक्ष्म वेदक ही नाथ योगी एक मात्र सार-वस्तु मानते हैं।

इस तरह नाथपंथी साधना में साधक कुण्डलनी में ज्योति स्वरूप परावाक् और नादानुसंधान एवं शून्य साधना, कायसिद्धि वायुयोग, रसानंद, खेचरी विद्या, चिद्शक्ति विमर्श में मूल चिद्शक्ति वामेश्वरी शक्ति, खेचरी शक्ति (चिदाकाश में संचरणशील) गोचरी शक्ति, दिक्चरी शक्ति, भूचरी शक्ति से सहत्रार में विराजमान शिव की प्राप्ति करता है और शुद्ध ज्ञान से अष्टमुद्रा द्वारा आत्मसिद्धि का मार्ग तय कर लेता है। अष्टमुद्रा में सबसे पहिले मूलनी शक्ति जो काम तृष्णा लोभ आदि से साधक को मुक्त कराती है। दूसरी मुद्रा जलश्री नाभि के मध्य में क्रोध और मृत्यु के भय से मुक्त कराती है, तीसरी मुद्रा वीरनी (हृदय में ज्ञान-दीवाली है)। चौथी मुद्रा वेचरी है (मुखमध्ये स्वाद-विस्वाद वाली पांचवी मुद्रा भूचरी (नासिका मध्ये गंध-विगंधवाली) (दृष्टि-विदृष्टि वाली), सातवीं अगोचरी मुद्रा (करण मध्ये सबद-कुसबद श्रवण वाली है), अंतिम अष्टम मुद्रा उन्मनी ब्रह्माण्ड में स्थापित परम जोत वाली है और इन अष्टमुद्रा को जो साधक पार करके सहत्रार शिव को पा लेता है, वही परसिद्ध परमगुरु स्वानुभूत चेतना का अधिकारी महागुरु कहलाता है।

नाथ साधना के केन्द्र में चेतना के ऊर्ध्वगमन की और स्वानुभूत चेतना की अनुपम विधि शामिल है, जो नाथ सम्प्रदाय में अपनी साधना-तपस्या से प्राणायाम और योग साधना को प्रयोगधर्मिता के विज्ञान का स्तर देती है। इसीलिए नाथ योग साधना विज्ञान सम्मत है। सद्गुरु और योग्यशिष्य की परम्परा का यह अनूठा दर्शन है, जो साधना की वैज्ञानिकता के साथ रहस्यमय होने के बावजूद गुरु-शिष्य परम्परा में अनुकरणीय है। गुरु मत्स्येन्द्र नाथ, गोरखनाथ, भर्तृहरि, गोपीचंद आदि की परिपुष्टि परम्परा इस तत्त्वदर्शन को अधिक प्रामाणिक बनाती है। संसार सागर से पार उतरने आत्म-चेतस गुरु से स्वानुभूत अध्यात्म तत्व-को जानने वाले शिष्यों की लम्बी परम्परा से नाथ वाणी, गोरखवाणी, गोरखसिद्धांत संग्रह, सिद्ध-सिद्धांत पद्धति, गोरक्षनाथ और कनफटा योगी, कुवलमाला, अपभ्रंश काव्य त्रयी बोली के साथ साहित्य के

अकूत भण्डार को देकर लोक अध्यात्म को सम्पन्न बनाया है।

गोरखनाथ की साधना के विवरण और साहित्य आज भी सुरक्षित है। गोरखपुर नगर आज भी उनकी साधना और सिद्धि के कारण देश में अपना अलग स्थान रखता है। नाथ साधना के प्रसिद्ध गुरु गोरक्षनाथ उनके साहित्य के संरक्षण हैं। नाथ साहित्य में गुरु शिष्य परम्परा ने भारतीय धर्म व संस्कृति को अपने तरह का अलग प्रयोग धर्मी-विज्ञान स्वरूप और संस्कृति को विकसित किया है। नाथों के प्रधान गुरु गोरखनाथ का समय संवत् 902 यानी दसवीं शताब्दी था। उनके गुरु मत्स्येन्द्र (मच्छन्दरनाथ) थे, उन्होंने अपनी गुरुशिष्य परम्परा को बहुत विस्तारित किया और बहुत सारे शिष्य बनाये। 9वीं से 13वीं सदी तक की नाथ सम्प्रदाय की रचनाएँ मिलती हैं, जिनमें नाथ-पद गोरखवाणी शब्दी: अभैमात्रा, जोग, आत्मबोध-सप्रवार, रामावली, ग्यान चौतीसा, गोरख सिद्धांत संग्रह नाथ-परम्परा के प्रचलित ग्रंथ है। इन ग्रंथों का प्रभाव भारत की वैरागी परम्परा पर बहुत प्रभावशील रहा। इन ग्रंथों से ही गुरु गोरखनाथ के शिष्यों की जानकारी मिलती है। इनके शिष्यों में राजा भर्तृहरि, राजा गोपीचंद की अनेक लोक कथाएँ आज भी अलग पहचान रखती हैं। इनकी गादी और मठ मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, झारखण्ड, उत्तरांचल में देखे जा सकते हैं। मध्यप्रदेश के जबलपुर जिले के ग्राम बिल्हरी में प्राप्त शिलालेख में उत्कीर्ण है कि 'महाराजा युवराजदेव द्वितीय (कल्चुरी शासक)' ने नाथ सम्प्रदाय के 'नवलेश्वर नाथ' का मठ बनवाया और उनकी महारानी ने नाथ-पंथी आचार्यों को दान दिया। इसके अतिरिक्त छतरपुर, पन्ना और टीकमगढ़ में भी उनके मठ मिलते हैं।

नाथ योगियों की दार्शनिक परम्परा को इस साहित्य ने अध्यात्म का विज्ञान दिया है। भारतीय लोकचित और संस्कृति में यदि किसी तत्त्वदर्शन की गहरी जड़ें जमी हैं, जो नाथ-सम्प्रदाय और नाथ साहित्य के माध्यम से सम्पूर्ण देश की लोक परम्पराओं में प्रभावशील हुई। राजस्थानी साधुओं, गुजराती महंतों, महाराष्ट्र की संत-परम्परा ज्ञानेश्वर और उनकी शिष्यमण्डली ने वर्षों बरस इस तत्त्वदर्शन की अपनी साधना का केन्द्र बनाया। लोक संस्कृति में नाथ योगियों की उलट-बासियों और तत्व रहस्यदर्शन ने लोक अध्यात्म और जन-शिक्षण के लिए प्रेरित किया है। इस तरह भारतीय परम्परा और तत्त्वदर्शन के साथ मानव शक्ति और चेतना के ऊर्ध्वगमन की व्यवहारिक विधियों के विकास में नाथपंथ का अमूल्य योगदान है, भारत में ऐसे कम ही आध्यात्मिक सम्प्रदाय रहे हैं, जो तत्त्वदर्शन और प्रयोग की समग्रता के बेजोड़ उदाहरण

माने जाते हैं। राजयोग और हठयोग की साधना में जहाँ एक ओर साधकों को शक्ति के उन्मेष की व्यवहारिक विधियाँ मिली, वहीं दूसरी ओर स्वानुभूति परक तत्त्वदर्शन भी मिला। वस्तुतः नाथ पंथी साधना का योग दर्शन किसी विशेष प्रत्यय की परम्परा न होकर चेतना का उन्मेष और ऊर्ध्वगमन भी है। नाथ परम्परा ने साधकों और सिद्धों के स्वानुभव पर केन्द्रित ज्ञान परम्परा को ही वास्तविक

आत्मदर्शन के रूप में प्रस्तावित किया है। आध्यात्मिक चेतना के विज्ञान की तरह ही योग-साधना के दर्शन को ही इस परम्परा ने जीवंत रखा है। जब भी भारतीय साधना और ज्ञान परम्परा में विज्ञान की भाँति कार्यकारण सिद्धांत के आधार पर विकसित यह योगियों की ज्ञान और प्रयोग की साधना विशेष महत्त्व वाली है।

संदर्भ :-

1. भारतीय साधना की धारा, म.म. गोपीनाथ कविराज बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्।
2. नाथपंथ, डॉ. शांतिप्रसाद चंदोला, अल्का प्रेस, विनायका, वाराणसी।
3. गायकवाड़ सीरीज-नवम्बर-1971, बड़ौदा, गुजरात
4. गोरक्षनाथ एण्ड कनफटा, योगीज-ब्रिगज-सीरीज, गोरखपुर प्रेस (उ.प्र.)
5. गोरक्षनाथ वाणी, गोरक्षनाथ-गोरखपुर प्रेस (उ.प्र.)
6. सिद्ध-सिद्धांत-पद्धति, डॉ. कल्याणी मलिक द्वारा सम्पादित, सन् 1954 में प्रकाशित।
7. हठयोग प्रदीपका-महंत, मध्वाचार्य, गोरखपुर प्रेस (उ.प्र.)
8. नाथ सम्प्रदाय- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

लोक का रंगमंच

आशीष त्रिपाठी

नाटक को दृश्यकाव्य कहा गया है। आशय यही है कि काव्य संवेदना मंच पर दृश्य रूप धारण कर लेती है। भाषा या शब्द इस दृश्यात्मक का मूल आधार तो है, कच्चा माल तो है, परन्तु वे स्वयं दृश्य नहीं बन सकते। शब्दों में दृश्य की संभावनाएँ निहित होती हैं, क्योंकि शब्द अंततः जीवन के मूर्त दृश्यों को (अमूर्त भावनाओं को भी) प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं। प्रतीकीकरण की प्रक्रिया में शब्द स्वयं अमूर्त हैं। रंगमंच शब्द पर आधारित साहित्यिक कृति को एक दृश्यमानता प्रदान करता है। काव्य के दृश्य में रूपान्तरित होने की इस प्रक्रिया में शब्द और भाषा के अतिरिक्त अन्य कई सम्प्रेषण माध्यमों का सहयोग मिलता है। संगीत के स्वर, नृत्य की लयात्मक गतियों और मुद्राओं, रंगभूमि, दृश्यबंध, रूप-सज्जा, वेश-भूषा, केश-सज्जा आदि के सहयोग से एक ऐसे संश्लिष्ट सम्प्रेषण माध्यम का जन्म होता है, जो रंगमंच के अतिरिक्त कहीं और दिखाई देता है तो वह आधुनिक फिल्म माध्यम में। परन्तु रंगमंच पर ये सब माध्यम तब तक अधूरे हैं, जब तक कि रंगभूमि पर अभिनेता अपनी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों के साथ इन माध्यमों के उपयोग के लिए सक्रिय और तत्पर नहीं हो जाता।

अभिनेता रंगमंच की प्राथमिकता और नियामक शक्ति है। किसी अन्य माध्यम के बिना रंगमंच की कल्पना की जा सकती है। संगीत, नृत्य, दृश्यबंध, वास्तु सज्जा यहाँ तक कि साहित्य और नाटक को तिलांजलि दी जा सकती है, परन्तु अभिनेता के बिना किसी रंगमंच की कल्पना करना असंभव है। आधुनिक युग में शब्द के आतंक एवं रंगमंच में उसकी सर्वव्यापी स्थिति के प्रति विद्रोह करते हुए आलेख को रंगमंच से बहिष्कृत करने या कम प्रभावी बनाने के कई आन्दोलन चले हैं, परन्तु अभिनेता से मुक्ति पाने का कोई आन्दोलन कभी संभव नहीं हुआ। दुनिया की प्रायः सभी रंग संस्कृतियों में अभिनेता को केन्द्रीय स्थान मिला है। चाहे वह संस्कृत रंगमंच हो या लोक रंगमंच, ग्रीक रंगमंच हो या एलिजाबेथन रंगमंच-प्रायः सभी जगहों पर अभिनेता को केन्द्रीय महत्ता मिली है। यह अकारण भी नहीं है, अभिनेता किसी विशिष्ट सामाजिक, संस्कृति, ऐतिहासिक परिवेश में जन्म लेता है एवं मनुष्य की मूलभूत शक्तियों के साथ विकसित होता है। ऐसे में उस पर साहित्य, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक इकाई के रूप में वह मनुष्यता की साहित्यिक सांस्कृतिक कलात्मक तथा अन्य उपलब्धियों को शक्ति के रूप में अपने मन एवं देह पर धारण किया होता है। वह साहित्य का पाठ भले न हो, परन्तु वह कहीं

न कहीं मिथकों, पौराणिक एवं लोक कथाओं, लोकगीतों, आख्यानों के रूप में साहित्य का आस्वादक होता है। इसी तरह वह संगीत का जानकार भले ही न हो, परन्तु जीवन में, समाज में भाग लेते हुए अनन्त लयों, छन्दों एवं स्वर संयोजनों से परिचित होता है। जीवन का विशाल रंगमंच उसे सहज ही अनंत हरकतों, शारीरिक गतियों, मुद्राओं और शारीरिक रूपाकारों का मालिक बना देता है। इस तरह अपनी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों के साथ जब वह रंगभूमि पर पदार्पण करता है तो बिना आलेख, संगीत, नृत्य तथा अन्य सम्प्रेषण माध्यमों के भी अपनी सहज बुद्धि एवं संचय कलात्मक ज्ञान एवं प्रवीणता से रंगकला को दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत कर देता है।

शेक्सपियर जब कहते हैं- संसार एक रंगमंच है और हम सब एक अभिनेता तो उसका एक आशय यह भी है कि सांसारिक शक्तियों में अभिनेता के सहज गुण एवं प्रतिभा विद्यमान होती है। वह अपने जीवन में निरंतर अभिनय करते हैं। अन्य सम्प्रेषण माध्यमों की अनुपस्थिति में अभिनेता इसी शक्ति और प्रतिभा से एक साधारण भूमि-खंड को रंगभूमि में बदल देता है। ब.व. कारंत कहते हैं कि रंगमंच के लिए सिर्फ अभिनेता आवश्यक है.... रंगमंच नहीं, रंगकर्म अभिनेता का माध्यम है। अभिनेता इस कर्म का माध्यम है। इस कर्म की सम्यक् अभिव्यक्ति सम्प्रेषण का सम्यक् माध्यम है। अन्यत्र वे कहते हैं- 'रंगमंच के लिए कुछ नहीं चाहिए, चाहिए सिर्फ अभिनेता' अभिनेता रंगमंच की केन्द्रीय शक्ति, प्राण और आत्मा है। वह शरीर भी है, शरीर में बहता खून भी, उसकी गति और आवाज भी।' गिरीश रस्तोगी लिखती हैं- 'रंगमंच पर अभिनेता ही उसकी सम्पूर्ण मौलिकता, नवीनता रमणीयता और जटिलता का महत्त्वपूर्ण कारण है, आधार है। रंगकला की सीमाएँ और उसका असीम अनूठापन सब अभिनेता से ही निर्धारित है।..... अभिनेता का पूरा व्यक्तित्व रंगभाषा का काम करता है, उसका पूरा शरीर बहुत कुछ कहता है- उसका आकार-प्रकार, आयु, लम्बाई-चौड़ाई, उसका खड़े होना, चलना-फिरना, उठना-बैठना, उसके कार्य व्यवहार उसकी हर भंगिमा बहुत कुछ कहती है। चरित्र विशेष को रंजित करती है। अभिनेता का कंठ उसकी वाणी, स्वर के उतार-चढ़ाव, लय, टोन दर्शक तक नाटक के कथ्य और संवेदना को सम्प्रेषित करते हैं।

अभिनेता की अभिनय प्रक्रिया में संगीत अनायास ही कई

जगहों पर जुड़ जाता है। वह अभिनेता को प्रभावी ढंग से सहयोग करता है। पात्र के आंतरिक संसार की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति के लिए अक्सर ही गद्यात्मक वाचिक के अतिरिक्त गीतों का प्रभावी उपयोग किया जाता है। एक तरह से गीत, काव्य पाठ, छन्दात्मक गीत, वाचिक अभिनय का ही विस्तार है। चरित्र की वे भावनाएँ जो साधारण गद्य में व्यक्त करने में कठिनाई होती हैं, कविता और संगीत (गीत) के माध्यम से सहज ही व्यक्त की जा सकती हैं। संगीत रंगमंच का सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है। पाठ एवं अभिनेता को छोड़कर संभवतः संगीत ही विश्व की सभी रंग संस्कृतियों में बहुस्तरीयता, बहुआयामिता के साथ प्रयुक्त होता रहा है। यथार्थवादी नाटकों को छोड़कर संस्कृत, लोक, पारसी, ब्रेख्तिन, शेक्सपीरियन तथा ग्रीक लगभग सभी तरह के नाटकों में अभिनेता के वाचिक अभिनय के विस्तारित रूप में गीतों की प्रभावी योजना की जाती रही है। आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति में धुनमूलक पुनरावर्तिक छन्दों वाले कोमल एवं मर्मस्पर्शी स्वरों के संयोजन से गीत की मार्मिकता नाटक की पूरी गरिमा को कई गुना बढ़ा देती है। संगीत रंगमंच में अभिनेता को, काव्य को सहयोग करता है। इस तरह रंग भाषा पाठ, आंगिक, वाचिक, संगीत से अपनी संश्लिष्टता की ओर बढ़ती है।

लोक नाटकों में अभिनेता की समूची रंगभाषा और रंग सर्जना का आधारभूत तत्त्व है। प्रायः लिखित नाटक की अनुपस्थिति में अभिनीत अवधि तक चलने वाले प्रदर्शनों में अभिनेता ही दर्शक के सामान्य आकर्षण का केन्द्र होता है। अभिनेता अपनी कायिक और मानसिक क्षमताओं से दर्शक को रंजित और शिक्षित करता है। लोक नाटकों की पूरी स्थापना अभिनेता की क्रियाओं, उसके गान, उसके नृत्य, उसके हास्य प्रहसन तथा उसके आशु अभिनय पर टिका होता है।

लिखित नाट्यालेख की अनुपस्थिति और दर्शक से अनौपचारिक संबंध के कारण लोकनाटक के अभिनेता में आशु अभिनय शक्ति का होना अत्यंत आवश्यक होता है। लिखित नाटक की अनुपस्थिति में उन पर यह जवाबदेही होती है कि वे पूर्व निर्धारित नाट्य खाके को सर्वोत्तम तरीके से प्रस्तुत करें। आवश्यकता पड़ने पर उनमें तात्कालिक ढंग से नयी स्थितियाँ जोड़ ली जाती हैं और उन्हें भी नाटक के मुख्य प्रवाह में शामिल कर लिया जाता है। आज ही घटी कोई घटना, प्रदर्शन स्थल की कोई गतिविधि, साथी

अभिनेता की कोई बात- किसी भी बात से अभिनेता नाटक में इस नयी गतिविधि को जोड़ सकता है। यह सुविधा और क्षमता भी प्रायः विदूषकों में ज्यादा देखी जाती है। अक्सर वह एक स्वतंत्र पात्र होता है, जिसे कभी भी प्रकट होने कुछ भी कहने-करने की स्वतंत्रता है। वह पौराणिक या काल्पनिक परिवेश अपरिचित देश-काल की कहानी के प्रसंगों और पात्रों को वर्तमान की स्थितियों और व्यक्तियों से जोड़ने का अनोखा काम करता है। उसे यह छूट है कि स्थानीय या समकालीन घटनाओं, व्यक्तियों और उनके तौर तरीकों की विसंगति, अनौचित्य या अन्याय पर अपनी सूझ बूझ, वाक्पटुता, परिहास और विनोदवृत्ति से टिप्पणी करे। विदूषक का यह विशेषाधिकार कई लोकनाट्य शैलियों में अपने चरम और प्रखर रूप में दिखाई देता है। फेरल की कुडिआट्टम शैली के बारे में नेमिचन्द जैन लिखते हैं- 'वह संस्कृति नाटकों के नायक के संवादों की मलयालम में व्याख्या करता है, जो प्रायः मूल संवादों से भी लंबी हो जाती है और बहुत घंटों या कई दिनों तक चलती है। उसकी व्यंग्योक्तियों से शास्त्र, देवता, महापुरुष, राजा या सामान्य कोई नहीं बचता। दरअसल, पौराणिक अतिपरिचित, बार-बार दोहराया जाने वाली विषय वस्तु को भी समकालीन और दैनन्दिन जीवन के स्तर पर प्रासंगिक बनाने की यह कल्पनाशील, आकर्षक पद्धति पारम्परिक नाट्य की संरचना में ही बुनी हुई है।' वह एक तरह के दर्शकों का प्रतिनिधि उनकी ही आवाज है।

आशु अभिनय शक्ति अभिनेता दर्शकों से संवाद करते रहने, नाटक को नित्य ही पुनर्नवा करने तथा समकालीन जीवन की गतिविधियों से जोड़ने में मदद करती है। समकालीन हिन्दी रंगमंच पर हबीब तनवीर के 1973 के बाद प्रायः सभी नाटकों की रचना छत्तीसगढ़ी अभिनेताओं की आशु-अभिनय-प्रक्रिया में ही विकसित हुए हैं। 1973 के पूर्व हबीब तनवीर अपने इन अशिक्षित लोक अभिनेताओं को एक नाट्य लेख के पूर्व निर्धारित ढांचे में अभिनय करने की कोशिश करते थे। इसके प्रायः आलेख और अभिनेता के बीच एक दूरी बनी रहती थी और अभिनेता अपने अभिनय में अपने सर्वश्रेष्ठ जादू तक नहीं पहुँच पाते थे। हबीब तनवीर ने अपना रास्ता बदला और आलेख के अभिनेताओं पर लादने की बजाय एक कथा का आधार लेकर उनकी आशु अभिनय शक्ति से नाटक बनाने का सिलसिला शुरू किया। उन्हें अपेक्षा से अधिक सफलता मिली। इस संदर्भ में वे कहते हैं- पहली बात तो यह है

कि वर्षों में इन कलाकारों की पूरी सलाहितों (खूबियों) को उभारने में नाकामयाब रहा। मेरी नजर में इसका मुख्य कारण भाषा थी- खड़ी बोली में इनका खराब उच्चारण और लहजा। इनकी गलतगोई की अमिट आदत। अब्बल तो, खुद मेरे कानों में ये बातें बहुत खटकती थी, और दूसरे यह कि इनकी अपनी खुद-ऐतिमादी (आत्मविश्वास) पर इसका बुरा असर पड़ता था, जिसका नतीजा यह था कि वे उतनी बेबाकी से मंच पर नहीं उतर पाते थे, जिस तरह कि वह मेरे यहाँ आने से पहले अपने ग्रामीण मंच पर उतरते रहे थे। इस बात के एहसास के बाद जब मैं उन्हीं की मातृभाषा में नाटक करने लगा तो देखा कि वह न सिर्फ पूरे आत्मविश्वास से सारी कुव्वतें समेटे हुए अलग-अलग भूमिकाएँ निभाने लगे हैं, बल्कि अपनी कुछ ऐसी सलाहितों का भी मुजाहिरा कर रहे हैं, जो उनके अन्दर छिपी हैं, और जिनका कोई परिचय उनके ग्रामीण मंच की जिन्दगी में मुझे नहीं मिला था। मसलन, गंभीर भूमिकाएँ जिसमें मुँह से निकलने वाले अल्फाज़ एक बात कह रहे हों, और चेहरे पर उभरते हुए जज्बात और बीच-बीच की खामोशियाँ कुछ और ही तरफ इशारा कर रही हों। यह सलाहियत फिदाबाई में बदर्जएअतम (सम्पूर्णता के साथ) मौजूद थीं। बहादुर कलारिन के जमाने में तो अमरसिंह लहरे और भुलवाराम यादव जैसे अभिनेताओं ने भी ऐसी भूमिकाएँ निभाने में भी अपना पूरा कमाल दिखाया है।

इस श्रृंखला का पहला नाटक 'गाँव का नाम ससुराल' मूलतः छत्तीसगढ़ी नाचा के तीन प्रहसनों का एक सगुंफन था, जिसकी रचनात्मकता का आधार वे छत्तीसगढ़ी अभिनेता। हबीब तनवीर के अनुसार-

'लोक-कलाकारों की खासियत होती है उनकी आशु शक्ति, मतलब अंग्रेजी में जिसे इम्प्रोवाइजेशन कहेंगे। प्रसंग के मुताबिक वे डायलाग बनाते चलते हैं, कविता और गीत भी गढ़ लेते हैं, उनमें यदि कोई शायर हुआ तो। पिछले कई सालों से इन कलाकारों के साथ काम करने के दौरान मैंने यह महसूस किया कि इनकी इस ताकत का इस्तेमाल करना चाहिए, तभी हम इनकी पूरी कैपेसिटी (क्षमता) को जान-समझ पायेंगे। गाँव का नाम ससुराल में मैंने उन्हें पूरी छूट दी। इसमें मैंने तीन कहानियाँ रखी हैं। उन कहानियों की रूपरेखा मैंने उन्हें बता दी- एक सीनेरियों जैसा बना लिया और उन्हें बतला दिया कि कहानी यहाँ से शुरू होती है, ये-ये होता है और यहाँ खत्म होती है। अब तुम लोग खड़े होकर

डायलाग बनाओ और बोलो। वे चालू हो जाते। अब उस बोलने में शुरू में कुछ बकवास भी करते हुए बड़ी खूबसूरत चीजें बोल जाते, कुछ दोहराते भी। बीच-बीच में मुझे जरूरत महसूस होती तो उन्हें टोकता, रोकता। इस तरह धीरे-धीरे करके दो चार हफ्ते में बहुत कुछ तय हो गया और तब मैंने बैठकर पहला ड्राफ्ट लिख डाला। लाकर उन्हें सुनाया और कहा कि अब तुम लोग इसे भूल जाओ और अपने डायलाग बोलो। करते-करते एक जगह आकर नाटक ठहर गया। वे कलाकार पढ़े-लिखे तो होते नहीं, इसलिए इस तरह हके इम्प्रोवाइजेशन के कारण वे सहज अनुभव करते हैं, बात में से बात निकलती चलती है। बहुत बार वे बड़ी खूबसूरत बात बोल जाते हैं, बात जिसकी ओर आम तौर पर मेरा ध्यान ही न जाता। इस तरह की आजादी के कारण कलाकारों को एक और फायदा होता है, वे ज्यादा खुलकर अभिनय करते हैं। हर शो बदला होता है, कुछ छूट जाता है, कुछ नया जुड़ जाता है, अब हम लोगों को तो इस तरह मर्जी के मुताबिक छोड़ने और जोड़ने में परेशानी होती है, लेकिन इन कलाकारों को कोई दिक्कत नहीं होती, क्योंकि ये आदी होते हैं इसके। इनके साथ तो मजा यह होता है कि कोई ऐक्टर यदि कोई नई बात कह गया तो उस पर यकीनन सामने वाले को कोई नयी बात सूझ जाती है और बात आगे बढ़ चलती है।

अभिनेता आशु अभिनय की शक्ति से नाटक को एक नया रंग देती है। प्रसिद्ध कलाकार ठाकुरराम के बारे में हबीब तनवीर कहते हैं- 'इम्प्रोवाइजेशन' के कामिल उस्ताद ठाकुरराम थे। निहायत बेलगाम बात से बात निकालना इनका गुण था। नये-नये लतीफों से भरी हुई बातें इनकी कल्पना से मुसलसल निकलती ही रहती थीं। लेकिन करदारनिगारी के लतीफतरीन (सूक्ष्म) किनायें (संकेत), कैरेक्टर के मुख्तलिफ तहें, मुख्तलिफ गोशे (कोण),

आवाज का उतार-चढ़ाव नफ़ासत से भरा हुआ यकायक आवाज गिराकर जो मिजाज का महलू पैदा किया जाता है या किसी बात पर ज्यादा बल दिया जाता है। ये कुछ ऐसे गुर थे, जिनकी वजह से ठाकुरराम छत्तीसगढ़ के बेहतरीन कलाकार माने जाते थे।'

लोक अभिनेता की अभिनय शक्ति लोक जीवन से उसकी गहरी संवादता में छिपी होती है। पुरखों से मिला लोक ज्ञान, परम्परागत कलाओं में प्रवीणता के साथ अभिनेता की श्रमिक देह उसे मुक्त अभिनय के लिए व्यापक शक्ति देती है। परम्परा एवं इतिहास से प्राप्त मानसिक क्षमताओं और शारीरिक क्षमताओं का यहाँ बहुविध उपयोग होता है, जो लोक रंगभाषा को मानवीय क्षमताओं और सर्जना का अप्रतिम दस्तावेज बना देती है।

लोक रंगमंच पर अभिनेता गीत-संगीत-नृत्य-अभिनय की मिली-जुली बहुरंगी रंगभाषा की रचना करता है। लोक मंच का अभिनेता वाला संगीत भी उसके अपने लोक जीवन से लिया गया होता है, इसीलिये जब वह अपनी पूरी आवाज, पूरी फेंक, ऊर्जा और तन्मयता के साथ गाता है, सामने बैठा दर्शक वाह-वाह कर उठता है, हजारों हजार दर्शकों को बिना किसी यंत्र की सहायता से अपनी आवाज की बुलंदी और शारीरिक क्षमता से संबोधित करता यह लोक अभिनेता अपनी ऊर्जा और अथक कलात्मक शक्ति से मंच पर एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है, जो दर्शकों को आनंद की उच्चतम अवस्था तक ले जाना है।

लोक नाटकों की अभिनय पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता हाती है उसकी निजता, लगाव, अपनापन और रागात्मकता। नाटक, अभिनेता और दर्शक यहाँ एकाकार हो जाते हैं। यह अपनापन शास्त्रीय और अभिजात रंगमंच के लिए सहज संभव नहीं है।

सन्दर्भ

1. नेमिचन्द जैन-रंग परम्परा-पृ. 47
2. हबीब तनवीर- नटरंग / 50 पृ. 101
4. रघुवीर सहाय-रंग प्रसंग/ 3 पृ. 109

रंगों की प्रवृत्ति

डॉ. ऋतुराज वासिष्ठ

रंग शब्द नाटक का पर्याय है और अपना गहरा अर्थ रखता है। भरतमुनि नाटक का उद्देश्य बताते हुए लिखते हैं कि- 'दुःखः से आर्त, श्रम से आर्त, शोक से आर्त (दुःखी) लोगों के भविष्य में विश्राम देने के लिए इस नाट्यशास्त्र की रचना करता हूँ।' इस दृष्टि से देखने पर रंग दुःखःहर्ता के रूप में प्रकट होते हैं अर्थात् दैवीय दृष्टि, (आध्यात्मिक) एवं भौतिक दृष्टि से ज्योतिषादि के अनुसार और नाटक में रस-निष्पत्ति तथा रंजकता के अनुसार रंग सुख-दुःखादि के साधन मानते जा सकते हैं। रस, रंग और नाटक के संबंध अन्योन्याश्रित है। अतः रस और रंग की तालिका परखना आवश्यक है।

रंग मानव स्वभाव और उसके चरित्र पर विशेष प्रभाव डालते हैं, यही नहीं ज्योतिषशास्त्र भी रंगों की महत्ता प्रतिपादित करता है। ग्रहों का रंग निर्धारण उसके स्वभावानुसार ही है। कहीं-कहीं रत्न चिकित्सा, रंग चिकित्सा के रूप में की जाती है। रंग मानव जीवन की घटनाओं को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ सूर्य का रंग लाल (माणिक), चंद्र-सफेद (मोती), मंगल-लाल (मूंगा), बुध-हरा (पन्ना), गुरु-पीला (पुखराज), शुक्र-सफेद (हीरा), शनि-नीला (नीलम), राहु-काला (गोमेद), केतु-भूरा (केट्सआई) आदि रत्न पहने जाते हैं। वस्तुतः ग्रहों का प्रभाव रंग का प्रभाव ही है।

रस	स्थायी भाव	ज्योतिषानुसार	रंग-वर्ण	देवता
शृंगार	रति		श्याम	विष्णु
हास्य	हास	चन्द्र, शुक्र (मोती-हीरा)	उज्वल	राम
रौद्र	क्रोध	सूर्य (माणिक)	लाल	रुद्र, शिव
वीर	उत्साह	मंगल (मूंगा)	केशरिया	इंद्र (शुक्र)
करुण	शोक	केतु (लहसुनिया)	भूरा	वरुण

भयानक	भय	राहु (गोमेद)	काला	यम
वीभत्स	घृणा	शनि (नीलम)	नीला	महाकाल
अद्भुत	विस्मय	गुरू (पुखराज)	पीला	ब्रह्मा
शांत	निर्वेद	-	रंगहीन	बुद्धि

वृत्तगन्धि	शान्त	पीत	मुनि	पांचाली	भारती
खण्ड	हास्य	श्वेत	विष्णु	वैदर्भी	चित्र कौशिकी

इस प्रकार वैदिक गान परम्परा की ऊपरी तालिका में भी गायन के भेद के साथ उनके रंग और देवता का वर्णन मिलता है।

नाट्यशास्त्रकार रंगों का कार्य और रूप का निर्धारण करते हुए लिखते हैं कि 'चार स्वाभाविक (मुख्य) रंग होते हैं। सफेद, नीला (काला), पीला तथा लाल इन्हीं रंगों से पात्रों के शरीर को रंगा जाता है।'

इन मूल रंगों के अतिरिक्त रूप सज्जा अथवा मुखौटों के लिए रंगों का मिश्रण किया जाता है। 'दो रंगों से मिश्रण होने वाले रंग 'मिश्रित रंग' कहलाते हैं। संयोजक वर्ण कहलाते हैं।' मूल रंगों का मिश्रण इस प्रकार किया जाता है-

सफेद्	+	नीला	-	पाण्डु
सित	+	रक्त	-	पद्म
पीत	+	नीला	-	हरित
नीला	+	रक्त	-	काषाय
रक्त	+	पीत	-	गौर

इस प्रकार भिन्न-भिन्न वर्णों के योग से नए-नए रंग बनते हैं। इसी प्रकार अन्य रंगों को भी बनाया जाता है, जैसे-

लाल	+	पीला	-	नारंगी
लाल	+	नीला	-	बैंगनी
लाल	+	काला	-	कत्थई
पीला	+	नीला	-	हरा
पीला	+	काला	-	मटमैला
नीला	+	लाल	-	गुलाबी

रंगों को लेकर केवल नाट्यशास्त्र अथवा चित्र-सूत्र आदि ग्रन्थ ही नहीं, वैदिक संगीत के रागों एवं ध्रुव पदों में भी रंग, रस देवता आदि से संबंधित वर्णन मिलता है। वैदिक गान के प्रबन्ध गद्य में प्रबन्ध की विशेषताएँ इस प्रकार बताई गई हैं।

संज्ञा	रस	वर्ण	देवता	रीतियां	वृत्ति
उत्कलिका	वीर	रक्त	रुद्र	गौड़ी	आरभती
पूर्ण	शान्त	पीत	ब्रह्मा	वैदर्भी	सात्वती
ललित	शृंगार	सित	मदन	पांचाली	कैशिकी

'द कलर कोड' नामक पुस्तक में लिखा है कि रंगशक्ति ही सब कुछ है। इसमें फल व सब्जियों को चार मुख्य रंग वर्गों में विभाजित किया गया है- लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला-बैंगनी। प्रत्येक वर्ग में विभिन्न पोषक तत्व शामिल होते हैं। इस वर्गीकरण में पौधों पर आधारित रंग भी है, जो हमारे रोज के भोजन में शामिल होते हैं। 'व्हाट कलर इज योर डाइट' में इन्हें सात रंगवर्गों में विभाजित किया गया है। इसी प्रकार चित्र अथवा मुखौटों की रंग योजना उस चरित्र के मनोभावों और स्वभाव को प्रकट करती है। चित्र अथवा मुखौटे के रंग मूल चेहरे से कुछ हटकर, मूल रूप में नहीं लगाए जा सकते हैं, वे ही रंग मुखौटे के माध्यम से सम्प्रेषित होते हैं, मुखौटे के रंग चटकीले-भड़कीले और संतुलित होते हैं, यह चरित्र के व्यक्तित्व को नया आयाम प्रदत्त करते हैं, रंगों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'चित्रसूत्रम्' में भी रंगों के बारे में निम्नलिखित श्लोक है, इसमें वर्णित मूल रंगों का अस्तित्व आज भी है।

मूलरङ्गाः स्मृताः पञ्च श्वेतः पीतो विलोमतः।
कृष्णो नीलश्च राजेन्द्र शतशोऽन्तरत स्मृताः॥

लाल रंग

लाल रंग हृदय में शक्ति पैदा करता है, इससे हृदय में एक धड़कन पैदा होती है, खून का दौरा बढ़ जाता है। सुर्ख लाल रंग जोशीला बना देता है। लाल रंग का प्रभाव मनुष्य के हृदय पर पड़ता है। लाल रंग देशभक्ति और धर्म के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। इस रंग से गर्मी, हलचल, खुशी, आनन्द, सुख, इन्द्रियोत्तेजक होता है- इस रंग को देखने में सबसे अधिक गाढ़ा, जल्दी दिखाई देने वाला भड़कीला एवं भय का द्योतक है। इस रंग से क्रूरता, क्रोध, निर्दयी, कठोरता, कुटिलता, लालच, काम, यातना, घृणा एवं विध्वंस की भावना पैदा होती है। लाल रंग अधिक देखने से मनुष्य की चित्तवृत्ति काबू में नहीं रहती है। लाल ऊष्ण प्रकृति का रंग है। खतरे की तख्ती लाल रंग की होती है। स्पेन में सांडों को

युद्ध हेतु भड़काने के लिए लाल रंग के कपड़े का प्रयोग किया जाता है। युद्ध, क्रांति, नशा, आवेश लाल रंग के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। चिकित्सकों का मानना है कि- ज्यादा लाल रंग देखने से ब्लड प्रेशर रोग की संभावना रहती है। श्रम का रंग भी लाल माना गया है। इस प्रकार चित्र अथवा मुखौटों में भी लाल रंग का प्रयोग क्रोध, उत्साह, वीरता आदि भाव के लिए किया जाता है। माथे पर लाल रंग का कुंकुम या बिंदी, डूबता हुआ सूरज, उगने वाला सूरज, हाथों में लगाई मेहंदी तथा ईश्वर को अर्पण किया जाने वाला सिंदूर शुभ माने जाते हैं।

हनुमान के चित्र में गहरे लाल रंग का प्रयोग होता है। काली के मुखौटे में लाल जीभ एवं होंठ तथा लाल बिंदी और रक्ताभ नेत्र भयावह एवं रौद्र रस की अभिव्यक्ति करते हैं। भीम, कौरव, रूद्र आदि के मुखौटों में लाल रंग का अधिक प्रयोग तीव्रता लिए हुए होता है। 'लाल राजसी रंग है, पुलिस की पगड़ी, जल्लाद, अर्दली की पोशाक में इसका प्रमुख स्थान है। इस प्रकार लाल रंग जहाँ आनन्द दायक माना जाता है, वहीं लाल के स्थान पर गुलाबी रंग श्रृंगार के निकट है।'

टमाटर और तरबूज में 'केरोटिनायड लाइसोपन' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। यह जीभ को क्षति पहुँचाने वाले 'फ्री' रेडिकल्स को इकट्ठा करके शरीर से बाहर निकाल देता है। केरोटिनायड दिल, फेफड़ों, पौरुष ग्रंथि को कैंसर से बचाता है। लाल-बैंगनी चुकन्दर, अंगूर, बैंगन, आलूबुखारा, जामुन, लाल मिर्च, सेब एवं रेडवाइन आदि में शक्तिशाली 'एंटीऑक्सीडेंट्स' होते हैं, जिन्हें एम्थोसियानिन्स कहते हैं। यह बढ़ती उम्र के साथ रक्त के थक्के जमना रोककर, दिल को सुरक्षित करते हैं। इस प्रकार लाल रंग का मानव स्वास्थ्य में रासायनिक प्रक्रिया द्वारा सुरक्षा प्रदत्त करता है।

पीला रंग

भारतीय रस शास्त्र की दृष्टि से पीला रंग अद्भुत रस का प्रतीक है। ब्रह्मा इसके देवता माने गए हैं। पीला रंग 'ज्योति का प्रतीक' है। इसे देखने से मन में ज्ञान और प्रकाश का आभास होता है। इसका प्रभाव सीधे मस्तिष्क पर पड़ता है तथा भावों को प्रेरित करता है, परालौकिकता की ओर मन को ले जाता है। वस्तुतः पीला रंग आध्यात्मिक और ज्ञान का प्रतीक है, इसीलिए ज्योतिषानुसार गुरु ग्रह (वृहस्पति) के लिए पीले रंग का पुखराज

पहना जाता है। 'जो बुद्धि को प्रखर करता है। पीला रंग सबसे स्वच्छ और प्रकाशमय होता है।'

पील रंग पवित्रता ज्ञान तथा धार्मिकता का बोध कराता है। धार्मिक अनुष्ठानों में पीले रंग के वस्त्र पहनना शुभ माना जाता है। देवताओं की धोती, अंग वस्त्र आदि पीले रंग में ही होते हैं। पीले रंग से मन का पाप, अधर्म, अशान्ति तथा रोग भागते हैं। रक्त संचार और शरीर में स्फूर्ति आती है। गंदा पीला रंग मनुष्य को अधर्मी तथा डरपोक बनाता है, प्रकाश का रंग पीला है। बसंत ऋतु में पीले रंग का विशेष प्रभाव रहता है। पीले रंग का प्रभाव भी उष्ण प्रकृति का होता है। यह रंग अन्य रंगों में मिलकर गर्माहट पैदा करता है। कड़ी ठंड में पीला रंग गर्माहट देता है। गर्मी में कष्टदायक होता है, पीला रंग भारतीय जन-जीवन में शुभ माना जाता है। बौद्ध धर्मानुयायी पीला वस्त्र पहनते हैं। सिंह, बाघ की खाल पूजा में शुभ मानी जाती है, क्योंकि वह पीली होती है। स्वर्ण प्रभाव पीले रंग से अभिव्यक्त होता है। यह प्राथमिक रंग माना जाता है। इसके विपरीत ईसाई संस्कृति में पीला रंग द्रोह, ईर्ष्या, विसंगति, व्यभिचार, शर्म और द्वेष का प्रतीक माना जाता है। 'यलो हेमर' पक्षी पश्चिम में अशुभ माना जाता है। चीन में 'यलो पेरिल' आक्रमण के संकट को व्यक्त करता है। 'पीला, नारंगी, संतरा, आड़ू, पपीता इस वर्ग में आते हैं। इनमें 'बीटा क्रिओथेक्सिन' होता है, जो अंतकोशिकाओं के संचरण को सुचारू करने के साथ-साथ हृदय रोगों को दूर करने में भी मदद करता है। आयुर्वेद में पित्त का रंग पीला गया है, इसकी अधिकता पीलिया रोग उत्पन्न करती है।

भारत में पीला रंग मांगल्य, सृजन, परिपक्वता, ज्ञान, समृद्धि, आरोग्य, उल्लास का प्रतीक माना जाता है। मुखौटों में पीला रंग दुर्गा, ब्रह्मा, देवताओं आदि के लिए प्रयुक्त होता है। मृत्यु का पीला रंग माना जाता है। नृसिंह आदि देवताओं के चित्र या मुखौटों में पीले रंग की बहुतायत रहती है, किन्तु पीला रंग मुकुट का स्वर्ण भाव प्रकट करने के लिए भी मुखौटों में लगाया जाता है। वस्तुतः जो रंग सीधे (विशुद्ध रूप में) मुख पर नहीं लगाए जा सकते हैं, वे मुखौटों में लगाए जाते हैं। अधिकांश मुखौटों में रंग-मिश्रण नहीं किया जाता, अस्तु मुखौटों में पील रंग महत्वपूर्ण और बहुतायत से प्रयुक्त देखा गया है।

नीला रंग

रस परम्परा में नीला रंग वीभत्स रस का प्रतीक माना गया है, और इसके देवता महाकाल माने गए हैं। ग्रहों में नीला रंग शनि का माना जाता है, जो सूर्य तथा छाया के पुत्र है। रंग का ही प्रभाव है कि शनि अपने पिता सूर्य से घृणा करता है- दोनों एक दूसरे के विपरीत है। घृणा, वीभत्स रस का स्थायी भाव है।

नीले रंग का श्रेष्ठ पक्ष यह है कि- यह रंग मन को पारलौकिकता की ओर ले जाता है। यह स्वच्छ, शील तथा शुद्ध होता है- 'नीला रंग सत्य का द्योतक' है। इसके दर्शन से गंदगी, रोग, कलुष नष्ट हो जाता है। इसका प्रभाव बिजली अथवा चुम्बक जैसा होता है। मन के अन्धकार को दूर करता है- यह शान्ति, अहिंसा, कल्पना, गूढ़ तत्त्वों के निर्देशन एवं अन्वेषण की शक्ति प्रदान करता है। अन्तःकरण में इस रंग का सुखद-शीतल और शान्तिदायी प्रभाव पड़ता है। नीला रंग एकाग्रता, विचारशीलता, अभिनवकल्पना और मौलिक रचना की ओर प्रेरित करता है। हल्का नीला रंग आकाश तत्त्व का द्योतक है- जो 'ब्रह्म का रूप माना जाता है।' 'पश्चिम में अमर्यादित वैभव नीले रंग से प्रदर्शित किया जाता है, इसलिए पाश्चात्य दरबारों में 'रायल-ब्लू' को मान्यता मिली है।' चित्रकार 'पाब्लो पिकासो' ने 'ब्लू-पीरियड' से ही अपने कला जीवन की यात्रा आरम्भ की। सन् 1901 में उन्होंने नीले रंग की प्रधानता वाले चित्र अधिक निर्मित किए। नीला रंग स्वच्छ और शान्तिदायक है। स्वप्न और मन को व्यक्त करने के लिए नीले रंग का पूरक अन्य कोई रंग नहीं होता है। फीका नीला रंग उत्तेजक, उत्साही, लुभावना माना जाता है, जबकि मध्यम छटा वाला नीला रंग गम्भीर, शान्त और संयमी माना जाता है। गहरा नीला रंग उदासीनता, जहरीलापन, आत्मनाशी और विरक्ति का रंग है- विष का रंग भी नीला माना जाता है। शिव द्वारा विष-पान करने के कारण ही उन्हें 'नीलकण्ठ' कहा जाता है। धुँएदार नीला रंग, पौरुष और उदासीनता का रंग है। खिन्न मनःस्थिति और सब कुछ मिटा देने की प्रवृत्ति, गहरे नीले रंग से जागृत होती है। जीने लायक कुछ भी बसा न रहने से विरक्त मनःस्थिति का रंग गहरा नीला होता है। हिमालय के मानसरोवर के पास सवण ताल में काले पत्थरों से घिरी हुई झील की शाम, भयंकर लगती है। चुड़ैल, राक्षस, भूतों के लिए, राख की दाया लिए नीला रंग प्रयुक्त होता है। नीला रंग निर्मोही तथा विरक्ति की ओर ले जाता है।

मुखौटों में नीला रंग दो दृष्टि से प्रयुक्त होता है- हल्का नीला रंग जैसे-कृष्ण, विष्णु, राम, शिवादि के लिए और गहरा नीला रंग जैसे- महाकाल, महाकाली, राक्षस, दैत्य, दानव आदि विचित्र और डरावने पात्रों के लिए प्रयुक्त होता है। नीले रंग के मुखौटों में सफेद रंग के दाँत और लाल रंग की बाहर निकली जीभ, लाल आँखें भय का संचार करती हैं। कुल मिलाकर नीला रंग बाह्य कक्षा में कुछ अद्भुत की सृष्टि करता है। वह चाहे 'फेंटेसी' हो या 'फॅलेशबैक' अथवा विचित्र दृश्य इनमें नीला रंग अनिवार्य तत्त्व के रूप में प्रयुक्त होता है। चित्र या मुखौटों धार्मिक कथाओं में, चाहे वह भारतीय हो अथवा पाश्चात्य, दोनों कथा नाटकों में प्रयोग किए जाते हैं इनके अतिरिक्त आधुनिक नाटकों में नीले रंग के मुखौटों का प्रयोग विभिन्न भावनाओं, परिस्थितियों एवं चरित्र की महत्ता के अनुसार तथा मनोवैज्ञानिक प्रभाव के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं।

काला

प्रकाश वस्तुओं के रंग की पहिचान कराता है और अंधकार प्रकाश का विलोम है- अर्थात् प्रकाश के अभाव में रंग देखे नहीं जा सकते। सब जगह अंधकार छा जाता है। अंधेरे का रंग काला है। माना जाता है, सभी रंगों के मिश्रण से काला रंग बन जाता है। चित्रकला में सफेद और काले रंग को तटस्थ रंग कहते हैं। काला रंग परावर्तित नहीं होता और यह प्रकाश अथवा धूप की गर्मी सोखकर अधिक ऊर्जा उत्पन्न करता है। यह रंग तत्काल ध्यान आकर्षित करता है। काला रंग गहराई की अभिव्यक्ति करता है। पुराने भारतीय चित्रकार काले रंग के प्रत्यक्ष प्रयोग से बचने की सलाह देते थे। अशुभत्व का संस्कार और काले रंग के साथ अन्य रंगों के जरा से मिश्रण द्वारा इस रंग के दुष्परिणाम को टालना उनका उद्देश्य था।

रंग अपनी आकर्षण क्षमता रखते हैं। मुखौटों में इनकी आकर्षण क्षमता अधिक स्पष्टता से दिखती है। इसका कारण इनमें मूल रंगों की प्रधानता रहती है। मूल रंग दूर से ही दर्शकों को अपनी उपस्थिति का आभास कराते हैं, जबकि मिश्रित रंग कम दूरी तक ही अपना आकर्षण प्रभाव रख पाते हैं। उदाहरणार्थ लाल रंग की तुलना में उसके पूरक रंग उतने प्रभावशाली नहीं होते। सामान्तर दूरी से रंगों को देखने पर अपना प्रभाव नहीं छोड़ते,

जबकि उसी दूरी पर सहयोगी रंग अपना उत्कृष्ट प्रभाव रख पाते हैं। चित्र या मुखौटे के माध्यम से इस दूरी को स्पष्ट परखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में इसे रंग की शक्ति अथवा उसकी कमजोर पकड़ का आभास माना जा सकता है। मूल रंगों का प्रयोग अधिकतर मुखौटों में किया जाता है। चित्रकला में चित्र बनाते समय मिश्रित रंगों का प्रयोग अधिक होता है।

समस्त रंगों की आकर्षण शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। सभी रंगों की आकर्षण शक्ति की दूसरी सर्वथा भिन्न है, जैसे 'कैमी यलो' शक्तिशाली है जबकि 'यलो ऑकर' की दूरी कम है, सिंदूरी लाल रंग की दूरी अधिक है, जबकि अन्य लाल रंग की दूरी कम। मुखौटों में इन्हें आकर्षित करने के लिए लगाया जाता है, जिसे ये अधिक दूरी के दर्शकों को बांधे रख सकें। काला रंग अधिक अथवा कम दूरी से दर्शकों को अधिक आकर्षित करता है।

रस शास्त्र की दृष्टि से भयानक रस का रंग काला माना गया है और यम देवता माने गए हैं। रौद्र एवं भयानक स्वरूप महाकाल, महाकाली काले रंग की मानी जाती है, जो उनके शौर्य का प्रतीक है। उसके साथ प्रयुक्त रक्तवर्ण काली के स्वरूप को अति-प्रभावशाली बनाता है। इसी प्रकार काले रंग की महत्ता पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि महिलाओं के चमकीले काले केश, काला, जंगली भैंसा, (शौर्य का प्रतीक) आँखों की काली पुतलियाँ, शुभ, वैभव और मनमोहक होती है। चमकीला काल रंग वीरता को प्रकट करता है।

प्रसिद्ध रंग विश्लेषक नवीन खन्ना लिखते हैं कि-उधर काले रंग के प्रति मेरा मोह बढ़ता चला गया, रेल-इंजन का चमकीला काला रंग और उसकी दहाड़ से प्रभावित होकर मैंने एक कहानी लिखी 'एक नन्हीं सी बोगी' जिसकी नायिका पति के नपुंसक होने के कारण इंजन से प्यार करने लगी।

गहरे लाल रंग के संयोग से यह भयानकता क्रूरता में परिवर्तित हो जाती है। ये रंग संयोजन पात्र के चरित्र के अनुसार उनके भावों को प्रकट करते हैं, क्योंकि जहाँ एक ओर काली के मुखौटे में लाल व काले रंग की भी युति शौर्य व वीरता की पर्याय है, वहीं अन्य पात्र में चरित्र के अनुसार परिवर्तित भाव प्रगट होते हैं। कुछ विद्वानों ने काले रंग को अपवित्रता और अशुद्धता का भी परिचायक माना है।

हरा रंग

हरा रंग भारतीय रंग नहीं माना जाता है। यह अनुमान किया जा सकता है कि जोगीमारा की गुफाओं में हरा एवं नीला रंग नहीं मिलता है। 'उनमें लाल, पीले और विभिन्न भूरे रंग हैं।' वस्तुतः यह रंग भारतीय मूल रंगों में सम्मिलित नहीं है। भरत नाट्यशास्त्र में भी हरे रंग का वर्णन नहीं मिलता। चित्रसूत्रम में हरे रंग की प्रक्रिया का वर्णन नहीं है। यह ईरान से आया है। इसका मुख्य कारण यह रहा कि ईरात रेतीला देश है, उसमें हरियाली का अभाव है- अस्तु, नीला समुद्र अथवा आसमान और पीली रेत के मिश्रण से नया आभास दिया जो हरे रंग के रूप में अभिव्यक्त होता है। यही कारण है कि दूर रेगिस्तान में हरे पेड़ मोहक लगते हैं। इसीलिए हरा रंग इस्लाम का प्रतीक बन गया। रस शास्त्र में हरे रंग का वर्णन नहीं है, कारण स्पष्ट है कि हरा रंग भारतीय प्रकृति में चहुँ ओर रमा है, अतः उसका अधिक वर्णन साहित्य भर में हुआ है। हरा रंग समृद्धि का प्रतीक है। मांगलिक सजावट में फूल-पत्तियों की वन्दनवार केले का खम्ब और पत्ती की झालर शुभ मानी जाती है। यह रंग शीतल और आह्लाददायी है, किन्तु मूंगिया हरे के स्थान पर पीला मिश्रित (तोतापरी) हरा अधिक सुन्दर और आकर्षक लगता है।

'हरा फूलगोभी, पत्तागोभी, अंकुरित अनाज आदि में प्रचुर मात्रा में 'सल्फराफेन' 'आइसोसाइनेट' और 'इंडोल्स' जैसे रसायन पाए जाते हैं, जो कैंसर के खतरों से बचाते हैं। सफेद-हरा-लहसुन, प्याज, नाशपाती और हरे अंगूर इसी श्रेणी में आते हैं। प्याज व लहसुन में 'एलिसीन' नामक तत्व होता है, जो फोड़े फुंसियों से बचाव में मदद करता है, जबकि नाशपाती और अंगूर में 'फूलेवीनायड' नामक 'एंटीऑक्सीडेंट' होता है। मुखौटों में हरा रंग का प्रयोग मात्र गरुड़ के मुखौटे में हरा मिश्रित कल्थई रंग की बहुतायत रहती है। कुछ विचारक हरे रंग के सन्दर्भ में लिखते हैं कि- हरा रंग शीतलता, स्फूर्ति तथा पुनर्जीवन की ज्योति जगाता है, बलवर्धक है तथा शक्ति संचारक होता है। 'अब तक अनेक वैज्ञानिकों, कलाकारों, कवियों और मुनिजनों को हरे रंग ने स्फूर्ति दी है। इससे निश्चिंतता तथा कौतुक का ज्ञान होता है।' हरा रंग तो स्पष्टतः व्यक्ति के फुर्तीलेपन की ओर संकेत करता है। ऐसे ही यक्षगान के 'अतिकाय' नामक राक्षस जो कि स्वभाव से राक्षसों जैसा नहीं है, 'उसकी मुख सज्जा में राक्षस वेश की उग्रता के

साथ-साथ वीर वेश की गंभीरता भी दिखाई जाती है। इस हेतु उसके वेश का बुनियादी रंग हरा होता है। जिस पर सफेद रंग की पंक्तियाँ रेखाक्रम में अंकित की जाती हैं।' कल्पना वैविध्य में राक्षस-राक्षसी वेशों की मुख सज्जा अत्युत्तम होती है। इनकी रचना में भी अधिक समय लगता है। यक्षगान में 'राक्षस-वेश का बुनियादी रंग लाल और हरा होता है।' इस प्रकार हरा रंग मुखौटों में कम ही प्रयुक्त होता है। अन्य रंगों में सिंदूरी, गणेश एवं भैरव के मुखौटों में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त बैंगनी, नारंगी आदि रंगों का मुखौटों में प्रयोग नहीं होता।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि मनुष्य के व्यक्तिगत चरित्र को उभारने तथा उसे कल्पनावादी और अतिरंजित बताने के लिए चित्रों या मुखौटों और उनके रंगों का चयन किया जाता है। काली का मुखौटा लाल, पीला अथवा सफेद नहीं बनाया जाता। वह काला अथवा नीले रंग से बना होगा, वही रंग दर्शक पर चरित्र की छाप उत्पन्न करेगा। इस आधार पर 'रंग' अभिनेता, चरित्र और दर्शक के साधारणीकरण उत्पन्न कर, रसास्वादन में अपना योगदान देता है। रंगों का चयन कलात्मकता के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक प्रभाव को स्पष्ट करता है।

सफेद रंग

इसे सित रंग भी कहा जाता है। यह रंग आकाश का माना गया है। चित्रकला की दृष्टि से सफेद और काले रंग को रंगहीन माना जाता है, इन दोनों रंगों का गुण है कि इन दोनों को अन्य मूल

रंगों में मिलाने पर मूल रंग का स्वभाव हल्का अथवा गहरा हो जाता है, और अन्ततः इन दोनों में से किसी एक रंग में मिलाकर अपना स्वरूप खो देता है। सफेद रंग शाश्वत सत्य का प्रतीक माना जाता है, अधिकतर यह रंग शुद्धता का द्योतक है। यही कारण है कि श्वेतरंग का प्रयोग निर्विकार भाव को अभिव्यक्त करने के लिए मुखौटों में एवं पश्चिमी नाट्य में 'माइम' में किया जाता है। सफेद रंग तिलक, त्रिपुण्ड, श्वेत टीका, श्वेतकेश आदि दिखाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। नाट्यशास्त्रकार रंगों का कार्य और रूप का निर्धारण करते हुए लिखते हैं कि 'चार स्वाभाविक (मुख्य) रंग होते हैं। सफेद, नीला (काला), पीला तथा लाल, इन्हीं रंगों से पात्रों के शरीर को रंगा जाता है।' इन मूल रंगों के अतिरिक्त रूप सज्जा अथवा मुखौटों के लिए रंगों का मिश्रण किया जाता है। 'दो रंगों से मिश्रण होने वाले रंग 'मिश्रित रंग' कहलाते हैं। संयोजक वर्णन कहलाते हैं।' मूल रंगों के मिश्रण से सिंदूरी, भगवा, केशरिया, तोतापरी हरा, मटमैला पीला, नींबू पीला, आकाशीय नीला आदि रंग बनते हैं। इसके अतिरिक्त रंग द्रव्यों में-'कनक (सुनहरा), रजत (चाँदी), ताम्र (ताँबा), अभ्रक (चमकीला) तथा सिंदूर आदि रंग मिलते हैं।' इस प्रकार मूल रंगों और उनके मिश्रण से रंगों की हजारों प्रतिछवियाँ, उनकी मात्रा की न्यूनाधिकता से बनाई जा सकती है। इसे अंग्रेजी में 'शेड्स' कहा जाता है। ये रंग भावों के वाहक होते हैं, तथा रस निष्पत्ति में सहायक होते हैं। उदाहरणार्थ- सिंदूरी रंग सौभाग्य एवम् मंगल का प्रतीक है, अन्य दृष्टि से और भैरव, हनुमान का रंग उनके विघ्नकर्ता अथवा रौद्र रूप का द्योतक है।

लोकगीतों में नारी-सौंदर्य

डॉ. अर्जुनदास केसरी

अनेक कवियों ने सौंदर्य को 'सत्य' की संज्ञा दी है। 'सौंदर्य सत्य है और सत्य सौंदर्य।' जीवन में सौंदर्य अनिवार्य है। उसके बिना जीवन निस्सार है। इसीलिए मनुष्य आरंभ से ही सत्य और सौंदर्य की ओर आकृष्ट होता रहा है। यह सौंदर्य प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है, लेकिन कविवर सुमित्रानंदन पंत ने कहा है-

'सुन्दर हैं विहंग सुमन सुन्दर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम्'।

नारी के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। इसीलिए ब्रह्मा ने नारी को कल्याणी सृष्टि के रूप में जन्म दिया, तो नारी ने भी देव-दुर्लभ मानव को जन्म दिया। इसीलिए वेदों, शास्त्रों, पुराणों, उपनिषदों ने नारी की महिमा का बखान किया, तो जनकवियों ने भी उसे लोकजीवन का आधार बताया।

लोक-साहित्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। अवधी, ब्रज, भोजपुरी सहित लोकसाहित्य की जितनी भाषाएँ, बोलियाँ, उपबोलियाँ हैं, उन सबमें भोजपुरी का विशाल साहित्य मौखिक परम्परा में होते हुए जन-मानस के अनुरंजन का मुख्य साधन रहा। लोक-गाथाएँ हों, चाहे लोक-नाट्य, लोकगीत हों, चाहे लोक-कथाएँ यानी लोक-सुभाषित ही क्यों न हों, सब में नारी और पुरुष को गाड़ी के दो पहिये के रूप में देखा गया है।

सच है, नारी-सौंदर्य ने सबको मोहा है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सहित सभी देवों, ऋषियों, मुनियों, महर्षियों, राजर्षियों तक को नारी के सौंदर्य ने आकृष्ट किया है। आखिर क्यों? उसके विविध मोहिनी रूप हैं। वह एक साथ जननी, पत्नी, अर्द्धांगिनी, बहन, साली, सरहज, भाभी, दादी, काकी, नानी सब कुछ है। सीता, सावित्री, राधा, गायत्री, गार्गी, गौतम, कौशल्या, कैकेयी उसके अलग-अलग नाम हो सकते हैं, लेकिन उसके काम एक जैसे हैं।

बहुत दूर न जाकर भोजपुरी लोकमहाकाव्य 'लोरिकी' या 'लोरिकायन' को ही लें तो उसमें नारी को सती, आदर्श पत्नी, प्रेमिका,

मानिनी, सहधर्मिणी अनेक रूपों में दिखाया गया है। अगोरी में महरिन की कोख से जन्मी मंजरी अनिद्य सुन्दरी तो है ही, वह देवी स्वरूपा भी है। सातवीं संतान के रूप में जब वह जन्म लेती है तो महरा का महल बिना दीप के अंजोर हो उठता है। वह जैसे प्रकाश-पुंज हो। उसके अंग-प्रत्यंग से दिव्याभा बिखर पड़ती है। मंजरी का भाई सुवाचन नाल-छेदन करने के लिए नोना को बुलाने जाता है, तो कहता है-

ऐसी बोलल लरमियां का बोल,
बहिन न सुनबे तोय नोनवां।
अब न भयल कोखवा का हीन,
सतरयें लड़की भयल सतवादी।
जेमें ब्रह्मा खुसी हो जाय,
चौनिस बरसत अगोरी में पानी।
बिना दीया न बाती के,
महरे का भइल बखरी ओजरार।
लड़की न जनमल बाय सतवादी,
ऊ फेर चमकत सुरुजवा का बाय जोत।।

सौंदर्य का अर्थ केवल शारीरिक बाह्य सौंदर्य से नहीं लिया जाना चाहिए। वास्तविक सौंदर्य तो भीतर का है और वह है- वात्सल्य, करुणा, प्रेम, दया, परोपकार, सत्य, अहिंसा, जीव-दया, मानव-सेवा, सदाचार, अनुशासन, शिष्ट-व्यवहार, मधुरवाणी, मातृ-पितृ, गुरुभक्ति आदि। गोदना, मेहंदी, मीसी, काजल और तो और पुष्प, लताएँ, वृक्ष, मृगशावक, तोता, कबूतर, घर, नदी-तट, पर्वत-पहाड़, बाग-बगीचे सभी प्रकृति के उपकरण उपरोक्त अभ्यांतरिक गुणों को विकसित करने में सहायक होते हैं। आज जैसे-जैसे मनुष्य प्रकृति से नाता तोड़ता जा रहा है, वैसे-वैसे प्रदूषणजन्य अन्यान्य रोगों का शिकार होता जा रहा है। इन सबका मूल कारण है बढ़ती आबादी। आबादी बढ़ेगी तो प्रकृति का दोहन होगा, प्रकृति का दोहन होगा तो समस्याएँ बढ़ेंगी, समस्याएँ बढ़ेंगी तो स्नेह, दया, करुणा, प्रेम के मूल्य घटेंगे। मूल्य घटेंगे तो मारकाट होगी। इसीलिए काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर आदि जो सौंदर्य के विपरीत दुर्गुण हैं, उनसे मानव मात्र को मुक्त करना होगा। नारी उसकी सर्जना कर सकती है। इसीलिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने नारी-जीवन की कहानी दो ही शब्दों आंचल के दूध (वात्सल्य) और आँखों में पानी (करुणा) से लिख डाली-

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध और आँखों में पानी।

नारी का यही असली सौंदर्य है। लोकगीतों में इनका अनेकशः वर्णन आया है। 'लोरिकायन' को ही ले लीजिए, अगोरी का अन्यायी राजा मोलागत महरा की पूर्व जन्मी छहों कन्याओं को रखल बनाकर रख लेता है, किंतु जब मंजरी पैदा होती है तो राज-महल में जाने से साफ इन्कार कर देती है और राजा का प्रतिकार करती हुई अपनी दैवी-शक्ति से अपने लिए लोरिक जैसे वीर, नारी-उद्धारक का वरण करती है और वहाँ पहुँचने का रास्ता भी बताती है-

उत्तर न देसवा बाय कबूतर,
एक देस नगर गउरा गुजरात।
लिखल न बखरी लोरिके का,
जेकर उत्तर बायऽ दुवार।
दुवरां दुर्गा सिवल्ला बाय लीखत,
लोरिका के लिखले अखाड़े में बाय।
सांखड़ न लिखय बोहा मझार,
धरमी लिखले भसुरे के बाय।
तीन सौ साठ लिखल चरवाह,
जौन न गैयन के बाय चरवाह।

मंजरी का नाल-छेदन करने आयी नोना भी अप्रतिम सुन्दरी है। वह नाल-छेदन की विधिवत् तैयारी करती है, जिसका वर्णन 'लोरिकायन' में इस प्रकार है- उसकी विदाई भी कैसे होती है-

नोनवां न कोठी में बाय हलल,
रुचकर बतीसों सिंगार आपन करत।
पहिरत न साड़ी दखिनय का,
जेमें चर-चर अंगुर पर बाय तार।
डंट कर होतय बिदाई नोनवां का,
सगरो करत सिंगार नोनवां आपन बाय।
आपन बतीसों अमरन बाय बनौले,
मूहें कूंचत मघइया बाय पान।
माथे चमकत टिकुली बाय देले,
जैसे बरत सुरुजवा क बाय जोत।

महले से निकलल नोनवां बाय,
दुवरा पर देखत मुरछा बाय मारत।

अहिवात नारी का सबसे बड़ा सौंदर्य है। कामदार साड़ी बत्तीसों प्रकार के आभूषण- कड़ा, छड़ा, करघनी, हार, हंसुली, बेरवा, पहुँची, कंगन, लहठी, चूड़ी, अंगूठी, मथबंदी, कर्णझूल, नथुनी, हैकल, हुमेल, टिकुली आदि के अतिरिक्त मुख में मघइया पान से उसके सौंदर्य में चार चाँद तो लग जाता है, किन्तु सौंदर्य का असली तत्व है उत्तम स्वास्थ्य। शरीर स्वस्थ है तो सब ठीक है। कमल कीचड़ में भी शोभा पाता है। काटों में गुलाब खिलता है। नारी का स्वास्थ्य उसके खान-पान पर निर्भर करता है। शाकाहार, दुग्धयुक्त भोजन, फल, सुअन्न का सेवन शारीरिक सौंदर्य को निखारते हैं। श्रम का भी कुछ कम महत्त्व नहीं है। तब की नारी जाता चलाती थी, चकरी से दाल दलती थीं, ढेंकी से चावल बहू ही कूटती थीं। ढेकली चलाती, पानी भर लाती, गोबर पाथती, घास काटती, महुआ बीन लाती थीं, वह तब निरोग और सुन्दर थी। आदिवासी करमा गीत की पंक्तियों में श्रमशील नारी के सहज सौंदर्य का चित्रण देखिये- जैसे पीपल का पत्ता डोलता है, चाँदनी खिलती है, उसी प्रकार उसका यौवन निखरता है। यौवन के खिलने के साथ वह सहज श्रृंगार करती है, नजाकत तो खुदा के हुस्न देने के साथ अपने आप आ जाती है-

लीप-लीप पिपरी क पात डोले,
दीप-दीप उगैले जोइन्हइया।
तील-तील बढैले गोरी क देहियां,
कतहूँ न मिले जोड़ी जवान।
केकर घरे मांग संवारे,
बान्हेंले सुरुजा मेंडर खोंपा।
भरि मांग सेन्हुरा भरावे,
भरि माथ टिकुल दमकावे।
टकटक मथवा निहारे निलजिया।

लोक के उपमानों का भी क्या कहना! सुन्दरी नारी अपना जूड़ा ऐसा बांधती है जैसे सूरज-मण्डल हो। लोकगीतों में कजरी का बड़ा नाम है। मिर्जापुर-सोनभद्र की बात हो और करमा-कजरी-बिरहा-लोरिकी का उल्लेख न हो तो बात अधूरी रह जाती है। नारी-सौंदर्य का सहज पारम्परिक चित्रण इस कजरी में देखिये-

अंखिया में सोहे जानी कर हो कजरवा,
मथवा में एगुरे क बिंदिया।
अरे हो सांवरिया।
अंगिया में सोहे जानी पंचरंग चोलिया,
उपरां कुसुम रंग चुनरी। अरे...।

नारी-सौंदर्य पर ऋतुओं का भी कम प्रभाव नहीं पड़ता। ऋतु-परिवर्तन के साथ सौंदर्य में निखार आता है। सावन का महीना नारी को उमंगित करता है तो फागुन का पुरुष को। सावन में नायिका अपने को कैसे प्रस्तुत करती है-

भोर भरै मंगिया, किरन गूथै गजरा।
सांझ रचै मेहंदी, दियन पारै कजरा।
अंचरवा क गुन गावै पवनवां।
सेजरिया से हँसि-हँसि बोलै कंगनवां।

छहों ऋतुएँ रंग बदलती हैं। प्रकृति के संग-संग जीव-जगत भी रंग बदलता है। उसमें नारी अपनी अलग पहचान बनाती है। इसीलिए वह वर्षा में मेहंदी-महावर से श्रृंगार करती है तो वसंत में फूलों से। सावन में तो निर्जीव भी सजीव हो उठते हैं और वसंत में-

बसंत की धूम है जहाँ में,
हुआ है सहनों-चमन बसंती।
सगुन का क्या है लिखा एलाही,
गुलों का है ऐरहन बसन्ती।
सुघर बसंती समर बसंती,
जूही बसंती सोखन बसंती।
बेहतर है नौनिहाल दिल में,
हुआ है उनका वतन बसंती।।

एक विवाह गीत में नारी के सौंदर्य की सहज अभिव्यक्ति देखिये। शरीर सुन्दर है तो सारे श्रृंगार फीके हैं। श्रीराम ब्याहने आये हैं। नेग मांगना शुभ है, इसलिए मांगा जाता है, वर्ना उसकी जरूरत क्या है? वार्तालाप है-

कइसनि सारी हो कइसनी सरहजि, कइसनि धनियां हमार?
सुन्दर सारी हो, सुन्दर सरहजि, सुन्दर धनियां तोहार।

का मांगु सारी हो, का मांगु सरहजि,
 का मांगु धनियां तोहार?
 सारी त मांगु फूलेन का गजरा, सरहजि लहंगा पटोर।
 धनियां जे मांगु कंचन चुरिया, सगरे अयोध्या क मोल।
 कहां पड़बा मोरे राजा फूले क गजरा,
 कहां पड़बा लहंगा पटोर?
 कहां पड़बा मोरे राजा कंचन चुरिया,
 सगरे अयोध्या क मोल?
 मलिया घरे पड़बइ कंचन चुरिया, बजाजे घरे लहर पटोर।
 सोनरा घरे पड़बइ कंचन चुरिया, सगरे अयोध्या क मोल।

सचमुच क्या सहयोग था उस जमाने में? आज दहेज मांगने वालों को सीख लेनी चाहिये। इसीलिए तो वह रामराज्य था। काश! आज भी दहेज में वृक्ष देने, उसे रोपने, सींचकर बढ़ा करने की परम्परा शुरू हो जाती तो पर्यावरण की समस्या भी अपने-आप हल हो जाती।

नारी का असली सौंदर्य है उसका पातिव्रत, जिसका आज भी नारी में अभाव है। उसका असली सौंदर्य है- मातृत्व-वात्सल्य, किंतु वह अपनी कोख से पैदा अपने नवजात शिशु को स्तनपान तक नहीं कराती, जबकि स्तन का दूध अमृतवत् गुणकारी है। अप संस्कृति और आधुनिकता के चलते तलाक की न जाने कितनी घटनाएँ नित्य घटती रहती हैं।

लोकगीतों-गाथाओं में नारी को स्वाभिमानी के रूप में चित्रित किया गया है। वह अपनी इज्जत से समझौता नहीं करती। उसका आदर्श गौतमी जैसी मानिनी का भी है। 'लोरिकायन' की ही तरह 'विजयमल' भी प्रमुख लोकगाथा है जिसमें वर्णित है कि विरजेमल जब सगरे के भीटा पर पानी भरने आयी ग्रामवधूटियों के साथ छेड़खानी करता है तो वे राजा तक उलाहना दे आती हैं। वे पर पुरुष की कुदुष्टि का प्रतिकार करती हैं। इस प्रसंग में उनका सौंदर्य इस प्रकार वर्णित है कि लगता है उस समय लज्जा, शील और चरित्र ही नारी का सौंदर्य था। देखिये-

बरहों ऊहां बोलल बाड़ीं बोली कुबोलिया हो ना।
 बरहों कवने संचवा में ढारल बा सारीरिया हो ना।
 तनिको देहियां में ना लागल बा सरमियां हो ना।

जवने के मंगिया में डलले हो इहें सेन्दुरवा हो ना।
 ओनकर फूट गयल किसमतिया हो ना।
 मालूम होला हउवै ई हिजड़व हो ना।।

'लोरिकायन' में आये अन्य नारी पात्रों का सौंदर्य भी निराला है। सोन के पानी का रंग ही ऐसा है कि अगोरी राज्य की नारियाँ सुन्दर होती ही हैं। वे साहसी, पराक्रमी, चरित्रवान, पतिपरायणा, सती-साध्वी होती हैं। मंजरी की सहेली अपनी सुन्दरता की देवी है। लोरिक-मंजरी से, भावी-युद्ध की आशंका से, जब रात में मिलने जाता है तो वह उसे अपने सौंदर्य और अपनी कला से मोह लेती है। हाव-भाव दिखाकर वह लोरिक की चुटकी लेती है। उसे गूंगा-बहरा तक की संज्ञा दे डालती है। 'लोरिकायन' में वर्णित उसके हाव-भाव, विलास, कटाक्ष, हास-परिहास और वाक्पटुता का चित्रण देखिए। वह लोरिक के न बोलने पर क्या करती है-

ऊठल न धिया सुवाचन का,
 जेकर अनपी पड़ल बालय नाम,
 रुचकर बतीसों सिंगार बाड़य कयले,
 ढोलक बान्हत पेटिया घुमाय,
 आय कर करत न मड़ये में बाड़य,
 कहां ताल बाड़य मारत।
 चुटकी मारत अहीरे के अगवां,
 छन भर कवनों मन नाहीं भिटकय।
 न तऽ ताकत पलकवा बाय उठाय,
 खिसियाइल धिया सुवाचन का।
 अगिया लागो नचबवा कुदबे,
 ई बाबू गूंग बहिरवा बाड़य देखात।

लोरिक सब कुछ समझ जाता है। वह तो मंजरी से भावी युद्ध की मंत्रणा करना चाहता है और इस उद्देश्य से जब मंजरी की कोठी में पहुँचता है तो मंजरी भी अपने सौंदर्य से उसे मुग्ध कर लेती है और आकर्षित होने के बाद भी विदा होने के पूर्व वह उससे भाई-बहन का ही नाता जोड़े रहने का निर्णय करती है। यही तो है भारतीय कन्या का आदर्श, आभ्यंतर सौंदर्य-

जेकर दावन मंजरी बाड़य नाम,
 सोरहों सिंगार बाय कयले।
 पहुंचल न धिया महरें का,

लोरिका लेलेस पलंगिया बैठाय।
 फिर गयल हाथ अहिरे का,
 तब फेर छरकल धिया महेरे का।
 सइयां न सुनबा सुखनंदन,
 सेन्दुर मनबा कहलवा हमार।
 जय दिन रहबा रजिया तू अगोरी,
 देख भाई तोहरय न दूसरे का होबय।
 कौनों ऐसन काम जो जैहें,
 देवमुन छोड़िहैं सथवा तोहार ॥
 बिहना लागीं लोहा बिरयार ॥

इसी प्रकार 'लोरिकायन' में फाग-होली का भी प्रसंग आया है। लोरिक प्रेमिका चंदा से होली खेलने जाता है। वह परम सुन्दरी है। गोबर-माटी से दोनों छक कर होली खेलते हैं, गीत की पंक्तियाँ हैं-

मौज न होत बाय फगुआ अनेत,
 चनवां साजत परात बाय।
 गोबर न माटी बाय घोरत,
 पानी देहलेस गगरी में सब घोर।
 तान-तान मारत परात चननी से,
 खेलत न मरद गउरा का
 धड़ाधड़ परात चले चननी का,
 नीचे जमल गोल अहिरे का।
 धुंआधार फगुआ कहत बाय,
 औसर लौटल अहिरे के बाय।
 मारत न रंदा डंफो में,
 लेकर तानत निसाना चनवां पर।
 बाजल न पींच अहिरे का,
 चनवां का दहिनी ढीप फेंकाय।

कजरी गीतों में वयःसंधि के सौंदर्य का वर्णन आया है। इस अवस्था में आँख चुराना, मुस्कुराना, तड़पाना, मिजाज दिखाना, शर्मिदा होना, सीने को आँचल से चुराना, बिराना, मेहंदी-महावर लगाना, नजराना, जलाना, नजर लड़ाना, दिल को मिलाना अपने आप आ जाता है। बारी उमर, मदमाते जोबन, पतली-बलखाती कमर, नाजुक कलाइयां, उसमें काली-काली चूड़ियाँ, कान का बाला, गले में माला, रतनारी आँखों पर गुमान नारी के सौंदर्य के

साधन ही तो हैं। नाजुकता का भी खूब वर्णन लोकगीतों में हुआ है। नायक कहता है- हे गोरी! तुम पानी भरने न जाओ, तुम्हारा सांवरा पति ही पानी भर लायेगा, क्योंकि कहीं तुम्हारे पाँव फिसल गये तो? लेकिन पाँव फिसलेंगे कैसे? भारतीय नारी आज की विदेशी नारी थोड़े न है जो....।

इसी तरह लचारी गीत की कुछ पंक्तियों में नायक को गुलाब का फूल तो नायिका को केसर कहा गया है।

मोर राजा गुलाबे क फूल, हम हानि केसरिया।
 काहो कहों एड़ चाची-चाचा के, जेन हेरइं गुलाबे क फूल।
 हमइं धन केसरिया ॥

आभूषण सौंदर्य का प्रसाधन है। नारी उसे बेहद चाहती है। विवाह के अवसर पर वह अपने भाई से नाक का बेसर गाँव के सोनार से गढ़वाकर लाने के लिए आग्रह करती है। वह भाई भी शौक से स्वीकारता है।

एतना जो सुनलेनि बिरन भइया,
 झपटि ओसारे अइनऽ।
 धन नाके के बेसरिया उतरबइ,
 बहन पहिरइबइ ॥

लोक में गोदना का इतना महत्त्व है कि उसे अगले जन्म का साथी और उपहार माना जाता है। सास तो अपने दाँतों में बतीसी (मिसी) लगाती है, किन्तु वह गोदना का शौक करती है। बादी जनजाति का गोदना गीत है, जिसमें श्वसुर द्वारा गोदना निहारे जाने पर पुत्रवधू कहती है-

सासू के दांत रे बतीसी,
 बहू के बाहीं गोदना।
 ससुर से बोले ससुआ तऽ
 मोरे निहारे गोदना।
 जे हम जनतीं कि ससुर निहरबा तू गोदनाऽ
 ससुर नाहीं रे गोदवतीं हम गोदनाऽ।

लोकगीतों में वर्णित उपमानों की छटा भी निराली है। आदिवासी करमा गीत है-

होऽऽऽ तो केसिया बा जैसेऽऽ कारी बदरियाऽऽऽ
बहुतइ नीक लागै हो गोरीऽ
टपर-टपर महुआ टपकेऽऽऽ
तोरे संग बीनब पियार हो गोरीऽ
चनवां कऽ टेमवां, धुमिलायल तोरे मुहें आगेऽऽऽ
तोरे से लगन बइठवाइब हो गोरीऽ ।

नींबू और टिकोरा भी तो वयःसंधि की देहरी पर खड़ी
युवती के उरोजों के प्रतीक हैं। एक अन्य गीत की पंक्तियों में उन्हें
ग्रहण किया गया है, जो इस प्रकार हैं-

अमवां के बगिया चारिगो नेबुइया
तोरेत नीक लागे रेऽऽऽ
खण्डा टुक्का खाइ के पेड़वा लगउली रेऽऽऽ
खाये के दइयां छोड़ गल परदेशी रेऽऽऽ ।

तात्पर्य यह कि लोकगीतों में सौंदर्य, विशेष रूप से नारी
सौंदर्य का सर्वत्र निरूपण हुआ है। नारी वैसे भी तो सृष्टि का
आधार है। वह ब्रह्मा की अद्भुत सृष्टि है। नारी से पृथक पुरुष का
कोई अस्तित्व नहीं है और पुरुष से पृथक नारी भी अधूरी है। पुरुष

के लिए प्रेरणा नारी का सर्वोत्कृष्ट सौंदर्यात्मक गुण है। दोनों को
मिलकर नयी सृष्टि, नये युग का निर्माण करना चाहिए। नारी में
पुरुष के प्रति और पुरुष में नारी के प्रति आकर्षण का केन्द्र है
सौंदर्य। परन्तु जहाँ तक प्रेम की बात है, वह रूप-कुरूप नहीं
देखता। लैला-मजनू का प्रेम कुछ ऐसा ही था। रंग भी सुन्दरता का
प्रभावहीन पक्ष है। गोरा भी असुन्दर और काला भी सुन्दर हो
सकता है। जनजातीय महिलाएँ ज्यादातर काली या सांवली होती
हैं, किंतु वे सुन्दर भी होती हैं। सुन्दर और असुन्दर होना बहुत कुछ
स्वास्थ्य, वय और शरीर की बनावट पर निर्भर करता है। 'प्राप्तेतु
षोडषे वर्षे सूकरी भवति अप्सरा।' सोलहवें वर्ष में पहुँचकर सूकरी
भी अप्सरा दीखती है। सुन्दरता की परख की दृष्टि भी अलग-
अलग होती है। 'समय-समय सुन्दर सबै रूप-कुरूप न केय।'।
कोई रूप पर मोहित होता है तो कोई गुण पर। गुणग्राही हमेशा गुण
पर मोहित होता है और उसकी कद्र करता है, किंतु कामी केवल
कामिनी के रूप पर। लोकगीतों में सर्वत्र नारी के बहुआयामी
सौंदर्य का चित्रण हुआ है। इसीलिए तो वे सामाजिकों के लिए न
केवल मनोरंजन के साधन रहे हैं, अपितु पुराणेतिहास, नीति, धर्म
और आचरण के भी प्रमुख स्रोत रहे हैं। आज जरूरत है कि हम
उन्हें संजोकर रखें।

छत्तीसगढ़ी परम्पराएँ

डॉ. पीसीलाल यादव

छत्तीसगढ़ के हरे-भरे खेत, झर-झर झरने और गीत नदियाँ, लहराते, जंगल, मुस्काते पहाड़ जहाँ इसकी आर्थिक और प्राकृतिक सम्पन्नता का बोध कराते हैं। वहीं यहाँ के लोक जीवन में रचे-बसे गीत, नृत्य, कथाएँ-गाथाएँ उनके आचारों-विचारों और लोक परम्पराओं का बखान कर सांस्कृतिक सम्पन्नता को प्रकट करती हैं। लोक जीवन के तीज-त्योहार उनकी परम्पराओं के पोषक हैं। ये परम्पराएँ लोक से इस तरह जुड़ी रहती हैं कि इनके बिना लोक का कोई भी कार्य व्यापार सम्पन्न नहीं होता। जीवन के प्रत्येक क्षण में चाहे वे क्षण दुख के हों या सुख के सबमें इनकी परिव्याप्ति रहती है।

लोक परम्पराएँ लोक में अंगीकृत वे परम्पराएँ हैं, जिनमें उस अंचल की लौकिक रीति-नीति का वर्तमान समाविष्ट रहता है, साथ ही उसका अतीत भी प्रतिबिम्बित होता है। लोक परम्पराएँ एक विशेष अवधि में प्रचलन में आती हैं और लोकोपयोगी होने पर लोक की स्वीकृति पाकर स्थायी हो जाती हैं। लोक परम्पराएँ बनती और बिगड़ती भी हैं। यदि किसी अंचल का इतिहास खोजना है तो उसकी लोक परम्पराओं की तह में जाना होगा। इसके लिए जरूरी होगा कि हम उस लोकांचल के लोक जीवन के आचार-विचार और क्रिया व्यापार को जानें-समझें। प्रत्येक लोकांचल की अपनी विशिष्टता होती है। इतिहास प्रमाण माँगता है। लोक शिष्ट की तरह प्रमाणिकता की अपेक्षा नहीं करता, यह उसकी आस्था-विश्वास और लोक मान्यताओं पर आधारित होता है। ऐसा भी नहीं है कि लोक का अपना इतिहास नहीं है, पर लोक और उसकी परम्पराओं के इतिहास की प्रारंभिक श्रृंखला जोड़ना कठिन है, वह इसलिए कि लोक तो लोक है और वह वेद से पहले है। लोक की सर्व व्यापकता से इंकार नहीं किया जा सकता।

लोक परम्परा की चर्चा करते हुए लोकविद डॉ. श्यामसुन्दर दुबे ने लिखा है-‘लोक एक परम्परा है। पराम्परा सतत् विकसित मूल्य बोध है। इसके सातत्य में सृजन मूलक समस्त अनुष्ठान अगली पीढ़ी के लिए हस्तांतरित होते रहते हैं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसमें कुछ नया जुड़ता रहता है। परम्परा का विकास लगभग एक रैखिक होता है। चूँकि यह विकास है, इसलिए यह उर्ध्वगामी भी होता है।

लोक में परम्परा का विकास एक तरह से सांस्कृतिक समुन्नयन भी है, इसलिए यह एक क्रियाशील जीवित प्रणाली है, जो सामाजिक प्रकार्यों को गति देती है।' परम्परा का नाभि केन्द्र लोक है। (मर्डई-2004 पृ. 61) अतः लोक और परम्परा एक दूसरे के पूरक हैं, जहाँ लोक है वहाँ परम्परा है और जहाँ परम्परा है वहाँ लोक। लोक परम्पराएँ लोक जीवन में सामाजिक स्तर पर सतत् चलती रहती हैं, कुछ छूटती हैं, कुछ जुड़ती हैं, पर परम्पराओं का प्रवाह बाधित नहीं होता।

छत्तीसगढ़ के लोक जीवन में लोक परम्पराओं का पुष्ट प्रमाण परिलक्षित होता है। यह इतिहास से परे नहीं है। लोक परम्पराओं का अपना इतिहास है। यह इतिहास लोक का इतिहास है जो विच्छिन्न रूप में है। लोक का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना कि मानव के विकास का इतिहास। लोक की प्राचीनता ही उसका इतिहास है। इसलिए उसकी लोक परम्परा उससे पृथक् नहीं है। छत्तीसगढ़ के लोक जीवन में मामा द्वारा भांजा का चरण स्पर्श कर प्रणाम किया जाता है। यह लोक परम्परा छत्तीसगढ़ के मूल निवासियों में आज भी जीवित है, जबकि दूसरे क्षेत्रों में भांजा मामा का चरण स्पर्श करता है। निश्चित रूप से उक्त परम्परा के पालन के पीछे इसका अपना इतिहास है। छत्तीसगढ़ का पूर्व नाम कौशल, दक्षिण कौशल था। तब यहाँ के राजा भानुमंत थे। उनकी बेटी थी कौशिल्या। कौशल की बेटी कौशिल्या अयोध्या नरेश राजा दशरथ को ब्याही गई थी। चूँकि कौशिल्या कौशल प्रदेश की बेटी-बहन थी, अतः लोक ने उसे अपनी बेटी-बहन माना अतः उसका पुत्र भांजा हुआ, जिसका भांजा स्वयं भगवान राम हो तो उसके सौभाग्य का क्या कहना? रामचन्द्र यहाँ लोक के भांजा हुए। इसी भावना के वशीभूत होकर यहाँ लोग भांजा को प्रणाम करते हैं। भांजा के स्थान पर श्रीराम समादृत हैं। भांजे को प्रणाम करना श्रीराम को प्रणाम करना है। यह लोक की आस्था है। उसका अपना लोक विश्वास है, जो लोक परम्परा के रूप में प्रचलित है। यह परम्परा आज भी कायम है कि गाँव में किसी एक की बेटी-बहन पूरे गाँव की बेटी-बहन होती है। इसी भावना के कारण गाँवों में सामाजिक रिश्ते पारिवारिक रिश्तों की भाँति प्रगाढ़ हैं। गाँव में किसी के घर नवजात शिशु के जन्म पर उसे राम-कृष्ण की संज्ञा दी जाती है, और बधाइयाँ कौशिल्या-दशरथ, यशोदा व नंद बाबा को ही भेजी जाती हैं। साधारण माँ-बाप भी कौशिल्या

दशरथ की संज्ञा पाते हैं। आज भी सोहर गीत में यही गाया जाता है।

*काखर भये श्रीराम, काखर भये लछमन हो
ललना काखर भरत भुवाले, सोहर जस गावंव हो
कौशिल्या के भए श्रीराम, सुमित्रा के लछमन हो
ललना कैकेयी के भरत भुवाल, सोहर जस गावंव हो*

जब संस्कारों की बात चली है तो क्यों न लोक परम्परा के इतिहास को संस्कारों में ही तलाशें। छत्तीसगढ़ में जन्म संस्कार, विवाह संस्कार और मृत्यु संस्कार ही प्रमुख हैं। विवाह संस्कार में नेग की बहुलता है। यहाँ विवाह संस्कार में मंगरोहन स्थापना का विधान है। मंगरोहन गूलर की लकड़ी से बनाई जाती है। मड़वा (विवाह मंडप) को गुलर (डूमर) की टहनी से आच्छादित किया जाता है। इसके पीछे भी लोक की अपनी परम्परा है, अपनी मान्यता है। यह लोक परम्परा महाभारत की कथा से जुड़ी हुई है। गांधार नरेश की पुत्री गांधारी जब विवाह योग्य हुई तो सगाई हुई। जिस राजकुमार से उसका रिश्ता तय हुआ, उसकी मृत्यु हो गई। गांधार नरेश बड़े चिंतित हुए। राजा ने ज्योतिषियों से इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि गांधारी को गूलर (डूमर) वृक्ष का श्राप है। अतः श्राप निवारण के लिए गांधारी का विवाह पहले गूलर वृक्ष से किया जाए, बाद में उसके वास्तविक वर से। सभी नरेश मृत्यु की आशंका से भयभीत थे, अतः गांधारी का विवाह नहीं हो पा रहा था। तब भीष्म पितामह ने अंधे धृतराष्ट्र के लिए श्रापमुक्ति का उपाय जानकर गांधारी को चुना और ज्योतिषियों की सलाह पर गांधारी का विवाह पहले गूलर की मानवाकृति बनाकर मंगल काष्ठ से किया गया, तत्पश्चात् धृष्टराष्ट्र से। तब से लोग इस परम्परा का पालन कर रहे हैं। शायद इसके पीछे अपशकुन से बचने की भावना निहित हो। इसलिए छत्तीसगढ़ में विवाह मण्डवा में गूलर की लकड़ी से बने मंगरोहन की स्थापना की जाती है। उक्त कथा मूल महाभारत में अप्राप्य है। यह किंवदन्ती ही सही, पर यह लोक परम्परा इतिहास की ओर इंगित करती है।

छत्तीसगढ़ में रंगहा तेली एक विशेष जाति होती है। ये तेली ही है, किन्तु इस जाति की स्त्रियाँ एक हाथ में काँच की चूड़ियाँ व एक हाथ में केवल रांगा पहनती हैं। इसलिए इन्हें रंगहा तेली कहा जाता है। यह इनकी अपनी जाति परम्परा है। ऐसा

क्यों? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जाता है कि इस लोक परम्परा की कथा महाभारत की कथा से जुड़ी हुई है। इस संबंध में पण्डवानी में यह प्रसंग आता है-कौरव पक्ष द्वारा पाण्डवों को मारने के कई प्रयास हुए। लाच्छागृह में पाण्डवों को जलाने की चेष्टा हुई, लाच्छागृह जब धूँ-धूँकर जलने लगा, तब लाच्छागृह के निकट रहने वाला एक तेली अपनी घानी से तेल निकाल रहा था। उसने अचानक देखा कि महल जल रहा है, आग की लपटों को देखकर वह घबराने लगा, उसने सोचा कि इस भयानक आग से तो सारा गाँव जल जायेगा। किसी का भी बचना संभव नहीं। कहते हैं न कि विपत्ति के समय आदमी को अपने प्राणों की ज्यादा चिन्ता होती है। अतः भय के मारे वह घानी व बैल को छोड़कर अपने प्राण बचाकर गाँव से बाहर की ओर भागा।

सुबह लोगों ने जला हुआ घानी व मरा हुआ बैल देखा तो उन्होंने समझा कि तेली भी जलकर मर गया होगा। अतः परम्परा अनुसार क्रियाकर्म होने लगा। दशगात्र के दिन गाँव के पुरुष पीपल के नीचे श्राद्धकर्म में संलग्न थे, नदी के घाट पर उसकी स्त्री के हाथों की चूड़ियाँ उतारी जा रही थी। इतने में पीपल के नीचे बैठे लोगों ने तेली को आते देखा। किसी को विश्वास न हुआ, पर वह था तेली ही। अतः सारे लोग डर के मारे भूत-भूत करके भागने लगे। तेली ने कहा-भागो नहीं मैं भूत नहीं हूँ। कुछ लोग साहस कर रुके तो देखा कि वह सचमुच तेली ही था। लोग असमंजस में पड़ गए इसलिए कि उसे मृत समझकर उसका श्राद्ध कर्म किया जा रहा है, उसकी स्त्री की चूड़ियाँ उतारी जा रही थी। लोगों ने नदी घाट पर जाकर देखा तो दाएं हाथ की चूड़ियाँ तोड़ी जा चुकी थीं। इस विषम परिस्थिति में उसने दाहिने हाथ में रांगा के पटा को रहने ही दिया गया। रांगा तेली की स्त्रियाँ आज भी लोक विश्वास के अनुसार दाहिने हाथ में चूड़ी के स्थान पर रांगा ही धारणा करती हैं। यह लोक परम्परा आज भी अपनी जगह कायम है।

हम लोक के जितने निकट जाते हैं, उसकी लोक परम्पराओं से उतने ही अधिक परिचित होते जाते हैं। लोक की परम्पराएँ मनुष्य को प्रकृति से जोड़ने का अद्भुत प्रयास हैं। काश शिष्ट समाज भी ऐसा कर पाता तो पर्यावरण प्रदूषण की विकट समस्या उत्पन्न नहीं होती। लोक वृक्षों का लालन-पालन अपनी संतान की तरह करता है। केवल लालन-पालन ही नहीं करता, बल्कि उसे

वह अपने संस्कारों से भी जोड़ते चलता है। वृक्ष लगाना तो पुण्य कार्य है, किन्तु विवाह करना यह क्या कहलायेगा? महापुण्य न। नये मंदिर, नये घर, नये कुँए-तालाब की प्रतिष्ठा के बाद ही इनका उपयोग किया जाता है। यह लोक का अपना चलन है। छत्तीसगढ़ में आम व इमली वृक्षों के विवाह करने की लोक परम्परा है। आम का पौधा लगाने के बाद जब उसमें फल आने लगता है। किसान उस पेड़ का आम तब तक नहीं खाता, जब तक कि उसका विवाह न करे। जब घर में विवाह प्रसंग आता है, तब उसी समय आम व इमली का विवाह संपन्न किया जाता है। उसके बाद ही परिवार वाले उस पेड़ के फल को खाते हैं।

लोक परम्पराएँ आचारों-विचारों और संस्कारों को ही प्रभावित नहीं करते, अपितु वह खानपान को भी प्रभावित करती है। तीज-त्योहारों में व्यंजनों का बड़ा महत्त्व होता है, विशेष व्यंजनों के बिना तो तीज-त्योहार फीके लगते हैं। सभी लोकाचलनों के अपने विशेष व्यंजन हैं, किन्तु छत्तीसगढ़ के व्यंजन यहाँ की लोक आस्था से जुड़े हुए हैं। सावन अमावस्या को पोला का त्योहार मनाया जाता है। इस दिन विशेष व्यंजन ठेठरी खुरमी बनाया जाता है। खाने में स्वादिष्ट। सरसरी तौर पर देखने व खाने पर ठेठरी खारा व खुरमी मीठा, किन्तु इसकी गहराई में जाने पर हमें लोक जीवन की आस्था और उसकी उदात्त लोक परम्परा के दर्शन होते हैं। पोला के दिन नदिया अर्थात् नंदी की पूजा होती है, नंदी शिव का वाहन है। मिट्टी से बने नांदिया बैल की पूजा कर कपड़े का गोना बनाकर उसके ऊपर ठेठरी व खुरमी चढ़ाया जाता है। यह एक सहज बात है, लेकिन मेरी दृष्टि में सहज नहीं, बल्कि विशिष्ट है। जरा ठेठरी व खुरमी की आकृति पर गौर करें, तो आश्चर्य में पड़ जाएंगे। ठेठरी जलहरी अर्थात् पार्वती व खुरमी शिवलिंग अर्थात् शंकर का ही रूप है। यह लोक परम्परा न जानें कब से प्रचलित है, इसका इतिहास ढूँढ पाना तो सर्वथा असंभव है। छत्तीसगढ़ की लोक परम्पराएँ विशिष्ट हैं। ये लोक परम्पराएँ गाँव-समाज और राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने वाली हैं। यहाँ मितान बंदने की लोक परम्परा है। वैसे तो मित्रता की अनेक कथाएँ सुनने की मिलती हैं। राम-सुग्रीव व कृष्ण-सुदामा की मित्रता जग-जाहिर है। मित्रता की महिमा बताते हुए तुलसीदास जी ने लिखा है-

*जे न मित्र दुख होंहि दुखारी, तिन्हहि बिलोकत पातक भारी
निज दुख गिरि सम रज करि जाना, मित्रक दुख रज मेरु समाना।*

जिनके असिमति सहज न आई, ते सठ कत हठि करत मितार्ई
कुपथ निवारी सुपथ चलावा, गुन प्रगटे अवगुनहिं दुरावा
लेत देत मन संकन धरई, बल अनुमान सदा हित करई
बिपत्ति काल कर सत गुन नेहा, श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ।

तुलसीदास जी की इस भावना को यहाँ के लोकजन ने आत्मसात् कर लिया है, इसका प्रमाण है यहाँ मितान बदने की परम्परा। लोग चाहे किसी जाति या धर्म के हों, परस्पर मित्रता के अलौकिक बंधन में बंध जाते हैं। यहाँ मितान बदने के लिए भोजली, जंवारा, गंगाजल, गजामूंग, गंगा बारु, महाप्रसाद, दौना पान, गोंदा पाना, गोंदा फूल, मोंगरा, तुलसीदल, सोनपतली, आमा मऊर आदि वस्तुओं की सौगंध लेकर मितान बढ़ा जाता है। लोक परम्परा के अनुसार मितान का नाम नहीं लिया जाता। मितान बढ़कर फिर लोग शरीर, प्राण और आत्मा से एक हो जाते हैं। पारिवारिक दृष्टि से मितानों के मध्य रिश्ते, खून के रिश्ते से भी ज्यादा प्रगाढ़ होते हैं। मितानों द्वारा एक दूसरे के बाप को फूल ददा, माँ को फूल दाई तथा पत्नी को मितानीन कहकर आदरणीय सम्बोधन दिया जाता है। मितान परम्परा प्रेम का पर्याय है। समन्वय, सौहार्द्र, भाईचारा और एकता की पोषिका है यह लोक परम्परा। इस परम्परा को सारी दुनिया अंगीकार कर ले तो विद्वेष, संप्रदायिकता स्वमेव समाप्त हो जायेगी और सारी दुनिया प्रेम और भाईचारे के आलोक से आलोकित हो जायेगी।

ऐसा ही प्रेम में पगा, स्नेह बंधा एक और रिश्ता है, जिसे लोक परम्परा में सखी बदना कहा जाता है। वे माताएँ जिनकी संतानों का क्रम व संख्या समान होती हैं, वे आपस में सखी बदती हैं। यह मितान परम्परा का दूसरा रूप है। सखी बदने वाली स्त्रियाँ एक-दूसरे को सीताराम सखी कहकर अभिवादन करती हैं। ये परम्पराएँ पारिवारिक संबंधों का पुष्ट करती हैं। गाँवों में चाहे हिन्दू हो या मुसलमान इस लोक परम्परा का प्राणपण से निर्वाह करते हैं। हमारा शिष्ट समाज लोक से यह प्रेरणा लेकर मानवीय मूल्यों के क्षरण को रोक सकता है। पर उसे अपने स्वार्थ और आपाधापी जीवन से छुटकारा मिले तब न।

ये लोक परम्पराएँ मानव जीवन के लिए संजीवनी की तरह हैं, जिसने भी एक बार इसका सेवन कर लिया सदा-सदा के लिए प्रेम, भाईचारा और एकता के पवित्र बंधन में बंध जायेगा। शिष्टजन

लोक परम्पराओं को जाने समझे बिना इसे हास-परिहास का विषय बनाते हैं। यह उनकी भूल है। ये लोक परम्पराएँ लोकजीवन को संबल देती हैं। लोक परम्पराएँ लोक जीवन से कट नहीं सकतीं। ये बात और है कि बदलते समय के साथ इसके रूपों में किंचित परिवर्तन हो जाए। इनका सम्यक और प्रमाणिक इतिहास भले ही न हो, पर ये प्राणवान और अपने बल पर लोक को ऊर्जावान बनाती हैं। यही कारण है कि आज भी लोक इन लोक परम्पराओं के प्रति आस्थावान है।

सुआ गीत का सौन्दर्य

छत्तीसगढ़ लोकगीतों का आगार है। यहाँ के लोकगीतों की विविधता छत्तीसगढ़ के लोक जीवन के मर्म को अभिव्यक्त करती है। ये लोकगीत विभिन्न लोकपर्वों और मांगलिक अवसरों पर लोक कंठ से मुखरित होते हैं। ये आज भी श्रुति और स्मृति परम्परा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी कंटानुकंट लोक व्यवहार में रचे-बसे हैं। इन लोकगीतों में नारी प्रधान गीतों की बहुलता है, जिनमें नारी के सुख-दुख और उनके हृदय के भावों की अभिव्यक्ति है। सुआगीत छत्तीसगढ़ की नारियों का ऐसा ही लोकगीत है, जिसमें नारियों के द्वारा नृत्य भी किया जाता है।

सुआ नृत्य 'देवारी' अर्थात् दीपावली के समय किया जाता है। छत्तीसगढ़ का सुआगीत संदेशात्मक शैली का गीत है। प्राचीन साहित्य में विभिन्न माध्यमों से संदेश भेजने की परम्परा की जानकारी प्राप्त होती है। महाकवि कालिदास ने अपनी कृत मेघदूतम् में विरहाकुल यक्ष के संदेश के लिए मेघ को संदेशवाहक बनाया। जायसी की पद्मावत में रानी नागमती, रतन सेन के सिंगलद्वीप चले जाने पर तोते के माध्यम से अपना संदेश भेजती है। अन्य स्थानों में भी कबूतर के माध्यम से संदेश भेजने का उल्लेख मिलता है। अतः लोकगीतों में पक्षी के द्वारा संदेश भेजने की बात आती है, तो यह उसकी प्राचीनता को प्रमाणित करती है। क्योंकि लोक की उपस्थिति ही शिष्ट का आधार बनती है। सुआ अर्थात् तोता बड़ा समझदार और पालतू पक्षी है। छत्तीसगढ़ में बड़े प्यार से पाला जाता है। तोता मनुष्य की नकल करता है। घर में जब महिलायें अकेली होती हैं तो अपने सुख-दुख की अभिव्यक्ति सुआ के माध्यम से करती हैं। सुआ नृत्य एवं गीत में मिट्टी का सुआ उनके संदेश वाहक के रूप में ही प्रयुक्त होता है। इनमें-

‘तरि हरि-नाहना मोर नाह नरि नाहना रे सुअना’ की धुन टेक के रूप में प्रयुक्त होती है। विभिन्न विद्वानों ने सुआ गीत को मुख्यतः वियोग प्रधान गीत कहा है, पर ऐसा नहीं लगता। क्योंकि सुआगीतों पर समग्रता से विचार करने पर नारी जीवन के विविध पक्षों का भी इसमें वर्णन मिलता है। इन गीतों की सहजता, सरलता और सरसता ठीक नारी जीवन की तरह विशिष्ट है। क्योंकि नारी का जीवन भी सहज और सरल होता है। प्रेम, करुणा, ममता, त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति नारी का जीवन एक खुली किताब की तरह है। सुख-दुख, संयोग-वियोग, आदर-उपेक्षा की कथाएँ उसके जीवन से जुड़ी हुई हैं। छत्तीसगढ़ का नारी चरित्र भी इससे पृथक नहीं है। लोक में नारी की प्रतिष्ठा, उसकी अस्मिता चिन्तनीय नहीं है। वह खेत-खलिहानों, जंगल-पहाड़ों व खदानों में पुरुष के साथ मेहनत के मामले में उसकी बराबर की भागीदारी है। इसलिए ये सुआगीत नारी जीवन का आईना है। उनके भावों की अभिव्यंजना के साक्षी हैं-

तरि हरि - नाहना मोर नाह नरि नाहना रे सुअना
छोड़ि के चले हे बनिझार रे सुअना
सास संग खइबे, ननद संग खेलबे रे सुअना
छोटका देवर मनभाय रे सुअना।

सुआगीत की परम्परा बड़ी प्राचीन है, इसकी प्राचीनता असंदिग्ध है, क्योंकि इनमें व्यक्त मनोभावों की प्राचीनता मानव की अभिव्यक्ति के साथ जुड़ी हुई है। इसलिए यह भी सत्य है कि छत्तीसगढ़ में सुआ नृत्य की परम्परा प्राचीन है। सुआ नृत्य ‘गौरी-गौरा’ पूजन के पूर्व किया जाता है। छत्तीसगढ़ में गौरी-गौरा पर्व पार्वती व शंकर के विवाह का लोक आयोजन है। लोक देवी-देवताओं के विवाह को अपने हाथों से संपन्न करता है। यह लोक की संपन्नता और उसकी उदारता का परिचायक है। गौरी-गौरा का आयोजन छत्तीसगढ़ में सामाजिक सहभागिता और सहकार का अनुपम उदाहरण है। इस गौरा पूजा में संपूर्ण गाँव के लोग उदार हृदय से सहयोग करते हैं। इसमें छोटे-बड़े, ऊँच-नीच या जाति-पाति का भेदभाव नहीं होता। इसी सहयोग के निमित्त आयोजन के लिए महिलाएँ 10-15 की टोलियों में प्रत्येक घर जाती हैं और सुआगीत गाकर नृत्य करती हैं। इस नृत्य से मिले अन्न व राशि गौरी-गौरा के विवाह में खर्च किये जाते हैं। तब गाँव-गली और घर-आँगन डेहरी में सुआगीत का सम्मोहक स्वर सुनाई पड़ता है-

तरि हरि-नाना-नाना सुअना हो,
तरि हरि-नाना, नाना सुअना
नांगमोरी तरिया होगे मतावर,
ओ नांगमोरी तरिया होगे मतावर
सब झन पकड़े चिंगरी अऊकोतरी,
अहिमन पकड़े कारी नागिन ल
तरि हरि-नाना, नाना सुअना,
तरि हरि-नाना, नाना सुअना
सुनि लेबे सासे बिनती हमारे,
कइसे के पऊलवँ कइसे सुधारवँ
तरि हरि-नाना, नाना सुअना,
तरि हरि-नान, नाना सुअना
ओतका के बाते ले मैं नई जानवँ,
जानय बहू ओ ससुर तुम्हारे
तरि हरि-नाना, नाना सुअना,
तरि हरि-नाना, नाना सुअना

सुवागीत नारी की निश्चल अभिव्यक्ति है। इसमें नारी जीवन का दर्शन प्रतिबिम्बित होता है। मिट्टी के बने सुआ अर्थात् तोते को एक टोकनी में लेकर महिलाएँ टोकनी के चारों ओर घेरा बनाकर, ताली बजाकर, कमर झुकाकर नृत्य करती हैं और अपने अंतर्मन की भावनाओं को व्यक्त करती हैं। सुआगीत में किसी भी तरह के वाद्य का प्रयोग नहीं होता है, इसका दुर्लभ पक्ष है। केवल हाथ की ताली ही ताल का कार्य करती है। सुआ में नृत्यरत महिलाओं का पद संचालन बहुत सहज-सरल किन्तु आकर्षक होता है। महिलाएँ गीत गाकर, झूम-झूमकर नयननाभिराम नृत्य करती हैं-

ढेला-ढेलवानी जाँवर खेती हाय रे मोर सुअना,
ढेला-ढेलवानी जाँवर खेती
खेत में बोये चना भाजी हाय रे मोर सुअना,
खेत में बोये चना भाजी
भाजी टोरन बर गियेवं हाय रे मोर सुअना,
भाजी टोरन बर गियेवं
गड़िगेवं बनारसी कांटा हाय रे मोर सुअना,
गड़िगेवं बनारसी कांटा
ओती ले आथे नाऊ छोकरा हाय रे मोर सुअना,
ओती ले आथे नाऊ छोकरा

कांटा हेरउनी किया देबे हाय रे मोर सुअना,
कांटा हेरउनी किया देबे.....

सुवागीत का विषय बड़ा वैविध्यपूर्ण है। सुआगीत में केवल विरह-वेदना का ही नहीं, अपितु इसमें प्रेम, प्रकृति, धर्म, समाज, परिवार व मन के उल्लास का सुन्दर चित्रण मिलता है। सुआगीत के सैकड़ों स्वरूप आज लोक में बिखरे पड़े हैं। आवश्यकता है इनको सहेजने और संवारने की। प्रेम और प्रकृति लोकगीतों के मूल हैं। छत्तीसगढ़ का सुआगीत इससे अछूता नहीं है। सुआगीत में प्रेम और प्रकृति दोनों ही मुखर हुए हैं। प्रेम और उल्लास की एक बानगी-

तरि हरि नाना मोर ना नारि नाना ग पान वाला,
मन मोर मोह तोर झूल-झूल रँगना ग पान वाला,
लुका चोरी बइरी के अनेखी देखना ग पान वाला,
पान वाला मारे तिरछी नजरिया, मुस्कान वाला,
मन मोर गावय तोर मया के गीत ग पान वाला,
मोर जिनगी के अधार तोरे पिरित ग पान वाला,
पान वाला जनम जुग के पहिचान ग पान वाला

प्रकृति तो लोक का आराध्य है। लोक का प्रकृति प्रेम जग जाहिर है। लोक प्रकृति की पूजा देवता की तरह करता है। लोक जानता है कि प्रकृति के बिना उसका जीवनयापन संभव ही नहीं है। इसलिए प्रकृति लोक के सांस-सांस में समाहित है। प्रकृति उसकी जीवनचर्या का अभिन्न अंग है। नदी-नाले, डोंगर-पहाड़, हवा-मिट्टी, पानी, पेड़-पौधे लोकगीतों के वर्ण्य विषय हैं। लोक प्रकृति के सौन्दर्य की उपासना करता है। इसलिए कहा जा सकता है कि लोक की प्रकृति है और प्रकृति ही लोक है। प्रकृति की यह सौन्दर्य उपासना सुआ गीत का भी सौन्दर्य है-

तरि हरि नाहना मोर ना नारि नाना,
मोंगरा लगा ले लुआँ पार म
तुलसी के बिरवा ल चौंरा म लगा ले,
दीदी मोंगरा लगा ले कुँआ पार म

× × ×

तरि हरि ना मोरि नाना सुआ न,
फूले हे कुसुम रंग फूल सुअना
का फूल लोरेंव का टोरेंव,
का फूल लेंव सुबास मोरे सुअना

चम्पा फूल लोरेंव, चमेली फूल टोरेंव,
मोंगरा के ले सुबास मोरे सुअना
तुलसी के बिरवा ल चौंरा म लगायेंव,
गोंदा लगायेंव ओरि-ओरि सुअना

लोक मानस धर्म के प्रति सदैव आस्थावान रहा है। विशेषकर महिलाएँ अधिक धार्मिक होती हैं। उनके आचार-विचार, कर्म और व्यवहार धर्म की धुरी पर ही केन्द्रित होते हैं। इसलिए उनकी भावाभिव्यक्ति में धार्मिक गीतों की प्रधानता है। सुआ लोकगीत शैली की स्वतंत्र विधा है। इसकी अपनी विशिष्ट पहचान है। इसमें धार्मिक विषय भी सन्निहित है। सुआ के धार्मिक गीतों में विशेषकर राम, कृष्ण व शंकर के चरित्र से संबंधित गीतों का आधिक्य है। राम, कृष्ण और शंकर लोक के अधिक निकट हैं। इसलिए लोकगीतों में इनके चरित्रों का बखान अधिक है-

तरि हरि नाना मोर ना नारि नाना,
मैं का जानवँ मैं का करवँ मोर राम नईहे ओ
मोर सीता ल लेगथे, लंका के रावन ओ
मैं का जानवँ मैं का करवँ मोर राम नईहे ओ
जोगी के रूपे धरे निसाचर, दे भिक्षा मोहि माई
मैं का जानवँ मैं का करवँ मोर राम नईहे ओ
लेकर भिक्षा अँगन बीच ठाढ़े, रथ में लिये चढ़ाई
मैं का जानवँ मैं का करवँ मोर राम नईहे ओ
काखर हो तुम धिया पतोहिया, काखर हो भौजाई
मैं का जानवँ मैं का करवँ मोर राम नईहे ओ
काखर हो तुम प्रेम सुन्दरी, कोन हरे ले जाई
मैं का जानवँ मैं का करवँ मोर राम नईहे ओ
रामचन्द्र के प्रेम सुन्दरी, रावन हर ले जाय
मैं का जानवँ मैं का करवँ मोर राम नईहे ओ.....
तरि हरि नाना मोर ना नारी नाना, तीनों बेचागे कांसी में
हरिश्चन्द राजा तारामती रानी, संग म रोहित कुमार
तीनों बेचागे कांसी में.....

सुआगीत ग्रामीण महिलाओं के द्वारा गाया जाता है। ये महिलाएँ निरक्षर होती हैं किन्तु सैकड़ों लोकगीत इनके कंठ में बसे होते हैं। ये अवसर पाकर स्मृति के आधार पर इनके कंठों से ये गीत झरने की तरह झरते हैं। सुआगीत वाचिक परम्परा में आज भी विद्यमान है। सुआगीत नारी मन की कोमलता, स्त्री सुलभ

भावुकता और मधुरता से रससिक्त है। सुआगीतों पर कथात्मक गीतों की भी लम्बी श्रृंखला है। एक पूरी कथा सुवागीत विस्तार से गायी जाती है। ये कथात्मक गीत लोक के नारी चरित्रों यथा- रेवारानी, अहिमन रानी, बिरझा रानी, सुरजा आदि के साथ-साथ हरिश्चन्द्र, तारामती और अन्य धार्मिक कथाओं पर केन्द्रित होते हैं-

तरि हरि नाहना नारी नाना, कदम तरी मोंगरा के झाड़े
येदे झाड़े रे सुअना, कदम तरी मोंगरा के झाड़े
सब कर बेटी मोर मइहर जाथे ओ, सुरजा गईन ससुरारे
ससुरारे रे सुअना, कदम तरी मोंगरा के झाड़े
रांध दाई रांध दाई, घोंवही कलेवना ओ
सुरजा लेवन बर जइहों
येदे जइहों रे सुअना, कदम तरी मोंगरा के झाड़े
एके कोस रेगेंव दूसर कोस रेगेंव तीसर म सुरजा के देसे
येदे देसे रे सुअना, कदम तरी मोंगरा के झाड़े

नारी दाम्पत्य-जीवन का मूलाधार होती है। वह ममता की प्रतिमूर्ति होती है। परिवार की लोक लज्जा, मान-मर्यादा से लेकर परिवार के भरण-पोषण में उसकी अहम भूमिका होती है। वह परिवार को अपने प्यार-दुलार से संतुष्ट करती है, फिर भी वह उपेक्षा, अपमान और तिरस्कार का पात्र बनती है। दाम्पत्य जीवन में कई तरह के उतार-चढ़ाव आते हैं, ये उतार-चढ़ाव, मान-अपमान भी सुआ गीत के विषय बनते हैं। अपने भोगे हुए उन क्षणों को सुआगीत के माध्यम से महिलाएँ प्रकट करती हैं-

तरि हरि नाना मोर नाह नरि नाना रे सुअना
तिरिया जनम झनि देय, रे सुअना तिरिया जनम झनि देय
तिरिया जनम मोर गऊ के बरोबर रे सुअना
के तिरिया जनम झनि देय
सास मोला मारय, ननद गारी देवय रे सुअना
के पिया गये हे परदेस।

सुआगीत में जहाँ नारी मन के उमंग उसके उल्लास चित्रित हैं, वहीं उसकी पारिवारिक स्थिति का भी मार्मिक और सजीव अंकन हुआ है। वह अपने हृदय की व्यथा-कथा और पारिवारिक स्थिति के साथ संत्रास को ही प्रकट करती है, जिसके कारण उसके परिवार की आर्थिक स्थिति कमजोर हुई है। वह अपने पति

के दुर्व्यसन का विरोध करती है तो उसे पति द्वारा घर से निकाल दिया जाता है। इसका एक मार्मिक उदाहरण प्रस्तुत गीत में दृष्टव्य है-

तरि नरि नाना मोर ना नरि नाना ओ बांसपान सुरिया
बांसपान सुरिया, दुरुग हवे दुरिहा
लाली मोटर म निकल जाबो दुरिहा
कांसे के लोटा ल कुँआ म डारे
हाथे के घड़ी ल जुँआ म हारे
बांसपान सुरिया.....
पेटी के संग में तबला चिकारा
मोरो गरीबीन के होंगे निकाला
बांसपान सुरिया

नारी जीवन में जो कुछ भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष है, उन सबका सुआगीत के माध्यम से गीत रूप में प्रकटीकरण हुआ है। उनके आसपास घटने वाली घटनाएँ भी गीत का रूप लेती हैं। नारी स्वयं प्रकृति होती है, इसलिए प्रकृति के साथ-साथ वर्ष भर में आने वाले तीज-त्योहार और प्रकृति में होने वाले परिवर्तन भला सुआगीत के सौन्दर्य से कैसे विलग हो सकता है? सुआगीत में बारामासी वर्णन की अद्वितीय छटा है-

तरि हरि नाना मोर ना नरि नाना,
रे सुअना तुलसी में दियना बार
अघ्वन महीना अगम भईगे,
रे सुअना बादर रोवय ओस डार
पूसे सलाफा धुकत हवय,
रे सुअना किट-किट करे मोर दाँत
माघ कोयलिया आमा रूख कुहके,
रे सुअना मारता मदन के मार
फागुन फीका जोड़ी बिन लागे,
रे सुअना काला देवंव रंग डार
चईत जंवारा के जोत जलार्येव,
रे सुअना सुरता में धनी के हमार
बैसाख आती मड़वा गड़ियायेंव,
रे सुअना छाती में पथरा मढ़ायेंव
जेठ महीना में छूटे पछीना रे,

रे सुअना बोहे जस नदिया के धार
 लगते असाढ़ बोलन लगिस दादुर,
 रे सुअना कोन मोला लेवय उबार
 सावन रिमझिम बरसय पानी,
 रे सुअना कोन सऊत रखिस बिलमाय
 भादो कमरछट तीजा अऊ पोरा,
 रे सुअना कइसे के देइस बिसार
 कुंवर कलपना ल कोन मोर देखये,
 रे सुअना पानी पिये पितर दुवार
 कातिक महीना धरम के मासा,
 रे सुअना आईस सुरहुत्ती के तिहार
 अपन-अपन ले सब झन पूछय,
 रे सुअना कहां हे धनी तुंहार

सुआ नृत्य व गीत के पश्चात् नारियों का नृत्य दल घर वाले
 को आशीष देना नहीं भूलतीं। सुआगीत में लोकमंगल की भावना
 और सर्वस्व की हितकामना इन पंक्तियों में उद्धृत है-

बेटवन-बेटवन तोर घर भरी जाय रे सुअना
 के डेहरी लिखे वो परदेस रे सुअना
 बरिख दिन के मोर पाबंद आय रे सुअना
 के दरसन करे चले आयेन रे सुअना
 रंग महल म मोर बईठव मालिक रे सुअना
 के रामे राम ले लवे हमार रे सुअना

सुआगीत का सौन्दर्य, लोक का सौन्दर्य है। ये जितने सहज-
 सरल हैं, उतने ही सुन्दर भी। जिस तरह से पूर्णिमा का चाँद
 सबको अपने आलोक से आलोकित करता है, ठीक उसी तरह
 सुआगीत भी अपनी मधुरता और सुन्दरता से लोक जीवन को
 रससिक्त और प्रकाशित करता है। सुआगीत महानदी की निर्मल
 धारा की तरह है, जो सबकी प्यास बुझाती है और जीवन रस का
 संचार करती है। सुआगीत छत्तीसगढ़ की नारियों के कवि हृदय
 होने का पुष्ट प्रमाण है। छत्तीसगढ़ के गाँव-गाँव में नारी कंठों में
 बसे ये गीत छत्तीसगढ़ की संस्कृति को प्रदीप्त करते हैं। आवश्यकता
 है इनके संरक्षण और संवर्धन की, संग्रहण और अभिलेखन की।
 ताकि लोकगीतों की परम्परा भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रहे।

महानदी घाटी के लोक नृत्य

प्रो. अश्विनी केशरवानी

छत्तीसगढ़ का अधिकांश भाग महानदी घाटी के अंतर्गत आता है। यह क्षेत्र हमारे देश का हृदय प्रदेश और आदिवासी बाहुल्य पिछड़ा क्षेत्र अवश्य है, किन्तु लोक कथाओं की दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत समृद्ध है। मानव जाति की प्राचीनतम संस्कृति यहाँ के मंदिरों, भित्ति चित्रों, नाट्य शालाओं और लोक नृत्यों के रूप में आज भी विद्यमान है। यहाँ की लोक रचनाओं में नदी-नाले, झरने, पर्वत, घाटियों और शस्य श्यामला धरती की कल्पना होती है। मध्य काल में यहाँ अनेक जातियाँ आयीं। यहाँ आदिवासियों का प्रसिद्ध लोक नृत्य-सरहुल, मुरियों का ककसार, परजा का परब, उरांवों का डोमकच, बैगा और गोंडों का करमा के अलावा डंडा, सुआ आदि प्रमुख हैं। यदुवंशियों का रावत नृत्य और सतनामियों का पंथी नृत्य यहाँ के लोगों में बहुत लोकप्रिय है।

छत्तीसगढ़ के लोक नृत्यों में बहुत कुछ समानता होती है। ये नृत्य मात्र मनोरंजन के साधन नहीं हैं, बल्कि जातीय नृत्य, धार्मिक अनुष्ठान और ग्रामीण उल्लास के अंग भी हैं। देव पितरों की पूजा-अर्चना के बाद लोक जीवन प्रकृति के सहचर्य के साथ घुल-मिल जाता है। यहाँ प्रकृति के अनुरूप ही ऋतु परिवर्तन के साथ लोक नृत्य अलग-अलग शैलियों में विकसित हुये। यहाँ के लोक नृत्यों में मांदर, झांझ-मंजीरा और डंडा प्रमुख रूप से प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार मयूर के पंख, सुअर के सिसै, शेर के नाखून, गूज, कौड़ी और गुरियों की माला इनके प्रमुख आभूषण हैं।

रावत नृत्य

छत्तीसगढ़ अंचल में ही नहीं, अपितु सारे देश में रावतों की अपनी संस्कृति है। उनके रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, रस्मो-रिवाज भी भिन्न हैं। देश के कोने-कोने तक शिक्षा के पहुँचने के बावजूद रावतों ने अपनी प्राचीन धरोहरों को विस्मृत नहीं किया है। यादव, अहीर, पहटिया, ठेठवार, राऊत आदि नाम से विख्यात इस जाति के लोग नृत्य पर्व को देवारी (दीपावली) के रूप में मनाते हैं। रावत नृत्य को 'अहिरा' या 'गहिरा' नृत्य भी कहते हैं। इसके तीन भाग हैं- सुहाई बांधना, मातर पूजा और काछन चढ़ाना। लक्ष्मी पूजन (सुरहोती) के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा का विधान होता है। रावत अपने ईष्ट देव की पूजा करके अपने मालिक के घर सोहाई बांधने

निकल पड़ते हैं। गाय के गले में सोहाई बाँधकर उसकी बढ़ोत्तरी की कामना करते हुए गाते हैं-

सुहाई बनायेंव अचरी पचरी गांठ दियो हरैया।
जऊन सुहाई ल छोरही, ओला लपट लागे गौरैया ॥

अपने चिर-परिचित रावत को देखकर गाय रंभाने लगती है। सुहाई बांधते समय यह ध्यान रखा जाता है- गायों को सुहाई सजाकर और बैलों को गैहाटी बांधा जाता है। सुहाई बांधने के बाद रावत गाकर नाचने लगते हैं-

एसो के बन बरसा घरसा परगे हील।
गाय कहेंव रे लाली संगे रेहाबो पीले।

रावतों की टोली के सभी लोग कौड़ी और मोर-पंख से सज-धजकर ढोलक, झांझ, मांदर और डंडा के साथ नाचते गाते मालिकों के घर जाते हैं-

उठे रहेंव मालिक नौ दस लगगे वासे।
भीतर दुलरवा दूध पीये बाहिर धुले रनवासे।

यहाँ मालिक के लड़के को दुलरवा और मिट्टी के घर को रनवास कहा गया है। आंचलिक गीतों में आत्मीयता प्रकट होती है। लोकसंगीत की हर धुन पर रावतों के पग थिरक उठते हैं और वे गाने लगते हैं-

एक सिंग तो ऐसे तैसे एक सिंग तोर डूंडा।
गींजर-गींजर के आबे रे खेरका डांड तोर मूढा।

और गायों का स्वास्थ्य बना रहे, इसकी कामना करते हुये वे गाते हैं-

बरतरी बांधेंव बछरु साल भर माड़गे गाई
हँस-हँस बांधेव सोहाई तंगी पारंव राम दोहाई।

सोहाई बांधने के बाद दानदाता (मालिक) के लिये मंगल कामनाएँ की जाती हैं। इस अवसर पर लाठी और देव पितरों की पूजा की जाती है। नाचते गाते रावतों को उनके मालिक धान या रूपये देकर विदा करते हैं। तब रावत पुनः गा उठते हैं-

हरियर चक चंदन, हरियर गोबर आ बिन।
गाय-गाय कोठा भरे, बरदा भरे शौकीन ॥

और रावत अपने मालिक के लाख बरस जीने की कामना

करते हुये नाचते-गाते लौट जाते हैं-

जइसे के मालिक लिये दिये तइसे देबो आसीसे।
रंग महल में बैठो मालिक जीयो लाख बरीसे ॥

तीसरा रूप है-काछन चढ़ाना। नाचते गाते रावत देव पितरों की पूजा करके उन्हें अपने शरीर में चढ़ाकर गाने लगते हैं-

एक कांछ कांछेव भईया, दूसर दियेंव लभाई।
तीसर कांछ कांछेव त माता-पिता के दुहाई।

रावत नृत्य का महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन रवताही बाजार या मड़ई में होता है। डॉ. बल्देवप्रसाद मिश्र इसे इंद्रधनुष की संज्ञा देते हुये लिखते हैं-रावतों द्वारा धारण किये जाने वाली कौड़ी लक्ष्मी का प्रतीक हैं और मोरपंख तंत्र-मंत्र अभिचार या अन्य विपत्ति रूपी सर्पों के प्रतिकार के प्रतीक हैं। एक बानगी-

पूजा करय पुजेरी संगी, धोवा चाऊर चढ़ाई।
पूजा होवत हे लक्ष्मी के, सेत धजा फहराई ॥

सुआ नृत्य

छत्तीसगढ़ की स्त्रियों का यह समूह नृत्य है। नारी मन की भावना, सुख-दुख की अभिव्यक्ति और उनके अंगों का लावण्य 'सुआ नृत्य' या 'सुवना' में देखने को मिलता है। इस नृत्य का आरंभ दीपावली पर्व से होता है, जो अगहन मास तक चलता है। इस वृत्ताकार नृत्य में एक लड़की जो 'सुग्गी' कहलाती है, धान से भरी टोकरी में मिट्टी का सुग्गा रखती है, कहीं एक तो कहीं दो। ये शिव और पार्वती के प्रतीक होते हैं। टोकरी में रखे सुआ को हरे रंग से नये कपड़े पहनाकर धान से नव मंजरियों से सजाया जाता है। सुग्गी को घेरकर स्त्रियाँ ताली बजाकर नाचती और गाती हैं। इस नृत्य में दो दल होते हैं। पहला दल जब खड़े होकर ताली बजाते हुए गीत गाता है, तो दूसरा दल अर्द्ध वृत्त में झुककर ऐड़ी और अंगूठे को पारी-पारी उठाते और अगल-बगल तालियाँ बजाकर नाचती है-

चंदा के अंजोरी म जुड़ लागय रतिहा।
न रे सुवना बने लागय गोरसी अऊ घाम।
अगहन पूस के ये जाड़ा न रे सुवना।
खरही म गंजावत हावय धान।

सुआ गीत की प्रत्येक पंक्तियाँ विभिन्न गुणों से सजी होती है। चाहे प्रकृति की हरियाली को देखकर किसान का प्रफुल्लित

होता मन हो या विवाह की आग में जली प्रेयसी की व्यथा, चाहे हँसी-ठिठौली करती ग्राम बालाओं की आपस की नोंक-झोंक या अतीत की विस्तार गाथा, प्रत्येक संदर्भ में सुआ मध्यस्थ का कार्य करता है।

पइयां में लागों चंदा सुरूज के रे सुवना
तिरिया जनम झनि देय
तिरिया जनम मोर गरु के बरोबर
जहाँ पठवयं तहं जाये।
अंगठित मोरि-मोरि घर लिपवायं रे सुवना।
फेर ननद के मन नहि आये
बांह पकड़ के सइयां घर लानत रे सुवना।
फेर ससुर हर सटका बताय
भाई ह देहे रंग महल दुमंजिला रे सुवना।
हमला तै दिये रे विदेस
पहली गवन करै डेहरी बइठाय रे सुवना।
छोड़ि के चलय बनिजार
तुहं धनी जावत हा, अनिज बनिज बर रे सुवना।
कइसे के रइहों ससुरार
सारे संग खाइबे ननद संग सोइबे रे सुवना।
के लहुरा देवर मन भाय
सासे डोकरिया मर हर जाही,
ननद पठौबो ससुरार
लहुरा देवर मोर बेटवा बरोबर
कइसे रइहों मन बांध।

सुआ नृत्य के उपलक्ष्य में मालकिन रुपया-पैसा अथवा धान-चावल देकर विदा करती हैं, तब सुआ नृत्य की टोली विदाई गीत गाती है-

जइसे ओ मइया लिहे दिहे आना रे सुवना।
तइसे तैं लेइले असीस
अन धन लक्ष्मी म तोरे घर भरै रे सुवना।
जिये जग लाख बरीस.....।

डॉ. एल्विन ने इस नृत्य की तुलना धीर गंभीर सरिता से की है। क्योंकि इसमें कहीं भी क्लिष्ट मुद्राएँ नहीं होतीं। कलाइयों, कटि प्रदेश और कंधे से लेकर बांहों तक सर्वत्र गुलाइयाँ बनती हैं। छत्तीसगढ़ी लोक गीतों के अध्येता पंडित अमृतलाल दुबे के अनुसार इसमें संगीत की क्लासिकी वृत्ति चरितार्थ होती है। सुआ गीत मुक्तक भी है और प्रबंधात्मक भी।

डंडा या सैला नृत्य

डंडा नृत्य पुरुषों का सर्वाधिक कलात्मक और समूह नृत्य है। इस नृत्य में ताल का विशेष महत्त्व होता है। डंडों की मार से ताल उत्पन्न होता है। इसी कारण इसे मैदानी भाग में डंडा नृत्य और पर्वती भाग में सैला नृत्य कहा जाता है। वैसे भी सैला शैल का विकृत रूप है, जिसका अर्थ पर्वतीय प्रदेश होता है। इस नृत्य में 46 से लेकर 50-60 तक सम संख्यक नर्तक होते हैं। नर्तक घुटने तक धोती कुरता और जाकेट पहनते हैं, साथ में गेंदा की माला से लिपटी पगड़ी सिर में बाँधते हैं। इसमें मोरपंख की कड़ियों का झूल होता है। कई नर्तक सिक्का (रूपिया), सुताइल, बहुंटा, चूरा और पाँव में घुँघरू पहनते हैं। आँख में काजल, माथे में तिलक और ओंठ पान से रंगा होता है। एक कुहकी देने वाला जिससे नृत्य की गति और ताल बदलती है, एक मांदर बजाने वाला और दो तीन झांझ-मंजीरा बजाने वाले होते हैं। इनके चारों ओर शेष नर्तक वृत्ताकार नाचते हैं। नर्तकों के हाथ में एक या दो डंडा होता है। इसका प्रथम चरण ताल मिलाना है। दूसरा चरण कुहका देने पर नृत्य चालन और उसी के साथ गायन होता है। नर्तक एक दूसरे के डंडे पर डंडे से चोट करते हैं- कभी उचकते हुये, कभी झुककर और फिर अगल-बगल में क्रम से चोट करते हैं। कभी झूम-झूमकर फैलते सिकुड़ते वृत्तों से त्रिकोण, चतुष्कोण और षटकोण की रचना करते हुए नृत्य करते हैं। डंडे की समवेत ध्वनि से अल्हादकारी दृश्य उपस्थित होता है।

नृत्य के आरंभ में ठाकुर देव की वंदना, फिर सरस्वती, गणेश और राम-कृष्ण केन्द्रित गीत गाये जाते हैं। इसमें लोक जीवन की सुंदर झाँकी होती है।

पहिली डंडा ठोकबो रे भाई, कांकर लेबो नाम रे जोर,
गावे गउंठिया ठाकुर देवता, जेकर लेबो नाम हे जोर।
आगे सुमिरो गुरू आपन ला, दूजे सुमिरो रामा जोर,
माता पिता अब आपन सुमिरो, गुरू के सुमिरो नाम रे जोर।

डंडा नृत्य कार्तिक मास से फाल्गुन मास तक होता है। पूस पूर्णिमा याने छेरछेरा के दिन मैदानी भाग में इसका समापन होता है। सुप्रसिद्ध साहित्यकार पंडित मुकुटधर पाण्डेय ने इस नृत्य को 'छत्तीसगढ़ का रास' कहा है।

डंडा नृत्य के बारे में अलग-अलग राय है। गोंड लोग इसे अपना जातीय नृत्य मानते हैं। उनके अनुसार राम-रावण युद्ध में वे राम की ओर से लड़े थे और विजय मिलने पर इस नृत्य का

शुभारंभ हुआ था। ये लोग डंडा नृत्य विजयादशमी से शुरू करते हैं। दूसरे मत के अनुसार इसका जन्म श्रीकृष्ण के रास नृत्य से हुआ है। इस नृत्य में राम और कृष्ण दोनों के पद गाये जाते हैं। डॉ. प्यारेलाल गुप्त ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन छत्तीसगढ़' में डंडा नृत्य के प्रकारों का बखूबी वर्णन किया है। उनके अनुसार दुधइया नृत्य, तीन डंडिया, पनिहारिन सेर, कोटरी झलक, भाग दौड़, चरखा भांज, माढ़ल देव, पीठ जोरूल, समधिन भेंट विशेष रूप से प्रचलित है।

करमा नृत्य

यह नृत्य छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति का पर्याय है। छत्तीसगढ़ के आदिवासी और गैर आदिवासी सभी का यह लोक मांगलिक नृत्य है। करमा सतपुड़ा और विन्ध्य की पर्वत श्रेणियों के बीच सुदूर गाँवों में भी प्रचलित है। शहडोल और मंडला के गोंड, बैगा तथा बालाघाट और सिवनी के कोरकू और परधान जातियाँ करमा के ही कई रूप को नाचती हैं। बैगा करमा, गोंड करमा, भुइयाँ करमा आदि जातीय नृत्य माना जाता है। छत्तीसगढ़ के एक लोक नृत्य में करमसेनी देवी का अवतार गोंड के घर में माना गया है। दूसरे गीत में घसिया के घर में माना गया है।

करमा नृत्य में स्त्री-पुरुष सभी भाग लेते हैं। यह वर्षा ऋतु को छोड़कर सभी ऋतुओं में नाचा जाता है। सरगुजा के सीतापुर तहसील, रायगढ़ के जशपुर और धरमजयगढ़ के आदिवासी इस नृत्य को साल में सिर्फ चार दिन नाचते हैं। एकादशी करमा नृत्य नवा के उपलक्ष्य में, पुत्र के लिये कामना, पुत्र प्राप्ति हेतु, अठई नामक करमा नृत्य क्रान् मास में भाई-बहन के प्रेम संबंधी और दयई नामक करमा नृत्य तथा दीपावली के दिन नाचा जाने वाला करमा नृत्य युवक-युवतियों के प्रेम प्रसंगों से सराबोर होता है।

करमा नृत्य में मांदर और झांझ-मंजीरा प्रमुख वाद्य यंत्र होते हैं। इसके अलावा टिमकी, ढोल, मोहरी आदि का प्रयोग होता है। करमा नर्तक मयूर पंख का झाल पहनता है और अपनी पगड़ी में मयूर पंख की झालदार कलगी लगाता है। रूपया सुताइल, बहंटा और करधनी जैसे आभूषण पहनता है। युवक को कलई में चूरा और बांह में बहंटा और कोहनियों का श्रृंगार झूल नृत्य की लय में बड़ा सुन्दर लगता है। इस नृत्य में संगीत योजनाबद्ध होता है। राग के अनुरूप ही इस नृत्य की शैलियाँ बदलती हैं। इसमें गीतों के टेक समूह गान के रूप में पदांत में गूँजते रहते हैं। पदों में ईश्वर की स्तुति से लेकर श्रृंगारपरक गीत होते हैं। मांदर और झांझ की लय ताल पर नर्तक लचक-लचककर भांवर लगाते, हिलते-

डुलते, झुकते-उठते हुये वृत्ताकार नृत्य करते हैं।

करमा नृत्य के साथ कई किंवदंतियाँ जुड़ी हुई हैं। कई लोग इस नृत्य की अधिष्ठात्री करमसेनी देवी को मानते हैं, तो कई लोग विश्वकर्मा को इसका आराध्य देव मानते हैं। अधिकांश लोग इस कथा को कर्म राजा से जोड़ते हैं, जिसने विपत्ति से छुटकारा पाने पर इस नृत्य का आयोजन किया था। यह नृत्य समूचे छत्तीसगढ़ में मनौती के रूप में मनाया जाता है। डॉ. बल्देव इस नृत्य के बारे में लिखते हैं- 'छत्तीसगढ़ के लोग कर्मवीर हैं। कृषि कार्य की सफलता के बाद उपयुक्त अवसर पर इस नृत्य का आयोजन किया जाता है। आगे चलकर 'कर्म' शब्द की भावनात्मक सत्ता अपने लोकव्यापी स्वरूप के कारण मिथ में रूपांतरित हो गयी है। करमा नृत्य का प्रतीक करम वृक्ष को और उसकी आराध्य देवी करमसेनी को मान लिया गया होगा। ताज्जुब नहीं कि करमसेनी कोई कर्मशीला नारी रही होगी, जिसके लोकोपकारी गुण ने उसे देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया और वह लोक विश्वास का सम्बल पाकर किसी मिथकीय कहानी की नायिका बनकर अवतरित हो गई।'।

करमा की मनौती मानने वाला व्यक्ति दिन भर उपवास रहता है और अपने सगे-सम्बन्धियों को न्यौता देता है। शाम के समय करम वृक्ष की पूजा करके टंगिये की एक ही वार से डाल को काटकर अखरा में गड़ाकर स्त्री-पुरुष रात भर नृत्य करते हैं और सुबह उसे नदी में विसर्जित कर देते हैं। इस अवसर पर गीत गाये जाते हैं-

उठ-उठ करमसेनी पाही गिस विहान हो
चल-चल जाबो अब गंगा असनांद हो।

यों तो करमा नृत्य की अनेक शैलियाँ हैं, लेकिन छत्तीसगढ़ में पाँच शैलियाँ प्रचलित हैं, जिसमें झूमर, लंगड़ा, ठाड़ा, लहकी और खेमटा प्रमुख हैं। इस नृत्य को जब झूम-झूमकर नाचा जाता है, तब इसे झूमर कहते हैं। एक पैर को झुकाकर गाकर नाचा जानेवाला नृत्य लंगड़ा कहलाता है। लहराकर किये जाने वाले नृत्य को लहकी और खड़े होकर किया जाने वाला नृत्य ठाड़ा कहलाता है। आगे-पीछे पैर रखकर कमर लचकाकर किया जाने वाला नृत्य खेमटा कहलाता है। खुशी की बात है कि छत्तीसगढ़ का हर गीत इसमें समाहित है।

डोमकच नृत्य

यह आदिवासी युवक-युवतियों का प्रिय नृत्य है। इस नृत्य को प्रायः शादी ब्याह के अवसर पर किया जाता है, इसलिए इसे

विवाह नृत्य भी कहते हैं। यह नृत्य अगहन से आषाढ़ मास तक रात भर किया जाता है। इसे वृत्ताकार नाचा जाता है। इस नृत्य में एक लड़का और एक लड़की जो एक दूसरे के गले और कमर में हाथ डालकर आगे-पीछे झुककर स्वच्छंदता पूर्वक नाचते हैं। मांदर, झांझ और टिमकी इस नृत्य का प्रमुख वाद्य यंत्र है। इस नृत्य के गीतों में सादरी बोली का बाहुल्य होता है।

बस्तर के नृत्य

बस्तर छत्तीसगढ़ के आदिवासियों का प्रमुख क्षेत्र है। यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य ने यहाँ के निवासियों को कला प्रिय बना दिया है, इसीलिये यहाँ के नृत्यों में विविधता है। हल्बा, भतरा, परजा, मुंडा, माड़िया, गोंड, बैगा, मुरिया, धुरवा आदि यहाँ के मूल निवासी हैं। इनके अलग-अलग जातीय नृत्य हैं। इनमें मुरियों का ककसार, दंडामी माड़ियों का सींगों वाला नृत्य, तीना, तामेन नृत्य, डंडारी नाचा, मड़ई, परजा जाति का परब नृत्य, घुरुवाओं का घुरुवा नृत्य, कोयो का कोया नृत्य, भतराओं का भतरा, वेद पुरुषा स्मृति नृत्य और छेरना नृत्य प्रमुख हैं। रिलो और हुलकी गोंड स्त्रियों को प्रमुख नृत्य हैं। ये सभी नृत्य वृत्ताकार हैं।

सरहुल नृत्य

यह नृत्य सरगुजा, जशपुर और धरमजयगढ़ तहसील में बसने वाले उरांव जाति के लोगों का जातीय नृत्य है। आदिवासियों का विश्वास है कि साल वृक्षों के समूह में जिसे 'सरना' कहा जाता है, महादेव जी वास करते हैं। महादेव और देव पितरों को प्रसन्न करके सुख शांति की कामना के लिये चैत पूर्णिमा की रात इस नृत्य का आयोजन किया जाता है। बैगा सरना वृक्ष की पूजा करता है। वहाँ घड़े में पानी रखकर सरना के फूल से पानी सींचा जाता है। वहीं पर सरहुल नृत्य किया जाता है। इस नृत्य के प्रारंभिक गीतों में धर्म प्रवणता और देवताओं की स्तुति होती है, लेकिन ज्यों-ज्यों रात बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों नृत्य गीत मादक होने लगता है। शराब का सेवन भी इस अवसर पर किया जाता है। यह नृत्य प्रकृति पूजा का एक आदिम रूप है। छत्तीसगढ़ के आदिवासियों और सुदूर वनांचल भी आज महंगाई की मार और शहरीकरण के प्रदूषण से प्रभावित हुए हैं। गाँव की स्वच्छंदता, उसकी लोक संस्कृति और रहन-सहन में बहुत अंतर आया है, जिससे उसके अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लग गया है। आज शहरों में लोकोत्सव के आयोजन कर लोकसंस्कृति को जिंदा रखने का प्रयास किया जा रहा है।

छत्तीसगढ़ी वाचिक परम्पराएँ

निरंजन महावर

धंधा

छत्तीसगढ़ में पहेलियों को धंधा कहते हैं। फुर्सत के समय लोग खाली समय को मनोरंजन पूर्वक व्यतीत करने के लिए पहेलियाँ बूझते हैं और उनको सुलझाने हेतु दिमागी कसरत करते हैं। इसी कारण शायद पहेलियाँ बूझना और उनके हल ढूँढने का नाम धंधा पड़ा होगा। पहेलियों का प्रचलन सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में मिलता है, विशेष रूप से छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचल में। छत्तीसगढ़ में हजारों पहेलियाँ प्रचलित हैं और नित्य नई-नई पहेलियाँ गढ़ी जाती हैं। इनमें से जो पहेलियाँ लोगों के मन को स्पर्श कर लेती हैं, वे लोक जीवन में व्यापक रूप से अपना ली जाती हैं, जो पहेलियाँ लोक जीवन में दीर्घकाल तक प्रचलन में बनी रहती हैं, वे लोक साहित्य का अंग बन जाती हैं।

पहेली साहित्य संपूर्ण भारत में ही नहीं, वरन् संपूर्ण विश्व के लोक साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। पहेली शब्द संस्कृत भाषा के पहेलिका का तद्भव रूप है। यह शब्द उलझन अथवा विषम परिस्थिति के लिए प्रयोग में लाया जाता है। प्राचीन काल से ही पहेली बूझने का प्रचलन साहित्य में मिलता है। वैदिक काल में ब्रह्मोदय पहेलियों का प्रचलन था। अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर अनुष्ठानिक क्रिया के रूप में ब्रह्मोदय के माध्यम से पुरोहित और होता के मध्य प्रहेलिका पूछने और उनको हल करने का प्रचलन था। प्रहेलिका के लिए संस्कृत भाषा में ब्रह्मोदय शब्द का प्रयोग भी प्रचलित है। भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं में पहेली के लिए अलग-अलग शब्द विद्यमान हैं। संस्कृत भाषा में ही प्रवल्लिका शब्द का प्रयोग भी पहेली के पर्याय के रूप में मिलता है। अवधी भाषा में पहेली के लिए बुझौवल शब्द प्रचलित है। कुमाऊँनी में पहेली के लिए आहण या आणा शब्द है। पंजाबी भाषा में पहेली के लिए अखाण और गुजराती भाषा में उखाणु शब्द प्रचलित हैं, जो संस्कृत भाषा के आभाणक शब्द से उद्भूत हैं। अंग्रेजी भाषा में पहेली के लिए Riddle शब्द है। हरियाणवी में इसे 'फाली आडना' अथवा 'गाहा' खेलना' कहते हैं। भोजपुरी भाषा में पहेली के लिए बुझौवल शब्द ही प्रयोग में लाया जाता है। राजस्थानी में पहेली के लिए फाली शब्द है, जो पहेली का ही अपभ्रंश है। राजस्थानी में ही पहेली के लिए ओखाणों शब्द भी प्रचलित है। गढ़वाली भाषा में पहेली के लिए परवाण शब्द प्रचलित है।

पहेली लोक साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है, जो काफी प्राचीन काल से लोक मानस में प्रचलित है। लोक जीवन में पहेली पूछना और उनको सुलझाना मनोरंजन के साधन के साथ-साथ बौद्धिक विलास भी रहा है। पहेली बुझौवल के माध्यम से पहेली पूछने वाला पहेली में अर्थ को गोपनीय रखते हुए अर्थ को पकड़ने हेतु कुछ संकेत भी देता है। पहेली का उत्तर देने वाला व्यक्ति बौद्धिक कसरत करते हुए उस गोपनीय अर्थ तक पहुँचने का प्रयास करता है। पहेली के माध्यम से जहाँ एक ओर भाषा समृद्ध होती है, वहीं दूसरी ओर कल्पनाशीलता का विकास भी होता है। कालान्तर में बुद्धि विलास की इस प्रक्रिया से बौद्धिक क्षमता का विकास होता है और विश्लेषण करने की क्षमता बढ़ती है। पहेलियों के माध्यम से सुरुचि का भी विकास होता है और मानसिक जटिलताओं को अभिव्यक्त करने की सुरुचिपूर्ण सौष्ठव भाषा का संस्कार निर्मित होता है। पहेलियाँ सामान्यजनों के लिये मनोरंजन के साधन हैं। बचपन से ही लोक जीवन में पहेलियाँ बूझने का क्रम आरंभ हो जाता है। वैसे पहेलियाँ बूझना प्रत्येक वर्ग एवं उम्र के लोगों में प्रचलित है। 'पहेलियों में जिस वर्ण्य वस्तु के गुण, रूप, रंग, आकार, प्रकार, उपयोग अथवा स्वभाव के विषय में श्लेषमूलक संकेत रहता है, उसी को पकड़कर अर्थ की कल्पना की जाती है।'

मनुष्य की सहज रहस्यमूलक प्रवृत्तियों और उनकी अभिव्यक्ति के प्रयत्नों में पहेली का उद्गम खोजा जा सकता है। जनसाधारण के मन में लोक रहस्य, जिज्ञासा और मनोरंजन के माध्यम के रूप में प्रकट होता है, लोक में उसे ही पहेली के रूप में स्वीकार किया गया है, पहेली सुलझाना चूँकि एक मानसिक कसरत है, इसीलिये छत्तीसगढ़ी भाषा में इसे धंधा कहा गया है।

पहेलियाँ बूझने का प्रचलन बहुत प्राचीन है। कुछ विद्वान तो वैदिक काल में भी पहेलियों का प्रचलन था, ऐसा मानते हैं। अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर भी पहेलियाँ बूझने के प्रचलन का भी उल्लेख मिलता है, जिसे ब्रह्मोदय कहा जाता था। संस्कृत में ये दो श्रेणियों में विभक्त है। एक अंतर्लापिका दूसरी बहिर्लापिका। कुछ में प्रश्न होता, उत्तर मिलता है, परन्तु कुछ में श्लेषालकार द्वारा प्रश्न के अन्दर से ही उत्तर ढूँढा जाता है। वेदों में भी कुछ ऋचाओं में प्रहेलिका का यह रूप प्राप्त होता है, जो जनसाधारण की समझ के बाहर है।

*चत्वारिंशंगा भयो अस्य पादा, द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सोअस्य।
त्रिधाबद्धो वृषभो रोखिति, महादेवो भर्त्या अविवेश।¹*

पहेली में भाषा को घुमा-फिराकर उसमें अर्थ को गोपनीय बना देने की कला ही पहली है, जिसमें एक व्यक्ति पहेली बूझता है और अन्य लोग उस बुझौवल का अर्थ बताने की मानसिक कसरत करते हैं। पहेली बूझने वाला उत्तर ढूँढने वालों को अपनी भाषा के कौशल से अर्थ को अधिकाधिक गोपनीय रखकर उन्हें चक्कर में उलझाने का प्रयत्न करता है। कभी संकेत में गलत दिशा में अर्थ का संकेत प्रदान कर मूल अर्थ को और अधिक गुप्त रखकर पहेली का उत्तर देने वाले व्यक्तियों को भ्रमित भी किया जाता है। यह बुद्धि कौशल और भाषा के सौष्ठव दोनों के माध्यम से किया जाता है। छत्तीसगढ़ी धंधा में गोपनीयता का गुण विद्यमान है। किसी भी बात को सीधी-सीधी न कहकर सांकेतिक शब्दों के माध्यम से उसके विशेषगुण, स्थान, स्वरूप, आकार आदि के वर्णन के साथ धंधा अथवा बुझौवल को प्रस्तुत किया जाता है और इन्हीं लक्षणों के द्वारा पहेली को सुलझाया अथवा हल किया जाता है। अधिकांश पहेलियों में भाषा और शब्दों का चमत्कार विलक्षण होता है, जिसके जरिये भाषा समृद्ध होती है और अपने विचारों को अभिव्यक्त करना प्रभावशाली बन पड़ता है। ग्रामीण समाज में पहेली बूझना मनोरंजन का एक प्रमुख साधन है। सर्दी के दिनों में लोग सिगड़ी में आग जलाकर उसके चारों ओर बैठ जाते हैं और शुरू हो जाता है उनका धंधा बुझौवल। छत्तीसगढ़ के ग्रामीणों में धंधा बुझौवल का विपुल साहित्य विद्यमान है। लम्बी परम्परा में सृजन की गई सैकड़ों की संख्या में पहेलियाँ लोक मानस में सुरक्षित हैं। पहेलियों की एक विशेषता यह भी है कि नई-नई पहेलियों का सृजन लोग अपनी कल्पनाशीलता के जरिये निरन्तर करते रहते हैं। इन पहेलियों में जो रोचक व लालित्य लिये हुये होती हैं, वे धीरे-धीरे व्यापक क्षेत्र में प्रचलित हो जाती है और जनमानस उन्हें अपनी वाचिक परम्परा में सुरक्षित कर लेता है।

चौदहवीं शती के कवि खुसरो की पहेलियों एवं मुकरियों का उल्लेख आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में किया है- 'जिस ढंग से दोहे, तुकबंदियाँ और पहेलियाँ आदि साधारण जनता की बोलचाल में इन्हें प्रचलित मिली, उसी ढंग की पद्य पहेलियाँ आदि कहने की उत्कंठा इन्हें भी हुई।' पहेलियाँ सभी वर्गों में शिक्षित, अल्पशिक्षित एवं अशिक्षित तथा उच्च वर्ग, निम्न वर्ग, कस्बाई एवं ग्रामीणजनों में प्रचलित है। यही नहीं पहेलियाँ सुलझाना बालक, युवा एवं वृद्धजनों सभी वर्गों के बौद्धिक मनोरंजन का साधन है। छत्तीसगढ़ के कृषक धान के खेतों में काम करते हुए पहेलियाँ बूझने और उन्हें सुलझाने में अपने श्रम की थकान सहज ही उतारते मितले हैं। गाँव की चौपालों में फुरसत के समय धंधा

बूझना और उनको हल करना एक सुरुचिपूर्ण मनोरंजन का साधन है।

पहेली गढ़ना समाज में निरंतर चलता रहता है। ग्रामीणजनों में प्रखर बुद्धिवाले लोग अपनी प्रत्युत्पन्नमति के जरिए नित्य नई-नई पहेलियाँ गढ़ते रहते हैं। किसी भी बात को घूमा-फिराकर गोपनीय बनाते हुए वे लोग अपनी बात इस तरह रखते हैं कि सुनने वाला कुछ समय के लिए भ्रमित हो जाए और पहेली सुलझाने में उसे अपना सिर खपाना पड़े। इसी गुण के कारण 'पहेलियाँ बूझाना' हिन्दी भाषा में एक मुहावरा बन गया है। छत्तीसगढ़ की जनजातियों में भी पहेली बुझाना मनोरंजन का एक लोकप्रिय साधन है। पहेली में उसके उत्तर के कुछ संकेत जैसे गुण, आकार-प्रकार, स्थान, रूप-रंग आदि तत्त्व जानबूझकर निहित छोड़ दिए जाते हैं, और उन्हीं को पकड़कर पहेली सुलझाने का प्रयास किया जाता है।

हिन्दी में नाथों और सिद्धों के साहित्य में पहेलियों की विपुलता है। इन सिद्धों और संतों की ऊटपटांग समझी जाने वाली भाषा वास्तव में पहेलियों के माध्यम से प्रस्तुत किए गए विचार हैं। कबीर की उलटबाँसियाँ भी पहेली की शैली में प्रस्तुत साहित्य है। सूफी संतों ने भी पहेली शैली का प्रयोग किया है। अमीर खुसरों ने अवधी भाषा में अनेक पहेलियों की रचना की। उदाहरणार्थ-

एक नार ने अचरज किया
साँप मार पिंजरे में दिया
जो-जो साँप ताल को खाये
सूखे ताल साँप मर जाये।

अर्थ-दीया और बाती

उत्तर भारत के अनेक जनपदों में विवाह के अवसर पर पहेली बूझने की एक रोचक प्रथा प्रचलित है, जिसमें वर को घेरकर वधू पक्ष की स्त्रियाँ विशेष रूप से रिश्ते में वधू की बहनों और भौजाइयाँ वर से पहेलियाँ बूझती हैं। पहेलियों को हल न कर पाने पर वर का मजाक उड़ाया जाता है और यदि वर हल कर पाने में सफल होता है, उसे भेंट स्वरूप उपहार दिए जाते हैं। इस प्रथा से जहाँ एक ओर वर का बुद्धि परीक्षण होता है, वहीं वातावरण के प्रति उसकी झिझक एवं संकोच मिट जाते हैं। इन पहेलियों में कुछ पहेलियाँ श्रृंगारिक एवं कुछ पहेलियाँ द्विअर्थी भी होती हैं। छत्तीसगढ़ी में भी ऐसी अनेक पहेलियाँ प्रचलित हैं, जो श्रृंगार प्रधान हैं, ऐसी भी द्विअर्थी अनेक पहेलियाँ प्रचलित हैं, जिनमें यौनवृत्ति एवं गुसांगों अथवा शरीर के अन्य अंगों का उल्लेख होता है, जो ग्रामीण परिवेश के मुक्त वातावरण की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का द्योतक

है। अकबर और बीरबल के नाम से प्रचलित अनेक पहेलियाँ उत्तर भारत के अनेक जनपदों में मिलती हैं। इन पहेलियों में से अनेक पहेलियाँ हास्य एवं विनोद लिए हुए हैं। छत्तीसगढ़ी में भी अकबर और बीरबल के नाम से प्रचलित कुछ पहेलियाँ मिलती हैं, जिनका विषय हास्य विनोद या श्रृंगार से संबंधित है।

कुछ विद्वानों ने हिन्दी की सभी जनपदीय भाषाओं में पहेलियों के संकलन एवं उनके अध्ययन का कार्य किया है। कुछ अध्येताओं ने इन पहेलियों के वर्गीकरण का प्रयास भी किया है, उदाहरणार्थ डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय ने कुमाऊँनी की पहेलियों का अध्ययन करते हुए उन्हें सात वर्गों में रखा है। भोज्य पदार्थ संबंधी, घरेलू वस्तु संबंधी, जीव-जन्तु संबंधी, प्रकृति संबंधी, अंग-प्रत्यंग संबंधी, सामान्य पहेलियाँ एवं खेती से संबंधी पहेलियाँ। छत्तीसगढ़ी धंधा का संकलन एवं विश्लेषण डॉ. भालचंद्र राव तेलंग ने भी अपने ग्रंथ 'छत्तीसगढ़ी हलबी, भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन' में प्रस्तुत किया है। उन्होंने छत्तीसगढ़ी धंधा को मनुष्य, जीव-जन्तु, वृक्ष, पुष्प-फल, कंदमूल, प्रकृति, खाद्य पदार्थ, गृहस्थी की वस्तुएँ, पोशाक और आभूषण, वाद्य यंत्र, मछली एवं पक्षियों को पकड़ने हेतु प्रयोग में लाए जाने वाले जाल, अस्त्र-शस्त्र, सामूहिक रूप एवं पौराणिक व्यक्तित्व आदि वर्गों में विभक्त किया है।³

अफ्रीका महाद्वीप की बंटू भाषा में प्रचलित पहेलियों का गहन अध्ययन मिस व्यूचट ने किया है, जो विटवाटर स्टैंड विश्वविद्यालय जोहंसबर्ग में लोक साहित्य की प्राध्यापिका हैं। यद्यपि यह कार्य भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया गया है न कि लोक साहित्य की दृष्टि से, परन्तु इस कार्य का महत्त्व सभी अध्येता स्वीकार करते हैं। लोक साहित्य के भाषिक रूप की दृष्टि से योरूबा पहेलियाँ जर्नल ऑफ अमेरिकन फोकलोर (62 विलियम बस्काम) 'पहेली की संरचनात्मक परिभाषा' की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन रॉबर्ट ए. जार्ज और एलन डूमस ने प्रस्तुत किया है, जो 'जर्नल ऑफ अमेरिकन फोकलोर' Vol.-66 में प्रकाशित हुआ है। पाश्चात्य विद्वानों ने पहेलियों के तीन उद्देश्य बताए हैं। पहेलियों और कहावतों में उन्होंने एक बड़ा अंतर यह माना है कि पहेलियों की भूमिका लोगों के जीवन में मुहावरों की अपेक्षा काफी सीमित है। पहेलियाँ समाज के किसी एक वर्ग तक ही सीमित होती हैं, जो वर्जनाओं और परम्पराओं द्वारा निर्धारित होती हैं जबकि मुहावरे रोजमर्रा की भाषा के अंग होते हैं। बावजूद अपनी सीमाओं के पहेलियाँ भी मुहावरों की तरह किसी भी संस्कृति और परम्परा के उतने ही महत्त्वपूर्ण अंग हैं, जितने की मुहावरे। टी.डी. व्यूचट ने पहेलियों की प्रकार्य को तीन वर्गों में

बाँटा है- (अ) मनोरंजन, जिसे प्रत्यक्ष रूप से सभी अध्येयताओं ने स्वीकार किया है, किन्तु पहेलियों के परोक्ष उद्देश्यों के प्रति सभी विद्वान एकमत नहीं है। (ब) पहेलियाँ बौद्धिक कौशल, हाज़िर जवाबी को अभिव्यक्त करती है। साथ ही अच्छी स्मरण शक्ति की भी परिचायक है, क्योंकि पहेली पूछनेवाला और उसे सुलझाने वाला दोनों को ही पहेली एवं उसके उत्तर कंठस्थ रखने होते हैं। (स) जी नके ने अफ्रीका की 'लोकवा' पहेलियों का अध्ययन करते हुए पहेलियों में भौगोलिक एवं ऐतिहासिक संकेत को निहित पाया। निश्चित रूप से पहेलियों में भौगोलिक एवं ऐतिहासिक संदर्भ मिलते हैं, जो भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।⁴

सम्पूर्ण यूरेशिया की अनेक भाषाओं में कुछ ऐसी लोक कथाएँ प्रचलित हैं, जो पहेलियों पर आधारित हैं। बुद्धि कौशल के परीक्षण में नायक राजकुमार से पहेलियाँ बूझी जाती हैं, जिन्हें उसे हल करना होता है। जब राजकुमार उन पहेलियों को हल करने में असफल हो जाता है, तब उसे पहेली हल करने हेतु संकेत प्रदान किए जाते हैं। कुछ पहेलियों के प्रत्युत्तर में भी पहेलियाँ ही बूझी जाती हैं, जिनमें पूर्व पूछी गई पहेली का उत्तर भी निहित होता है। भारतीय लोकमानस में भी ऐसी अनेक पहेलियाँ विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ, लोक मानस में प्रचलित कवि कालिदास एवं राजाभोज की पुत्री के बीच प्रचलित उँगलियों के संकेत वाली पहेलिका।

छत्तीसगढ़ी की लोकप्रिय पहेलियाँ

एँटे है गोइटे है, पहार ऊपर बइटे है।

फूल-पान चेहे है, फिर देवता नो है॥

एँटा और लिपटा हुआ है। पहाड़ के ऊपर बैठा हुआ है।

फूल और पान चढ़े हुए हैं, किन्तु देवता नहीं है।

उत्तर-पगड़ी

ऐसन चरित्तर हम नहि देखन

पूछि उहार ले पानी पीथे॥

ऐसा चरित्र (पात्र) हमने नहीं देखा जो पूँछ की तरफ से पानी पीता हो।

उत्तर-दीपक

अकड़ लकड़ी के जकड़ बँधना।

नई जानबे त चाब देइ नहना।

बेडौल लकड़ी को जकड़कर बाँधा हुआ है। नहीं बता

पाओगे तो बाँधने वाली रस्सी (नहना) तुम्हें काट खाएगी।

उत्तर-कंघी

अँगरी कर के नँगरी कर।

बंद करके काम कर॥

अँगुली करके नंगी करो, फिर बंद करके काम करो।

उत्तर-दियासलाई

अजे माने बजे माने, पुछि मा जामे सिंग।

पहार ले उतरे पहारिया गोंड, थैली मा धरे हिंग॥

आप मानो या न मानो, उसकी पूँछ में सींग उगे हैं। वह पहाड़ से उतर रहा है, थैली में हींग लेकर।

उत्तर-बिच्छू

अटपटी छेरी के, छटपटी कान।

ओहर छेरी खाय, कई गुना धान॥

बेडौल बकरी के कान फड़फड़ा रहे हैं, वह बकरी बहुत सा धान खाती है।

उत्तर-ढेंकी

अटा टेरी टांग पसारी।

मोठा म धरके बिल म डारी।

आराम से टांग पसारकर बैठो और मुट्ठी भर-भर के (अन्न) बिल में डालो।

उत्तर-चक्की या जाता

अत्थर ऊपर पत्थर, अत्थर ऊपर दु पइसा।

बिन पानी के महल बनावै, वो कारीगर कइसा॥

भूमि के ऊपर पत्थर है, पत्थर के ऊपर दो पैसे है। बिन पानी के जो महल बनाता है, वह कैसा कारीगर है।

उत्तर-दीमक

असका कुँआ में, मसका पाटी।

ए म कुदे बुड़वा हाथी॥

गहरे कुँए को पटिया खोद रही है, उस कुँए में बूढ़ा हाथी कूद रहा है।

उत्तर-ढेंकी

अहर जागे पहर जागे, जागे बन के राजा।

ऊपर ते तितुर बोले, झमकत आये राजा॥

सुबह हो रही है, सभी वन्य प्राणी जाग रहे हैं। ऊपर से तीतर बोल रहा है कि चमचमाते राजा का आगमन हो रहा है।

उत्तर-सूर्य

कहो पिया जाहू बजार, लाहू चारो रंग।

सुवा, परेवा, गलगला, अउ काँकड़ा के रंग।।

हे प्रियतम! तुम बाजार जाओ और चारों रंग ले आओ-
सुआ, कबूतर, मगरमच्छ और बगुले का रंग।

उत्तर-पान, सुपारी, कत्था-चुना

अहो सखी ते जावब हाठ,

ले जावब मोर कोड़ी आठ

लान दे कारी चूरी करे लिया पाठ

फिरो लान के दीह मारे कोड़ी आठ।

हे सखी! तुम हाट जाना और मुझसे आठ कौड़ी ले जाना।
मुझे काली चुटियाँ लाकर देना, जिनसे वेणी गूँथूंगी। उसने
आठ कौड़ी लाकर पढ़क दी।

उत्तर-पलाश फूल

आइस एक इन ले गइस सौ इन।

आया अकेला और उसे ले गए सौ लोग

उत्तर-शव

आगु-आगु ते चल, पाछू में तोर भाई

चँदवा मुड़के तोर ददा चले, दाँत निपोरे तोर दाई।

आगे-आगे तुम चलो, पीछे-पीछे तुम्हारा भाई। फिर गंजे
सिर वाला तुम्हारा पिता चले और उन्हें देखकर तुम्हारी माँ
खिलखिलाकर हँस रही है।

उत्तर-कपास

आठ ठन हाड़ा गोड़ा, एक चरिया पोटी।

आठ हड्डी-पसली है और एक टोकरी भर नसें हैं।

उत्तर-खाट

आय लूलू जाय लूलू पानी ल डराय लूलू।

लूलू आता है लूलू जाता है, पानी देखकर लूलू डरता है।

उत्तर-जूता

आवथ होही त नी आवव।

नी आवथ होही त आहव।।

(वह) आती होगी तो नहीं आऊँगी, नहीं आती होगी तो
आऊँगी।

उत्तर-वर्षा

आसाड़ म बछरू ढीले सावन म पनाय।

कुँआर म दुहावे अउर अगहन म घर आय।।

आषाढ़ में बछड़े को खुला छोड़ा दिए, सावन में वह पन्हाया।
कुँआर (क्रार) में दूध भरा और अगहन में घर आया।

उत्तर-धान

वोह देस ले आए मड़वाड़ी नाचा खटिया गाँथे।

गाँथे बर गाँथे डारील फिर उठाय नहीं सके।।

उस देश से मारवाड़ी आए, उन्होंने मचिया (खटिया) गांध
डाले, गाँथने को तो गाँथ लिया, परन्तु उन्हें उठा नहीं पाए।

उत्तर-राँगोली

उजनाउर बिजनाउर बिन फोकला के चाऊर।

वह उज्जवल है, बीज सदृश है और बिना छिलके का
चावल है।

उत्तर-ओले

उच डौकी के कुछ नहीं, लइका होवे तो दूध नहीं।

ऊँची स्त्री के स्तन नहीं हैं। जब वह बच्चे को जन्म देती है,
तब उसे दूध नहीं होता।

उत्तर-केले का फल

ओड़त देखिअव गिनगिना बइठे दाना पसार।

लाख जीब ला मारके नइ खाय।।

पक्षी को उड़ते हुए देखा, पंख पसारे बैठे देखा। लाखों
जीवों को मारता है, किन्तु एक को भी नहीं खाता।

उत्तर-मछली जाल

ऊपर पछरी तरी पछरी, बीच म बइठे मोंगरी मछरी।

तालाब के ऊपर घाट है, नीचे भी घाट है। बीच में मोंगरी
मछली बैठी है।

उत्तर-जीभ

ऊपर म लाल च लाल, छूये म नहीये काहीं छाल।
ऊपर से देखने में लाल ही लाल है। छूने में भी कोई मजा नहीं है।

उत्तर-पलाश फूल

ऊपर राज के बोले चीरड़, बीपत माने लुग लुगाई।
ऊपर राज्य से चिड़िया बोल रही है, जिसे सुनकर लोग-
लुगाई विपत्ति मान रहे है।

उत्तर-उल्लू

ये पार नदी वो पार नदी, बीच में कचाकच।
ऐसन नौकरी ला लात मारव, घर में खटाखट।।
इस पार नदी और उस पार नदी बीच में कचाकच, ऐसी
नौकरी को लात मारूंगा, तो घर में अनबन होगी।

उत्तर-करघा

एक अचंभा देखेंव चल, सुक़्खी लकरि मा लागे फल।
एक ऐसा आश्चर्य देखा की सूखी लकड़ी में फल लगे हैं।

उत्तर-सहेजन

ये पार नदी वो पार नदी, बीच में टुरगा रूक।
सोने चिरैया ह गारा पारे हे, हेरे न बड़ दुख।।
इस पार नदी है उस पार नदी है, बीच में वृक्ष का टूँठ है,
उस पर सोन चिड़िया ने अंडे दिये है, जिसे प्राप्त करना
मुश्किल है।

उत्तर-गोदना

एक गाँव म ऐसन देखव बेंदरा दुहेव गाय।
छाली छील के मुलका करेव, दही ला लेके आय।।
एक गाँव ऐसा देखा, जिसमें बंदर गाय को दुहता है, छाल
को छीलकर नाश्ता करता है और दही लेकर आता है।

उत्तर-ताड़ी

एक चींटी मूतेले नदी नाला बोहाइ जाय।
पंडित जी पाँव पखारे केवट नाव चलाय।।
एक चींटी के पेशाब करने से नदी-नाले बहने लगते हैं।
पंडित जी पाँव पसारे है और केवट नाव चला रहा है।

उत्तर-कलम

एक टांग एक टोपी बारा देस ले निकरे जोगी।

एक टांग पर खड़े हुए हैं और एक टोपी ओढ़े हैं। ऐसे
जोगी बारह देश से निकले हैं।

उत्तर-कुकुरमुत्ता

एक चिड़िया बारा अंडा।
चार पक्का चार कच्चा अउ चार ठण्डा।

एक चिड़िया है, उसके बारह अंडे है, जिनमें चार पके
(सूखे) चार कच्चे (गीले) और चार ठण्डे (शीत) हैं।

उत्तर-ऋतुएँ

एक डौकी डौका संग सुते अंग ले अंग लगाय।
पीयाला छूटत देखके संग सती होइ जाय।

एक स्त्री अपने पति के साथ आलिंगन बद्ध सोई है। पिया
को बिछुड़ता देखकर उसके साथ सती हो जाती है।

उत्तर-दीपक

पथरा के बछुवा कटुवा के गाय।
जब में दुहे तब में पन्हाया।।

पत्थर का बछड़ा, काठ की गाय, जब दुहो तब ही दूध देने
के लिए तैयार।

उत्तर-चंदन

करिया गाय के करिया बछरू।
रहि गये गाय बिचक गये बछरू।

काली गाय का काला बछड़ा, गाय रह गई और बछड़ा
भाग गया।

उत्तर-बंदूक

काँधे आय काँधे जाय।
नेग-नेग में मारे जाय।।

कंधे पर चढ़कर आता है, कंधे पर चढ़कर जाता है और हर
शुभ अवसर पर पिटता है।

उत्तर-मृदंग (ढोल)

कोन चाहे बातनी कोन चाहे चूप।
कोन चाहे बरसा कोन चाहे धूप।।

कौन बातूनी चाहता है कौन खामोशी चाहता है। कौन वर्षा
चाहता है और कौन धूप चाहता है।)

उत्तर-नारी (स्त्री), चोर, माली, धोबी

गोरिया खेत के करिया बीज, वोकर घुसैया गावय गीत।
सफेद खेत के काले बीज हैं, उस खेत का मालिक गीत
गाता है।

उत्तर-कलम

उज्जर घोड़ा के हरियर पूछी।
नहि जानहि तो ककाल पुछी।।

सफेद घोड़े की हरी पूँछ है, नहीं जानते हो तो अपने पिता
से पूछो।

उत्तर-मूली

चारों खूँटा चारों पाटि, चार रतन के डोर।
रानी जाये गंगा सागर, छेकने वाला कौन।।

चार खूँटे है चार पाटी है, चार तरह की रस्सी से बँधे हैं।
रानी गंगा सागर जा रही है, उसे रोकने वाला कौन है।

उत्तर-मुर्दा (शव)

छेरा छेरा छेर छेरा, कोठी के धान हेर हेरा।
फूल-फुले रक्त बरन, फर आवे केरा।।

छेर-छेरा छेर-छेरा (फसल का त्योहार) पर कोठी का
धान बाहर निकालो, रक्त की तरह फूल खिले हैं और केले
की तरह फल लगे हैं।

उत्तर-सेमल

जाजल देव राजा के आठ ठन गोड़।
दुइ ठन हाथ, तेकर नीरा है खून।।

जाजल देव राजा के आठ पैर और दो हाथ हैं, जिनसे खून
टपक रहा है।

उत्तर-केकड़ा

जावथस तो जाव फेर कान ला अइँठ राख।
जाते हो तो जाओ पर जाते सयम कान ऐँठते जाओ।

उत्तर-ताला

डोंगरगड़ के बिंबला देई, बूढ़ा देव पचपेड़ी।
सौँठन भेड़ी देखवँ, एको ठन नहि रहिस लेड़ी।।

डोंगरगड़ की बम्लेश्वरी देवी, पचवेड़ी के बूढ़ा देव और
सौ भेड़े सभी देखे हैं, लेकिन उनकी एक भी लेंडी नहीं
दिखाई पड़ी।

उत्तर-चींटी

तार के तार बीसों तार।

उहाँ झूले दीमागदार।।

तार ही तार हैं बीसों तार और उन पर दीमागदार झूलता है।

उत्तर-बंदर

तीन गोड़ धरती रहे एक गोड़ अकास।
बिन मेघ के पानी बरसे पंडित करो बिचार।।

तीन पैर धरती पर और एक आकाश की ओर, बिना बादलों
के पानी बरसे ज्ञानी विचार कर उत्तर दें।)

उत्तर-कुत्ता

तीन महिना के छोकरी, सात महिना के पेट।
हाथी सहि लइका जनमाइस दाड़ी मीछा समेत।।

तीन महीने की लड़की जिसका सात महीने का गर्भ है,
उसने दाढ़ी-मूँछ सहित हाथी जैसे बच्चे को जन्म दिया।

उत्तर-भूटा

दुल्हा देव अउर ठाकुर देव के पाव पड़के आबे।
जाबे तो जाबे पाठ के भाइ ला घर के जाबे।।

दूल्हादेव और ठाकुर देव के चरण स्पर्श करके आना और
जाओगे तो जाते समय अपने छोटे भाई को साथ ले जाना।

उत्तर-लाठी

नदी के पाट में टेड़ंगी रूक,
ऊपर टीप के गुड़ा
जठै भुदूयाँ में पारे गारा।

नदी के किनारे टेढ़ा वृक्ष है, जिसके ऊपर टीप का घर है
और भूमि पर गारा फैला हुआ है।

उत्तर-महुआ

नान कुन मटुकदास आना पहिरे सौ पचास।

छोटे से मटुकदास जिन्होंने सौ-पचास वस्त्र पहन रखे हैं।

उत्तर-प्याज

पंडरी पानी खोट तरानी, वो मा खेले बेंदो रानी।

सफेद पानी में बेंदो रानी कर्कश स्वर में गाती हुई खेल रही
है।

उत्तर-मथानी

पाके न फूटे टन-टन बाजे

न वह पकती है न फूटती है, परन्तु हमेशा टन-टन बजती रहती है।

उत्तर-आत्मा

पान न पत्ता खड़े अकड़ छत्ता।

न उसके पान है न पत्ते हैं और अकड़ के छत्ते सदृश खड़ा है।

उत्तर-जलस्तंभ

पुरुष देस ले आवै चिरई तेकर पुछी बीस-बीस हाथ।

पुरुषों के देश से चिड़िया आती है, उसकी पूँछ बीस-बीस हाथ लंबी है।

उत्तर-सुई धागा

पेड़ वोकर थापक थुड़क पान वोकर थारी।

बेटी वोकर श्याम सुन्दर देह वोकर कारी।।

पेड़ उसका बेडौल, पत्ते उसके थाली के समान हैं। उसकी बेटी श्याम सलोनी है, देह उसकी काली है।

उत्तर-पलाश

पेड़ खसाखस पान बहेरा फूल रूपेली फर केरा।

पेड़ अच्छा घना है, जिसमें पत्ते कम हैं, जिसमें सुन्दर फूल लगे हैं और फल केले के समान हैं।

उत्तर-सेमल

पेड़ लोहा फल चाँदी फूल सोना।

पेड़ लोहे सदृश, फल चाँदी के समान और फूल स्वर्णिम हैं।

उत्तर-बबूल

फरे न फूले नवे न डाल।

जबले जीवे तबले खाय।।

न फलता है और न फूलता है, न ही उसकी डाल झुकती है। जब से वह उत्पन्न होता है, तभी से खाया जाता है।

उत्तर-नमक

फूल फूले रूमुक झुमुक फर फरे लहबेला।

ये धंधा ल जान डारि पहिरा हूँ सोन के ढारा।।

फूल रूमुक झुमुक फूलते हैं और भरपूर फल लगते हैं। इस

पहेली का जो हल बताएगा, उसे सोने के कर्ण आभूषण पहनाऊँगा।

उत्तर-सरसों

फरे न फूले ठाढ़ रूपला लीले

न फलता है न फूलता है और खड़े वृक्ष का भक्षण करता है।

उत्तर-अमरबेल

फूले फूल गुलाब के रहे नगर म आय।

न माली के बाग म न राजा घर जाय।।

नगर में आकर के गुलाब के फूल फूलते हैं। वे न तो माली के बाग में न ही राजा के घर जाते हैं।

उत्तर-सूर्य

बारा भाई के बारा नाव लंगू-झंगू कबरे नाथ।

बारह भाईयों के बारह नाम है, लंगू-झंगू और कबरा नाथ।

उत्तर-वर्ष के बारह माह

बाँस के बाँसुरी, बजाय पर कोनो नी।

दीदी चलीस नेहर, ते मनाय नी कोनी नी।।

बाँस की बाँसुरी बज रही है, पर बजाने वाला कोई नहीं है, दीदी मायके जा रही है, उसे मनाने वाला कोई नहीं है।

उत्तर-नदी

बीच तरिया म चाँदी के ठाठी

तालाब के बीच में चाँदी की डंडी।

उत्तर-कमल

मा के देखेव दीदी के देखेव।

औरत के ला जात नहि देखेव।।

माँ का देखा, बहन का देखा, परन्तु अपनी पत्नी का जाते हुए नहीं देखा।

उत्तर-सुहाग

चाल चलनी चालवे आवे दू सूपा सपेरा पावे।

बाघ देवता खेलत आवे अउ घुइया जसन आँखी।

चार चलनिया चलती हुई आ रही हैं, दो सूर्य पदोरते हुए आ रहे हैं। उसकी आँखें घुई के सामन हैं। आवे दू सूपा

पछोरा पवे

उत्तर-हाथी

छिंदक-छिंदक छिंदक फूल।

बारह राजा भइन मजूर

तेहूँ न मिले छिंदक के फूल।

छोटा सा फूल है, जिसे खोजने बारह राजा मजदूरों की तरह भटक रहे हैं, फिर भी वह फूल नहीं मिला।

उत्तर-डूमर का फूल

पेड़ है थापक थउआ पान हो बंगाला।

खाथ-खाथ गुड़-सकरी लागे जाने भीठ गोपाला।।

पेड़ हरा-भरा है, जिसके पत्ते बड़े-बड़े हैं। खाने में वह प्रभु को भी गुड़ शक्कर के जैसा मीठा लगता है।

उत्तर-केला

हा हा की थैली म हू हू के बीजा

हा-हा की थैली में हू-हू के बीजा।

उत्तर-मिरची (मिर्च)

तनिक से फुदकी फुदकत जाय।

नो सौ अँड़वा पाड़त जाय।।

छोटी सी फुदकनी फुदकती हुए जाती है और नो सौ दरारों को पाटती है।

उत्तर-सुई-धाना

हाना

छत्तीसगढ़ी में लोकोक्तियाँ कहावतों के लिए हाना शब्द प्रचलित है। 'हाना' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'आभाणक' (आ+भण्+ण्वुल्) से हुई है। लोकोक्तियों में अपनी बात को संक्षिप्त से संक्षिप्त ढंग से प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता होती है। लोकोक्ति या कहावतों के प्रयोग से भाषा अधिक प्रभावशाली व समर्थ बनती है। अनेक लोकोक्तियों की उत्पत्ति कथाओं के माध्यम से हुई है, ऐसी लोकोक्ति या कहावतों की पृष्ठभूमि में जो कथासूत्र विद्यमान है, उनकी जानकारी होने पर ऐसी कहावतें और भी प्रभावशाली बन पड़ती हैं। कहावतों का प्रयोग गरजनों की तुलना में ग्रामीणजन अधिक व बेहतर ढंग से करते हैं। डॉ. सुनीति कुमार के मतानुसार- 'जनता की समवेत मित्रता (अनुभव) तथा विचार कहावतों में उपलब्ध होते हैं।'

कहावतों में जीवन के सभी रंग सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि विविध विषय सम्मिलित हैं। समाज के आचार-विचार, रीति-रिवाज, परम्पराएँ तथा लोक जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यंजना कहावतों के माध्यम से प्रकट होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कहावतों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, जिससे मानव जीवन की कोई भी गतिविधि अछूती नहीं है।

अधिकांश लोकोक्तियों की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में कोई न कोई कथा विद्यमान होती है और उस कथा से नीति वाक्य की तरह लोकोक्ति के रूप में कहावतें उत्पन्न होती हैं। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण पंचतंत्र की कथाओं से उत्पन्न लोकोक्तियाँ हैं। हितोपदेश और पंचतंत्र दोनों ही भारत के अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ हैं, जिनकी कथाएँ लोकोक्ति मूलक हैं। पंचतंत्र में संकलित कथाओं से उद्भूत लोकोक्तियाँ जैसे- 'दूजे के काम में बेमतलब टांग अड़ाना' कील उखाड़ने वाले बंदर की कथा से- 'उपाय से शत्रु को जीतो हथियार से नहीं' बगुला भगत कथा से तथा शक्तिशाली वही है जिसके पास बुद्धि है, भासुरक नाम के शेर की कथा से, संगठन में बड़ी शक्ति है- चटकी, कठफोड़वा और मक्खी की कथा से संबंधित हैं। कहावतें किसी भी समाज के दीर्घकालीन अनुभवों एवं ज्ञान से उत्पन्न होती हैं। इसी कारण से वे किसी समाज की धरोहर बन पाती हैं। सबकी संपत्ति बनने योग्य दीर्घकालिक अनुभव से उत्पन्न किसी व्यक्ति के भाषायी कौशल के माध्यम से अभिव्यक्त बात कहावत बन जाती है। कहावतों की उत्पत्ति हर युग में होती रहती है, परन्तु वे किसी समाज विशेष में कहावत के रूप में प्रतिष्ठित तभी हो पाती है, जब उनके पीछे एक लंबी अनुभव श्रृंखला हो। बड़े साहित्यकारों की रचनाएँ, संतों का काव्य और वाणी, ज्ञानीजनों की सूक्तियाँ आदि अभिव्यक्तियाँ भी निरंतर प्रयोग के माध्यम से कहावतों का रूप धारण कर लेती हैं।

अनेक अध्येताओं ने भिन्न-भिन्न भाषाओं की लोकोक्तियों का संग्रह एवं अध्ययन किया है। ऐसी अनेक लोकोक्तियों के संकलन का अध्ययन करके कहावतों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया गया है- प्रकृति संबंधी, कृषि संबंधी, नीति संबंधी, भाग्य संबंधी, जाति संबंधी, स्वास्थ्य संबंधी, घरेलू समस्याओं से संबंधित, खान-पान संबंधी एवं विविध।⁵ हिन्दी भाषा की सहोदर बोलियों में लोकोक्ति साहित्य अत्यंत समृद्ध है। इन लोकोक्तियों का अध्ययन करने पर अनेक लोकोक्तियाँ समान रूप से अनेक बोलियों में मिलती हैं। अनेक लोकोक्तियों के अर्थ भी समानार्थी हैं भले ही उनके ऊपरी आवरण भिन्न हो। लोगों के विस्थापन एवं स्थानांतरण व प्रवास के कारण भी लोकोक्तियाँ उन समुदायों के साथ एक

स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँची है। भिन्न-भिन्न देशों एवं प्रदेशों की कहावतों में अर्थ की आश्चर्यजनक समानता मिलती है। कहावतों में गागर में सागर भरने की क्षमता होती है। लोकोक्तियों में व्यंग्योक्ति की भी विलक्षण क्षमता देखने को मिलती है। 'लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्य रश्मि नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है, उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवीय समझ की घनीभूत हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से कूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।' ⁶

कहावतों की प्रथम विशेषता है-उनकी लघुतापूर्ण अभिव्यक्ति अर्थात् कम शब्दों में बड़ी से बड़ी बात कह सकना।

कहावतों की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता किसी समुदाय का दीर्घकालिक अनुभव ऐसे दीर्घकालिक अनुभव से उत्पन्न ज्ञान लोकोक्तियों के रूप में प्रकट होता है। लोकोक्ति की एक विशेषता उसकी सहज भाषा होती है, जिसके कारण उसकी सम्प्रेषणीयता प्रभावशाली होती है। चूँकि लोकोक्तियाँ सामुदायिक दीर्घकालिक संचित ज्ञान से उद्भूत होती हैं, इसलिए उनके रचनाकार अज्ञात होते हैं, वे समस्त जाति की सांस्कृतिक धरोहर होती हैं, जिनके पीछे जातीय स्मृतियाँ सक्रिय होती हैं।

जेम्स ए. केलसो ने लोकोक्तियों के उद्भव के तीन स्रोत बतलाए हैं-(अ) घटना (ब) पहेली (स) लोककथा ⁷ भारतीय विद्वानों ने इसमें एक चौथे स्रोत को भी आवश्यक मानकर जोड़ा है, वह है लोकप्रिय चिंतकों की सूक्तियाँ। ⁸ कहावतें प्राचीनकाल से ही साहित्य एवं जनमानस दोनों का ही अभिन्न अंग रही हैं। इसके अतिरिक्त लोकोक्तियों से भाषा भी समृद्ध होती है और अभिव्यक्ति सशक्त बन पड़ती है। कहावतों की प्राचीनता के बारे में सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है कि-'ऋग्वेद से शुरू करके अब तक के भारतीय साहित्य में प्रवाद और कहावतों का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में कितने ही पूरे अर्धत्रोटक पाद या अक् पाद को अर्थतः लोकोक्ति या कहावत कहा जा सकता है।' ⁹ लोकोक्तियों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष उनका साहित्य की अपेक्षा बोलियों से कहीं अधिक संयुक्त होना है। इसी कारण नागरजनों की अपेक्षा ग्रामीणजनों की भाषा में लोकोक्तियों का प्रयोग अधिक मिलता है। ग्रामीणजनों की भाषा इसीलिए अधिक लोचदार और सशक्त अभिव्यक्ति लिए हुए होती है। यहाँ मुहावरों और लोकोक्तियों का अंतर स्पष्ट कर देना प्रसंगिक होगा। मुहावरे पूर्ण वाक्य न होकर वाक्यांश होते हैं, जबकि

लोकोक्तियाँ अपने आपमें पूर्ण वाक्य होती हैं। मुहावरेदार भाषा में भी प्रभावशाली अभिव्यक्ति की संभावना होती है और भाषा लोचदार बनती है। इस दृष्टि से मुहावरे और लोकोक्तियाँ दोनों ही भाषा को प्रभावशाली बनाते हैं। डॉ. जान्सन ने लोकोक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया है- 'वे संक्षिप्त वाक्य जिन्हें प्रायः लोग दोहराया करते हैं।' ट्रेच के मतानुसार- 'लोकोक्ति बिना वक्ता की उक्ति है, संक्षिप्त अर्थपूर्ण और रोचक होती है। यह थोड़े से शब्दों में सजा हुआ वृहद् ज्ञान है। इत्यादि-इत्यादि। किन्तु इन सबके अतिरिक्त यह सम्पन्नता और समृद्धि की द्योतक तक भी है।'

जॉन बीम्स के मतानुसार- 'लोकोक्तियाँ यथार्थ लोक भाषा सिखाती हैं और मूल निवासियों के मन की, अब तक छिपी हुई भावनाओं पर प्रकाश डालती हैं।' डिज़रैली ने लोकोक्तियों को प्राचीनतम ग्रंथों से भी अधिक प्राचीन माना है। शिक्षित व समुदाय अपनी बात को अधिकाधिक साहित्यिक एवं शिष्टजनों की भाषा में व्यक्त करता है, जबकि एक अशिक्षित ग्रामीण अपने उद्गारों को कहावतों के माध्यम से कहीं अधिक सशक्त ढंग से प्रस्तुत कर लेता है।

यूरोप के भद्रलोक में किसी समय विशुद्धतावादी विद्वानों के प्रभाव स्वरूप भाषा में लोकोक्तियों का प्रयोग एक प्रकार से वर्जित माना जाता था। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के प्रयोग को ग्रामीण किसानों और मजदूरों जैसे तथाकथित अशिष्ट समाज की भाषा समझा जाता था और डॉ. जॉन्सन जैसे विद्वान भी लोकोक्तियों और मुहावरों के भद्रजनों द्वारा प्रयोग को नीचजनों की संगति का परिणाम मानते थे। बावजूद ऐसे विद्वानों के दुराग्रह के भी मुहावरे और लोकोक्तियाँ लोगों की भाषा में प्रयुक्त होती रही और आमजनों ने उन्हें अपनी भाषा में अपना लिया। डॉ. शशिसेखर तिवारी की लोकोक्तियों के बारे में यह स्थापना पाश्चात्य विद्वानों की तुलना में कहीं अधिक उचित प्रतीत होती है-'लोकोक्ति समाज की सृष्टि ही नहीं, समाज की पथ प्रदर्शिका भी होती है। ये लोकोक्तियाँ समष्टि के अनुभव की होशियार बेटियाँ होती हैं, जो गतिशील जीवन के विविध अवसरों पर मुखर होकर कल्याण मार्ग का उद्घाटन और विवेचन करती हैं। ये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जीवन के आदर्श मार्गों के निर्माण-निर्देशन में सक्रिय योग प्रदान करती हैं। सामान्य जनता शास्त्रों के जटिल और सूक्ष्म ज्ञान से अनभिज्ञ होती है, किन्तु उसे लोकोक्ति के रूप में जीवन और जगत का सामान्य व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जन सामान्य की दृष्टि में लोकोक्तियाँ वेद और ब्रह्म की तरह स्वतः प्रमाण होती हैं।' ¹⁰

छत्तीसगढ़ी हाना के कुछ वे उदाहरण इस प्रकार हैं-

खेती अपन सेती।

- खेती दूसरे के भरोसे नहीं जा सकती, स्वयं ही करनी पड़ती है।

मंजूर के स्वाँग में खुसर हर राज ले लेइस।

- मयूर का स्वाँग भरकर खुसरा पक्षी ने राज्य ले लिया।

जेकर जैसे घर दुआर तेकर तैसे फरिका।

जेकर जैसे दाइ ददा तेकर तैसे लरिका।।

- जिसका जैसा घर-द्वार होगा, वैसा ही उसका रहन-सहन होगा। जैसे जिसके माँ-बाप होंगे, वह संतान भी वैसी होगी।

घर कथे बना के देख, बिहाव कथे करके देख।

- घर कहता है कि बनाकर देखो तो पता लगेगा और विवाह करके देखो तो अनुभव होगा।

बमना जात के कुकरी पुजे रात के।

- कहने के ही ब्राह्मण हैं, रात को मुर्गी काटकर खाते हैं, ऐसा उनका आचरण है।

अठगुन कायथ नौ गुन पनका।

दसगुन दसोंधी के लरिका।।

- कायस्थ के आठ गुण, पनका के नौ गुण तथा दसोंधी के लड़के सर्वगुण सम्पन्न होते हैं।

गाँव बिगारे तेलियाँ, खेत बिगारे बेलिया।

- गाँव को तेली बिगाड़ता है और खेत को लता आदि खरपतवार।

आन के नाचे कूदे तो गाँड़ा के भटकाय।

- दूसरों के नाचने-कूदने की बराबरी गाँड़ा का मटकना भी हो कर लेता है।

गाँव बिगाड़े बमना खेत बिगाड़े सोमना।

- गाँव को ब्राह्मण बिगाड़ता है और खेत को सोपना घास।

हपटे बनके पथना घर के कोरे सिर।

- आशय-जंगल में तो फिसलकर गिरे हैं और घर में आकर उसकी खीज उतार रहे हैं।

अपन मरे बिना सरग नहीं दिखे।

- स्वाध्याय बिना स्वर्ग नहीं मिलता।

राजा के अगाड़ी घोड़ा के पिछाड़ी।

- राजा के आगे चलने से और घोड़े के पीछे-पीछे चलने में खतरा है।

सिर खाए आप ला बुध खाय पराय ला।

- क्रोध अपने को खाता है और बुद्धि पराए व्यक्ति को।

तेल फूल से लड़का बाढ़े पानी से बाढ़े धान।

खान-पान में सगा कुटुंब करम से बाढ़े किसान।

- अच्छे खान-पान से बालक बढ़ता है, पानी से बढ़ता है धान। खिलाने पिलाने से सगे संबंधी बढ़ते हैं और परिश्रम से किसान बढ़ता है।

कुल बिहावे कन्हार जोते।

- आशय-अच्छे कुल में विवाह करे और कन्हार ज़मीन (काली मिट्टी) को जोते, तो उसमें सफलता मिलती है।

पानी पीये छान के अउ गुरू करे जान के।

- पानी छानकर पिये और सोच समझकर गुरू बनाए।

ओढ़े बर ओढ़ना नहीं बिछाए बर बिछोना।

बिहाव बर बाट देखो रतनपुर के केना।।

- ओढ़ने को ओढ़ना नहीं है, बिछाने के लिए बिछोना नहीं है, विवाह की बाट जोह रही है रतनपुर की कन्या।

साप मरे झन लाठी टुटे।

- साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

बर न बिहाव छटठी बर धान कुटे।

- आशय-न वर है न विवाह और शिशु के नामकरण के लिए धान कुटा जा रहा है।

भैंस के आगे बेन बाजे भैंस बैठे पगुराय।

- भैंस के आगे बीन बजाई जा रही है और भैंस पगुराने में ही सस्त है।

दाँत रहिस ते चना नहीं चना रहिस ते दाँत नहिं।

- जब दाँत तो चने नहीं थे और अब चने हैं तो दाँत नहीं है।

- एक ठन लइका गाँव भर टोनही।
- इकलौती संतान और गाँव की सब स्त्रियाँ उनको टोनही नजर आती हैं।
- संझा के पानी और बिहनिया के झगरा।
बहुत नहीं तो थोरा-थोरा।।
- संध्या के समय की वर्षा और सुबह-सुबह का झगड़ा, थोड़ा न थोड़ा दिन भर चलता (रहता) है।
- नवा बइला के चीकन सिंग चल रे बइला टिंगन-टिंग।
- नये बैल के चीकने सींग है और वह नाचते कूदते चलता है, अर्थात्-जवान बैल की चाल ही निराली होती है।
- घर से निकलिस बड़रोस तीन दिन म अढ़इ कोस।
- क्रोध में अकड़कर घर से निकले और दिन भर में चले अढ़ाइ कोस।
- नंगरा का नहाय का निचौरै।
- नंगे का क्या नहाना और क्या निचोड़ना।
- कुकुर के आइ आये तो छानी प चथे भरथे।
- जब कुत्ते की मौत आती है, तो छप्पर पर चढ़ जाता है।
- असाड़ के चुके किसान डाल के चुके बेंदरा।
- आषाढ़ में चूका किसान और डाल का चूका बन्दर दोनों ही बर्बाद होते हैं।
- कुकुरा नहीं बासी तो बिहान नहि होही।
- मुर्गा बाँग नहीं देगा तो क्या सुबह नहीं होगी?
- आन के फारा आन के फरी।
लल्लू नाचे बोइर तरी।।
- दूसरे की तलवार, दूसरी की फरसी और लल्लू मियाँ खुश होकर बेर के झाड़ के नीचे नाच रहे हैं।
- खाय के बेरा हरख दे बूता के बेरा रख दे।
- खाने के समय सबसे आगे और काम के समय खिसक गए।
- तेली घर तेल होथे तो पहाड़ ला नी पोते।
- तेली के घर तेल होता है, तो पहाड़ को नहीं पोत देता।

- अँधुआ के सट-सट लग जाय तो लगि जाय।
- अंधे की अटकल लग जाय तो लग जाय।
- पीठ ला मार ले पेट ला झन मार।
- पीठ को मार लो पर पेट को मत मारो।
- अड़हन बैद परान घाती।
- अड़हा (अनाड़ी) वैद्य प्राणघाती होता है।
- गदहा सुर न बगुला जती।
बनिया मित्र न वेस्या सती।
- न तो गधे की आवाज सुरीली होती है न ही बगुला यती (संत) होता है। न बनिया किसी का मित्र होता है न ही वैश्या सती होती है।
- दही के भोरहा मा कपसा लील आयी।
- दही के भ्रम में कपास खा रहे हैं।
- दूबर ला दु असाड़।
- दुबले (अशक्त) व्यक्ति पर दो आषाढ़।
- ठेंग-ठेंग बो परसराम।
चार बेटा राम के, कोड़ी के न काम के।।
- परसराम के चार निठल्ले बेटे हैं, जो न तो कौड़ी के है न काम के हैं।
- सूम के दान खैर खूँटा। मरे के बेरा लुटि लूटा।।
- सूम किसी को दान नहीं देता। मरने पर उसके धन की लूट होती है।
- तेली चीट बरइ काट। झन जावे बनिया संग हाट।
- तेली के कपड़े तेल में चिपचिपे होते हैं, बरई की दृष्टि काटने की रहती है और बनिये के साथ बाजार जाओगे तो ठगे जाओगे।
- ठलहा बनिया का करे।
ये कोठी के धा नला वा कोठी में करे।
- बैठा बनिया क्या करे, इस कोठी का धान उस कोठी में रखे।
- गँवई या सब एके है गा।

- कोनो बामन कोना बनिया।
कोनो ढलहा कोनो कपिया।।
- गाँव में सब एक ही बराबर हैं चाहे वह ब्राह्मण हो या बनिया। कोई निठल्ला है तो कोई मजदूरी कर रहा है।
- आदमी में नौआ अऊ पक्षी में कौआ।
- मनुष्य में नाई उतना ही चालाक होता है जितना पक्षियों में कौआ।
- आज के बासी ला काल के साग।
अपन घर म काके लाज।।
- आज की बासी और कल की सब्जी अपने घर में जो कुछ भी है, उसे खाने में काहे की लाज।
- ऊपर-ऊपर राम-राम। भीतर कसाई काम।
- ऊपर-ऊपर राम-राम और मन में कसाई का काम (कपट)।
- उधव के लेनी न माधव के देनी।
- न उधव से लेना न माधव को देना।
- अँधरा पिसे कुकुर खाय।
- अंधा पीसे कुत्ते खांय।
- काम ले करम।
- काम ही भाग्य का निर्माता।
- कुकुर भूके हजार हाथी चले बजार।
- कुत्ता हजार बार भौके तो भी हाथी उसकी परवाह किए बिना बाजार की ओर चला।
- कुकुर ला गंगा जाहि ता पतरी ला कोन चाटी।
- कुत्ते ही गंगाजी चले जाएँ, तो पत्तल कौन चाटेगा।
- गली-गली म साधू रेंगे, संत फुकाआ कान।
चोला तरे त झन तरे नरियल पोती ले काम।।
- गली-गली साधु घूम रहे हैं, संतों कान फुकवाओ, तुम्हें मुक्ति मिले या न मिले उन्हें नारियल और वस्त्र जरूर मिल जायेगा।
- घर के पिसान ला कुकुर खाय।
परेथन ला मांगे बर जाय।।
- घर के आटे को कुत्ते खा रहे हैं और पलोथन के लिए मांगने जा रहे हैं।
- चलनी में दूध दुहै।
- चलनी में दूध दुह रहे हैं।
- नान जात पदवी पाइन।
त हगत खानी गीत गाइन।।
- कुपात्र को पदवी मिल जाती है, तो शौच के समय भी गीत गाने लगता है।
- जात सभाव छूटे नाहिं टांग उठाय बिन मूते नाहिं।
- जाति का स्वभाव छूटता नहीं है। कुत्ता टांग उठाए बिना मूतता नहीं है।
- जेकर बेंदरा तेइ नचावे।
- जिसका बंदर है, वही नचा सकेगा।
- टूटहा करम के फूटहा दोना।
- जिसके भाग्य फूटे हों उसे दोना भी टूटा हुआ मिलता है।
- दार-भात म मूसर चंद।
- दालभात में मूसल चंद।
- नकटा गाय बूचा बजाय।
बेसरम तार मिलाय।
- नकटा गा रहा है, बिना कान वाला बजा रहा है और बेशरम ताल मिला रहा है।
- नींद चीन्हें न मरघट घाट।
भूख चीन्हें न जात कुजात।।
पैसा चीन्हें न माई-बाप।
प्यास चीन्हें न धोबी घाट।।
- नींद में मरघट या घाट नहीं सूझता, भूख में जात-कुजात नहीं सूझती। पैसा न बाप को पहचानता है न माँ को, प्यास बुझाने के लिए धोबी के घाट का पानी हो या कहीं का भी।
- पड़े लिखे बने टरे तोर चाल म कीरा परे।
- पढ़े-लिखे यह तो अच्छा किया, किन्तु आचरण ऐसा है जिसमें कीड़े पड़ें।
- बाप के बानी पठान के घोड़ा।
बहुत नहि ते थोड़ा-थोड़ा।

- पिता की वाणी और पठान का घोड़ा, इनका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य होगा।

बामन कुकुर घोरा कबहु नहिं पटे जोरा।

- ब्राह्मण, कुत्ता और घोड़ा इनका कोई मित्र नहीं होता।

माछी खोजे घाव राजा खोजे दाव।

- मक्खी घाव पर बैठती है और राजा दुश्मन के प्रति मौके की तलाश में रहता है।

रहे बर नांदगाँव पादे बर बिरकोनी।

- रहते नाँदगाँव में है पादने जाते है बिरकोनी में।

सावन भाजी भादो दही,

कुआर करेला कार्तिक मही

मरही नहीं त परहि सही।

- सावन में भाजी, ऋतु में करेला और कार्तिक में मही खाओगे तो यदि मरे नहीं तो बीमार जरूर पड़ोगे।

सखराज बनके गइन बजार।

व सोला सौ के करिन हजार।

- अनाड़ी व्यक्ति जब बाजार जाएगा तो सोलह सौ के एक हजार कर लेगा।

ससुर घर तेल नहि घुरसार बर दीया।

- श्वसुर को तो लगाने के लिए तेल नहीं है और घुड़साल में दीया जला रहे हैं।

हाथ मचुरा कान में सोन। घर के जतन करे कोन।

- हाथ में चूड़ा पहने हैं और कान में सोने के आभूषण, घर की रक्षा कौन करे।

सुइन के आगु मा पेट लुकावे।

- दाई से पेट छिपाना।

अपन बेटा लेङगे नीक। गहूँ के रोटी टेङगे नीक।

- अपना बेटा कैसा हो अच्छा ही होता है। गेहूँ की रोटी चाहे टेढ़ी-मेढ़ी क्यों न हो तब भी वह स्वादिष्ट ही होती है।

कुकुर के लेड़ा न लीपे के न पोते के।

- कुत्ते की विष्टा न लीपने की न पोतने की।

रानी के बानी अउ चेरिया के संसुख छूटे के नोवे।

- रानी की वाणी और दासी का संशय छूटते नहीं।

तठिया न लोटिया फुकर के गोठिया।

- न थाली है न लोटा है, फोकट में मालगुजार बने है।

मुहावरे

मुहावरा मूल रूप से अरबी भाषा का शब्द है, जो हिन्दी तथा हिन्दी के सभी जनपदों की भाषाओं में अपना लिया गया है। अरबी में इस शब्द का अर्थ आपस में बातचीत एवं जवाब-सवाल करने वाला वाक्यांश है। मनुष्य के दैनंदिन जीवन एवं दीर्घकालिक अनुभव से उत्पन्न विचारों को प्रकट करने वाले वाक्यांश ही मुहावरे कहलाते हैं। मुहावरे सम्पूर्ण वाक्य न होकर वाक्यांश होते हैं, जो आकार में छोटे और गद्यात्मक होते हैं। राम नरेश त्रिपाठी ने मुहावरों को इस प्रकार परिभाषित किया है- 'मुवाविरा किसी भाषा अथवा बोली में प्रयुक्त होने वाला वह वाक्यखण्ड है, जो अपनी उपस्थिति से समस्त वाक्य को सबल, सहज और चुस्त बना देता है। संसार में मनुष्य ने अपने लोक व्यवहार में जिन वस्तुओं और विचारों को बड़े कौतूहल से देखा है, समझा है और बार-बार उनका अनुभव किया है, उसको उसने शब्दों में बाँध दिया है, उसको मुहाविरा कहते हैं।' ¹¹

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार- 'हिन्दी अथवा उर्दू में लक्षण अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं।' मुहावरे हमारी भाषा को समृद्ध करते हैं और अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाते हैं। हिन्दी अथवा खड़ी बोली की अपेक्षा जनपदीय भाषाएँ अवधी, भोजपुरी, ब्रज, बुन्देली, बघेली, मैथिली, राजस्थानी, निमाड़ी, छत्तीसगढ़ी आदि सभी अधिक मुहावरेदार हैं। इसी कारण ये सब भाषाएँ रोचक एवं लालित्य लिए हुए हैं और इनमें कहीं अधिक सम्प्रेषणीयता है। मुहावरों के इसी गुण के कारण सी.एफ. एंड्रूस जैसे विद्वान ने कहा है- 'किसी भाषा की सीखने से पहले उसके मुहावरों का अध्ययन करना आवश्यक है।' अंग्रेजी भाषा में मुहावरे के लिए 'इडियम' शब्द उपलब्ध है।

मुहावरे जनमानस के नित्य अनुभव व्यवहार एवं परिवेश से उत्पन्न होते हैं, इन्हीं की प्रेरणास्वरूप वस्तुओं-विचारों, अनुभवों आदि को व जिन थोड़े से प्रभावशाली शब्दों में बाँधकर प्रस्तुत करता है, वे ही सतत अभ्यास के फलस्वरूप मुहावरों का रूप ले लेते हैं। अनेक मुहावरे हिन्दी की सभी जनपदीय भाषाओं में

कमोवेश सामान्य रूप से पाये जाते हैं। अल्पशिक्षित या अशिक्षित ग्रामीणजनों की भाषा मुहावरेदार होने के कारण हिन्दी के प्रबुद्धजनों की भाषा से कहीं अधिक प्रभावशाली, रोचक एवं लोचदार होती है। बड़ी से बड़ी व जटिल से जटिल बात को ग्रामीणजन मुहावरों के द्वारा अत्यंत लघु रूप में प्रभावशाली ढंग से कह देते हैं। ग्रामीणजनों की प्रभावशाली कथागोई एवं वार्तालाप का प्रमुख कारण उनकी भाषा में मुहावरों का प्रयोग है। लोक कथाओं को उन्हीं की अपनी भाषा या बोली में यथावत यदि प्रस्तुत किया जाय तो नागरजनों की भाषा के अनावश्यक विस्तार से बचा जा सकता है। कम से कम शब्दों के प्रयोग से बात अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत की जा सकती है। छत्तीसगढ़ के ग्रामीणजन आपस में अत्यंत मुहावरेदार भाषा में बातें करते हैं। मुहावरा उस निश्चित पद समूह का नाम है, जो अपना साधारण अर्थ नहीं अपितु एक विशेष रूढ़ अर्थ प्रकट करता है। यहाँ लोकोक्तियों और मुहावरों के बीच के अंतर को भी स्पष्ट कर देना प्रासंगिक होगा। लोकोक्ति में विचार की पूर्णता या संपूर्ण विचार अभिव्यक्त होता है, वह किसी वाक्य का अंश न होकर अपने आपमें एक स्वतंत्र वाक्य होता है, जबकि मुहावरा स्वतंत्र न होकर किसी वाक्य का अंश होता है, जो वाक्य के भीतर ही प्रयुक्त होता है। मुहावरों के बिना भाषा उसी तरह फीकी लगती है, जैसे बिना नमक के भोजन। मुहावरों का एक गुण यह भी है कि उनके शब्दों को बदलना संभव नहीं है, क्योंकि वे अपने उस रूप में दीर्घ काल से प्रयुक्त होते हुए निश्चित स्वरूप में रूढ़ हो चुके हैं।

हिन्दी मुहावरों पर जो महत्त्वपूर्ण काम हुए हैं, उनमें हिन्दी मुहावरा कोश, हिन्दी मुहावरे,¹² मुहावरा अर्थप्रकाश, लोकोक्ति और मुहावरे आदि ग्रंथ प्रमुख हैं। भोजपुरी मुहावरों पर डॉ. उदयनारायण तिवारी का संकलन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, हिन्दी मुहावरे (रामदहिन मिश्र) के अतिरिक्त अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिओध' ने बोलचाल नामक ग्रंथ में कुछ मुहावरों का संग्रह तथा उन पर एक विद्वतापूर्ण टिप्पणी या आलेख है। हिन्दी शब्द सागर एवं हिन्दी विश्वकोश में भी कुछ-कुछ मुहावरे संग्रहित हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी द्वारा संकलित हिन्दी मुहावरा कोश हिन्दी मुहावरों का एक वृहत संकलन है। इधर डॉ. कपूर का हिन्दी मुहावरों पर एक अन्य ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। डॉक्टर ओमप्रकाश गुप्त का मुहावरों पर एक अत्यन्त विद्वतापूर्ण ग्रन्थ 'मुहावरा मीमांसा' के नाम से बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने प्रकाशित किया है, जिसमें मुहावरा साहित्य के सभी पक्षों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस ग्रंथ में अधिकांश भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त अनेक अंग्रेज

एवं फ्रांसीसी विद्वानों के विचारों का भी समावेश किया गया है।

हिन्दी की अलग-अलग जनपदीय भाषाओं पर काम करने वाले अध्येताओं ने भी अपने-अपने ग्रंथों में संबंधित क्षेत्र के कुछ न कुछ मुहावरे संकलित किये हैं।

कुछ विद्वानों ने लोकोक्ति के साथ ही मुहावरों का अध्ययन भी किया है। छत्तीसगढ़ी मुहावरों पर डॉ. रमेशचन्द्र मेहरोत्रा, भगवत प्रसाद साहू, रामानुज शर्मा एवं चितरंजन कर ने मिलकर छत्तीसगढ़ी मुहावरा कोश संपादित करके प्रकाशित किया है। अभी इस क्षेत्र में और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है। लोक साहित्य के अध्येताओं ने लोकवार्ता में कहावतों के संकलन और अध्ययन में जितनी रूचि दिखाई है, उसकी तुलना में मुहावरों के संकलन एवं अध्ययन में नहीं दिखाई। हिन्दी देश के विभिन्न जनपदों की भाषाओं में मुहावरों के विशाल भण्डार भरे पड़े हैं, जिन पर गंभीरतापूर्वक काम होना शेष है।

'मुहावरा' को परिभाषित करने का कार्य अनेक अध्येताओं ने किया है। श्री गया प्रसाद शुक्ल के मतानुसार—'किसी भाषा में दिखाई पड़ने वाली असाधारण शब्द योजना अथवा प्रयोग मुहाविरा कहलाता है।' आगे वह कहते हैं—'मुहाविरा वास्तव में लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वह वाक्यांश है, जो किसी एक ही बोली या लिखी जानेवाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो। लाठी खाना एक मुहाविरा है, क्योंकि इसमें 'खाना' शब्द अपने साधारण अर्थ में नहीं आया है। लाठी खाने की चीज नहीं है, पर बोलचाल में 'लाठी खाना' का अर्थ लाठी का प्रहार सहना लिया जाता है। ऐसे प्रयोगों को रोजमर्रा या बोलचाल भी कहते हैं।' श्री रामचन्द्र वर्मा ने अच्छी हिन्दी नामक अपने ग्रंथ में मुहावरा की परिभाषा इस प्रकार की है—'मुहावरा उस गठे हुए वाक्यांश को कहते हैं, जिसमें कुछ लक्षणात्मक अर्थ निकलता है और जिसकी गठन में किसी प्रकार का अन्तर होने पर वह लक्षणात्मक अर्थ नहीं निकल सकता।' श्री उदयनारायण तिवारी के मतानुसार 'हिन्दी, उर्दू में लक्षण अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही 'मुहावरा' कहते हैं। मुहावरे के अर्थ में अभिधेयार्थ से विलक्षणता होती है।'

संस्कृत भाषा में 'मुहावरा' का कोई पर्यायवाची शब्द उपलब्ध नहीं है। बी.एस. आप्टे ने अपने इंग्लिश संस्कृत कोश में इडियम का अर्थ वाक् रीति, वाक् पद्धति, वाक् संप्रदाय आदि बताया है। संस्कृत में मुहावरा शब्द का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं होने का

एक कारण यह भी है कि संस्कृत साहित्य में मुहावरों का बहुत कम प्रयोग हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार इसके दो कारण हैं—प्रथम कारण उस समय समाज का कार्य क्षेत्र इतना विस्तृत और विशिष्ट न था तथा दूसरा कारण आदर्श और साहित्यिक रूप की ओर साहित्यकारों की जितनी रूचि थी, उतनी वास्तविक और स्वाभाविक चरित्र चित्रण अथवा संवादों की नहीं।

मुहावरों की संरचना अथवा उनकी शब्द योजना के विषय में यहाँ थोड़ा प्रकाश डालना उचित होगा। मुहावरों के अध्येताओं का मत है कि दीर्घकाल से प्रयोग में आते रहने के कारण उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मुहावरे में न तो कोई कुछ जोड़ सकता है और न ही कुछ घटा सकता है और न ही उसको विभाजित करके कोई उसका प्रयोग ही कर सकता है। दीर्घ काल से उनके प्रयोग से उनका स्वरूप स्थिर और अपरिवर्तनीय हो गया है। डब्ल्यू. मेकमार्डी जो आक्सफोर्ड डिक्शनरी के निर्माता है, ने शब्द और मुहावरे (वर्ड्स एण्ड इडियम) में लिखा है—‘सिद्धान्ततः मुहावरे की शब्द योजना में कोई उलट-फेर या किसी प्रकार का लौट बदल नहीं हो सकता। उसमें गुथे हुए किसी शब्द का पर्यायी उसके स्थान में नहीं रखा जा सकता और न साधारणतया उसके शब्दानुक्रम में ही कोई हेर-फेर किया जा सकता है, शब्द अथवा उनके प्रबंध में किसी प्रकार का परिवर्तन करने के प्रयत्न से प्रायः मुहावरे का महत्त्व नष्ट हो जाता है अथवा वह निरर्थक हो जाता है। मुहावरेदार प्रयोगों में प्रायः अर्थ पूरक कुछ शब्द लुप्त हो जाते हैं, किन्तु इन लुप्त शब्दों की स्थान पूर्ति करने से मुहावरा खत्म हो जाता है।’¹³

अध्येता मुहावरे की उत्पत्ति के प्रमुख दो कारण मानते हैं, प्रथम मनुष्य की सभ्यता के विकासक्रम के साथ-साथ उसकी भाषा के विकास का होना। अपने विचारों, अपनी अनुभूतियों अपनी इच्छा आकांक्षाओं और अपनी कल्पना की भाषा के माध्यम से प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने हेतु उसके प्रयास और अभिव्यक्ति कौशल के फलस्वरूप मुहावरों का उद्भव एवं विकास संभव हुआ। इसमें प्रथम योगदान भाषा का था और दूसरा योगदान मनुष्य की बुद्धि एवं मनोविज्ञान का। मनुष्य के मनोविज्ञान के निर्माण में सबसे बड़ा कारक उसका परिवेश, उसका व्यवसाय, उसके उत्पादन के साधन, उत्पादन की जाने वाली वस्तुओं की वितरण प्रणाली, उत्पादन के साधनों का स्वामित्व आदि सभी कुछ शामिल है। मुहावरों की उत्पत्ति में श्रम एवं श्रमिक वर्ग का सर्वाधिक महत्त्व है। अनेक मुहावरे आमजनों के कार्य व्यापार, धंधों आदि

से उद्भूत हैं न कि शुद्ध साहित्यिक कल्पना से। भाषा के विकास में भी इन्हीं तत्त्वों ने महत्त्वपूर्ण कारकों का कार्य किया है। यहाँ ऐसे कुछ मुहावरों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा—भाड़ झोंकना, भट्टा बैठना, दाल नहीं गलना, दाल रोटी चल रही है, चूल्हा झोंकना, भाड़ में जाओ, आटे दाल का भाव, दिल पर छुरी चलाना, पट्टी पढ़ाना, एड़ियाँ घिसना, चप्पलें चटखाना, मन खट्टा होना, खट-पट होने, चूलें हिलाना, जड़ खोदना, धोबी पछाड़, लोहा पीटना, गधा कहीं का, खूँटे से बांधना, नींव रखना, चूँ-चपड़ करना, बक-झक करना, खून-पसीना एक करना, कमाना-खाना, कमर कसना, गुड़-गोबर करना, दूसरे के लिये गड्डा खोदना, गड़े मुर्दे उखाड़ना, घर उजाड़ना, घर बसाना, घर बनाना, गांठ पड़ना, चंडाल चौकड़ी, सिर चढ़ाना, कोई चारा नहीं होना, मुँह में लगाम लगाना, जबान देना, झक मारना, ढिंढोरा पीटना, डेरा डंडा गोल करना, ढील देना, नाथना, तेल निकलना, घानी का बैल, दुधारू गाय मानना, सिर धुनना, नंगानाच, नून तेल लकड़ी, नमक-मिर्च लगाना, पेट पालना, पेट मारना, फंदे में फंसना, लंदी-फंदी, घाट-घाट का पानी, बाल की खाल निकालना, चमड़ी उधेड़ना, मिट्टी में मिलाना, मटिया मेट होना, रोजी रोटी चलना आदि ऐसे अनेक मुहावरे हैं जिनका उद्भव लोक जीवन से हुआ है। वर्ड्स एण्ड इडियम्स के लेखक मेकार्डो ने भी कुछ-कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं—‘यह देखा गया है कि हमारे बहुत अधिक उपलक्षित और मुहावरेदार प्रयोग जन-साधारण के जीवन से संबंधित हैं, जीवन के साधारणतम व्यापारों के आधार पर उनकी उत्पत्ति हुई है। शब्दों की तरह मुहावरों के बनाने का श्रेय भी मुख्य रूप से अशिक्षित वर्ग को ही है और सर्वथा स्पष्ट और सजीव शब्दों की तरह से ही हमारे सर्वोत्तम मुहावरे भी किसी पुस्तकालय, विद्व-मंडली अथवा किसी उच्चकोटि के उपवन या नाट्य गृह से न आकर उद्योगशाला, रसोई घर, खेत तथा खलिहान से ही आते हैं।’

मुहावरों का प्रयोग संघर्षशील वर्ग जो अनेक प्रकार के उद्योग धंधों में लगा है, जो उत्पादन एवं निर्माण कार्य में संलग्न है, उसके द्वारा अधिक किया जाता है। इसके अलावा प्रेम सौहार्द्रपूर्ण वार्तालाप से संबंध रखने वाले मुहावरे बहुत कम मिलते हैं। जबकि उत्तेजना, निन्दा अथवा व्यंग करने वाले मुहावरों की सर्वत्र भरमार रहती है। मानव-स्वभाव की उच्च भावनाओं जैसे स्नेह, प्रेम, त्याग, परोपकार, सौहार्द्र जैसी भावनाओं की अभिव्यक्ति साफ और सीधी भाषा में होती है। मानव स्वभाव की उच्च भावनाओं से अधिक सजीव और चलते-फिरते मुहावरे नहीं बनते हैं तथा द्वेष, स्पर्धा और निन्दा से संबंध रखने वाले प्रयोग संख्या में भी बहुत अधिक

हैं और भाव व्यंजना में भी। रोज मरने के व्यवहार में भी हम देखते हैं कि लड़ाई-झगड़े के समय आवेश या क्रोधित होने पर लोग आपस में वार्तालाप में कहीं अधिक मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करते हैं। तैश में आने पर भाषा को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिये ऐसा किया जाता है। रौब गाँठना, हड़कना, हावी होना, भारी पड़ना, कब्र खोदना, धरती चटाना, ऐसी की तैसी करना, जैसे मुहावरे क्रोध की अभिव्यक्ति से ही उत्पन्न हुये हैं। ईर्ष्या-द्वेष के कारण भी अनेक प्रभावपूर्ण मुहावरे बने हैं, जैसे जल-भुनकर राख होना, रस्सी जल गई पर ऐंठन नहीं गई, जले पर नमक छिड़कना, कान काटना, नकटा बनना, मुँह बिचकाना आदि।

मुहावरों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न कार्य व्यापार के विशिष्ट क्षेत्रों से होती है, जैसे लोहारी, बढईगिरी, वस्त्र कताई-बुनाई, खेती-बाड़ी, भवन निर्माण आदि काम धंधों से। 'जब समुदाय के कार्य क्षेत्र में पूरी विशिष्टता आ जाती है, तब नित्य-प्रति के व्यवहार में भावों की सम्यक् व्यंजना के लिये भिन्न-भिन्न वस्तुओं, व्यापारों और प्राणियों के रूप, रंग, कार्य इत्यादि के आधार पर विलक्षण शब्द योजनाओं की (मुहावरों की) सृष्टि द्रुत गति से होने लगती है। आरंभ में इन मुहावरों का प्रयोग समुदाय विशेष के ही कार्य क्षेत्र में सीमित रहता है, किन्तु कालान्तर में ये व्यापक होकर सार्वत्रिक प्रयोग के शब्द हो जाते हैं। आधुनिक यूरोपीय भाषाओं, विशेषतः अंग्रेजी व फ्रेंच में जो मुहावरे मिलते हैं, उनके भिन्न-भिन्न समुदायों जैसे नाविक, सैनिक, कृषक आदि के शब्द योजना कौशल का परिणाम है।' ¹⁴

मुहावरों की उत्पत्ति के वैयक्तिक एवं सामाजिक कारण भी हो सकते हैं। 'मनुष्य के कार्यक्षेत्र विस्तृत हैं, उन्हीं के अनुरूप उसके मानसिक भाव भी अनन्त हैं। घटना और कार्यकारण परम्परा से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मुहावरों की भी। प्रायः प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं, जब वह अपने मन के भावों, विचारों और कल्पनाओं को किन्हीं विशेष कारणों से सीधे-सीधे न व्यक्त करके शारीरिक चेष्टाओं, अस्पष्ट ध्वनियों अथवा किन्हीं दूसरे संकेतों या व्यंग्यों द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी वह कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में विवृत करने का उद्योग करता है, जिनके अधिक लम्बे-चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न-भिन्न करना उसे अभीष्ट लगता है। प्रायः हास-परिहास, घृणा, आवेश, क्रोध, उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्ति के अनुकूल वाक्य-योजना होती देखी जाती है। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का भी वाक्य विन्यास पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है।' ¹⁵ एफ. डब्ल्यू. फरार तो ऐसी परिस्थिति

में मुहावरेदार प्रयोगों के न सूझने पर चुप रहना ही अधिक अच्छा समझते हैं। आप लिखते हैं- '.....और बहुत से अवसरों पर यदि हम मुहावरेदार अथवा लाक्षणिक प्रयोगों की सहायता न प्राप्त कर सकें, तो अपने मनोभावों को अव्यक्त रखने में ही हमें संतोष मानना चाहिये।' ¹⁶

उपरोक्त कथन से भाषा में मुहावरों का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। मुहावरे भाषा को अलंकारित करते हैं और अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाते हैं।

छत्तीसगढ़ी भाषा भी काफी मुहावरेदार भाषा है। ग्रामीणजनों के वार्तालाप में मुहावरों का भरपूर प्रयोग देखने को मिलता है। छत्तीसगढ़ी मुहावरों के व्यापक संकलन का कार्य अभी होना बाकी है। डॉ. रमेशचन्द्र मेहरोत्रा और उनके सहयोगियों द्वारा संकलित व सम्पादित छत्तीसगढ़ी मुहावर कोश इस दिशा में एक आरंभिक कार्य है। अभी बड़े पैमाने पर मुहावरों के संकलन की आवश्यकता है। इस कार्य में ग्रामीण अंचल से आने वाले छात्र-छात्राओं को तथा ग्रामीण पाठशालाओं में कार्यरत अध्यापक अध्यापिकाओं को लगाकर इस कार्य को किया जा सकता है। लम्बे समय तक अनेक लोग जब इस कार्य में लगेंगे, तब कहीं जाकर यह कार्य सम्पन्न हो पायेगा।

छत्तीसगढ़ी मुहावरों में अनेक मुहावरे तो ऐसे हैं, जो बघेली और अवधी में भी समान रूप से थोड़े से उच्चारण के अन्तर से विद्यमान हैं। ऐसे भी अनेक मुहावरे छत्तीसगढ़ी भाषा में मिलते हैं, जो उत्तर की दूसरी जनपदीय भाषाओं से सहज ही अपना लिये गये हैं। मैं समझ बूझकर भाषा और बोलियों दोनों के लिये ही भाषा शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। भाषा और बोलियों के बीच वर्तमान समय में प्रचलित या कहिये स्थापित अवधारणा या परिभाषा मुझे तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती। ब्रजभाषा कभी भाषा मानी जाती थी, जिसमें अटूट साहित्य की सर्जना हुई। वह अब बोली मानी जाने लगी है और खड़ी बोली जो कभी एक छोटे से क्षेत्र विशेष की बोली थी, वह अब भाषा मानी जाने लगी है। अवधी ने तुलसीदास, ब्रजभाषा ने सूरदास व अष्टछाप के अनाकवि तथा मैथिल ने विद्यापति जैसे महान कवि दिये, वे सब भाषाएँ अब बोलियाँ बन गई हैं। चाहे भोजपुरी, मैथिल, ब्रज, अवधी, बघेली, राजस्थानी (मेवाड़ी, हाड़ोती, मारवाड़ी, मेवाती आदि) और छत्तीसगढ़ी को बोलियाँ माना जाये या भाषा, परन्तु उनमें प्रचुर मात्रा में लोक साहित्य ही नहीं, वरन् परिनिष्ठित साहित्य भी विद्यमान है।

छत्तीसगढ़ की भौगोलिक स्थिति भारत के हृदय स्थल के समान है। यह बघेली, बुन्देली, कोशली, नगपुरी, सरगुजिया, लरिया, हल्बी, भतरी, मराठी, उड़िया, तेलुगु आदि भाषाई क्षेत्रों से घिरा हुआ है। गोंडी भाषा बोलने वालों की भी सर्वाधिक संख्या इस क्षेत्र में है। इन सभी भाषा-बोलियों का प्रभाव छत्तीसगढ़ी पर पड़ा है। देश के हृदय स्थल में स्थित होने के कारण अत्यन्त प्राचीन काल से ही देश के विभिन्न क्षेत्रों से लोग यहाँ आकर बसते रहे हैं। वाकाटक शासकों की मातृका देवी तेलगिन माता के नाम से और भ्रमणशील बन्जारों की देवी यहाँ बनजारिन माता के नाम से यहाँ के देवलोक में प्रतिष्ठित हो चुकी है। यहाँ देश के सभी प्रदेशों के लोग काफी बड़ी संख्या में दीर्घकाल से बसे हुये हैं। देश की स्वतन्त्रता के समय विभाजन के परिणाम स्वरूप सिन्ध एवं पंजाब से भी बहुत बड़ी संख्या में लोग यहाँ आकर बस गए। यहाँ बिहारी, उड़िया, मराठी, तेलुगू, तमिल, कन्नड़, मलयाली, बंगाली, गुजराती, राजस्थानी, हरियाणी, उत्तरप्रदेश, प्रदेशी की काफी बड़ी आबादी है। इन सभी अंचलों के लोगों की भाषा और संस्कृति का कुछ न कुछ प्रभाव छत्तीसगढ़ की भाषा और संस्कृति पर पड़ा है। इन सभी कारणों से छत्तीसगढ़ी भाषा और संस्कृति समृद्ध हुई है और उसमें बाह्य सांस्कृतिक तत्वों को आत्मसात करने की महान उदारता का विकास हुआ है। छत्तीसगढ़ में प्रचलित मुहावरो में अनेक मुहावरें उपरोक्त कारणों से भी अन्य भाषाओं से यहाँ आकर लोक में सम्पृक्त हो गये हैं। छत्तीसगढ़ी मुहावरों को संग्रह करते वक्त ऐसे मुहावरों को भी विशुद्धतावादी दृष्टिकोण के पूर्वाग्रह से बचते हुए छूआ-छूत का परित्याग कर ग्रहण किया जाना तर्क संगत होगा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस क्षेत्र का तीव्र गति से आर्थिक एवं औद्योगिक विकास हुआ है। आर्थिक विकास के नए-नए सोपानों के साथ-साथ शैक्षणिक विकास भी हुआ है। नये-नये उद्योग धंधे लगे हैं। इन सभी तत्वों का भाषा के विकास पर भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। छत्तीसगढ़ी का वर्तमान स्वरूप आज से पचास या सौ वर्ष पूर्व की छत्तीसगढ़ी से कहीं बहुत अधिक विकसित एवं समृद्ध है। यहाँ की भाषा से कुछ चुने हुए मुहावरे यहाँ इसी उद्देश्य एवं दृष्टिकोण से उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

- अँगठी धर के घेघा धरना-उँगली पकड़ के गरदन पकड़ना।
- टिप्पणी-इससे मिलता-जुलता मुहावरा हिन्दी की अन्य सहोदर भाषाओं में 'उँगली पकड़कर पहुँचा पकड़ना'

प्रचलित है।

- अँगठी चाबना-आश्चर्य करना।
- अँगना के गोठ खोल न जाना-घर की बात सार्वजनिक होना।
- अँगरी देखाना-आरोप लगाना।
- अंडा सेना-घर में निठले बैठना।
- अंधियार म बरछी फेंकना-अंधेरे में बरछी फेंकना।
- टिप्पणी-हिन्दी में 'अंधेरे में तीर चलाना' प्रचलित है।
- अँगरी म नचाना-वश में करके इशारे पर नचाना।
- टिप्पणी-हिन्दी में 'उँगुली पर नचाना' मुहावरा प्रचलित है।
- अकरस के जोताई-भविष्य की तैयारी।
- अड़हा के कान नाक भरना-मूर्ख से सर खपाना।
- अपन घर शेर-अपने घर में शेर अर्थात् अपने प्रभाव क्षेत्र में अकड़ दिखाना।
- अपर रद्दा रेंगना-सीधे रास्ते चलना अर्थात् दूसरों के मामले में रूचि न लेना।
- टिप्पणी-हिन्दी में 'अपने काम से काम बाकी से जयराम' प्रचलित है।
- अम्मट होना-संबंधों में खटास आना।
- आँखी मटकाना-इतराना।
- आँखी म झूलै-स्मृति में रहना।
- आँखी फेरना-विमुख होना।
- आँखी के काजर-प्रिय पात्र।
- आँखी गुड़रना-आँख तरेरना, क्रोध करना।
- आँखी चकचकाना-आँखे चौंधियाना, आश्चर्य चकित होना।
- आँखी फरकना-शुभ या अपशुभ।
- आँखी फूटना-दिखाई न देना, अनेदखा करना।
- आँख में धुरा-धोखा देना।
- आँखी भरना-भावुक होना, आँखों में आँसू आना।
- आँखी लगना-नींद आ जाना।
- आगी उगलना-क्रोधित होना।
- आगी बरसना-तेज गर्मी पड़ना।
- आगी म घी-क्रोधित व्यक्ति को और उत्तेजित करना, उकसाने

- की प्रवृत्ति।
- आगी मूतना-उग्र होकर उपद्रव करना।
 - आगू-पीछू घूमना-चापलूसी करना।
 - आन के तान-उटपटांग।
 - इहाँ खान उहाँ पीना-हड़बड़ी।
 - ऊँच नीच-भला-बुरा।
 - एक खेत के ढेला होना-एक समान होना।
 - एक ला दु बताना-बढ़ा-चढ़ा कर बताना।
 - कटुआ के बइला-काठ का बैल, मूर्ख।
 - टिप्पणी-हिन्दी में इसके सदृश 'काठ का उल्लू' प्रचलित है।
 - करधन टूटना-हिम्मत हारना, मनोबल टूटना।
 - करनी के फल-कर्म का फल।
 - काँव झाँव होना-कहासुनी, तकरार।
 - काम के न कौड़ी के-निरर्थक, अनुपयोगी।
 - किंदर गुच्छी मारना-भटक कर लौटना।
 - किरिया पारना-कसम दिलाना।
 - कुकुर नी पुछै-उपेक्षित होना।
 - कूल्हा मटकाना-नखरे करना।
 - कैंची कस जबान-कड़वी बोली, कर्कश बोली।
 - कोरा म लेना-गोद में लेना।
 - कोरा धरना-मातृत्व प्राप्त करना।
 - खटिया धरना-खाट पकड़ना, अस्वस्थ होना।
 - खटिया निकालना-मृत्यु होना।
 - खून के पानी करना-अत्याधिक परिश्रम करना।
 - टिप्पणी-हिन्दी में 'खून-पसीना एक करना' प्रचलित है।
 - गंगाजल उठाना-गंगा की सौँगध खाना।
 - गंगा नहाना-पाप धोना, निवृत्त होना।
 - गजभर छाती-गर्व होना (करना)।
 - गाज गिरना-बिजली गिरना, विपत्ति आना।
 - गोड़ ऊपर मूड़करी-काम बिगाड़ना।
 - गोड़ के धुरा-तुच्छ, त्याज्य।
 - गोड़ मा आखी-सावधानी बरतना।
 - गोड़ मा नटई बाँधना-वश में रखना।
 - गोड़ मा मुड़ी देना-टाँगों के बीच सिर देना, दण्डित करना।
 - घर के घुघुवा-घर का उल्लू, घर में घुसे रहना, घर घुसरा।
 - चरित्तर करना-नाटक करना, ढोंग करना।
 - चाँउर मारना-टोना-टोटका करना।
 - चीरई चाँ न कउआ काँ-वीरान, सुनसान।
 - चीरइ फँदोना-चिड़िया फाँसना, अपने चंगुल में फँसाना।
 - चूरी उतरना, चूरी जर्जाना-विधवा होना
 - चूरी पहेरना-दूसरा पति बनाना।
 - चौरंग होना-बरबाद होना।
 - चौरंग म हाथ होना-तुड्डी पर हाथ रखना, चिंतित होना, सोच में पड़ना।
 - छाती जुरोना-छाती ठंडी होना, मनस्ताप कम होना।
 - छाती छोलना-छाती छिलना, कष्ट देना।
 - छाती म दार दरना-छाती पर दाल दलना।
 - टिप्पणी-हिन्दी में 'छाती पर मूँग दलना' समकक्ष मुहावरा विद्यमान है।
 - छाती पीटना-क्षोभ व दुःख प्रकट करना।
 - छान मारना-अच्छी तरह खोज-बीन कर डालना।
 - छिटक जाना-अपनों से बिछुड़ जाना।
 - छुट्टी होना-मुक्त होना, कार्यमुक्त होना, नौकरी से निकाला जाना।
 - जनम गंवाना-जन्म व्यर्थ गँवाना, जीवन व्यर्थ गुजारना।
 - जमलोक जाना-मृत्यु होना।
 - जर मूल खनना-जड़ मूल से नष्ट करना। पूर्ण रूप से नष्ट करना।
 - जाए के बेना-मृत्यु के समय में।
 - जान बचिस और जान बचाना-पिण्ड छुड़ाना।
 - जान पर खेलना-प्राण जोखिम में डालना।
 - जीभ ल लगाम लगाना-शांत रहना, चुप रहना।
 - जी सुखाना-निराश होना, भयभीत होना।
 - झक मारना-व्यर्थ में समय नष्ट करना। हिन्दी में भी इसी रूप में उपलब्ध।
 - झिकझिक करना-झंझट करना।

- टरकना या टरक जाना या टरक लेना-मौके से चले जाना, खिसक जाना ।
- टांग तरि ले निकलना-टाँगों के नीचे से निकलना पराजय स्वीकार करना, आधिपत्य स्वीकार करके अपमान सहना ।
- टीम टाम से रहना-ठाठ-बाठ से रहना ।
- टीम-टाम करना-अपनी हैसियत से अधिक प्रदर्शन करना ।
- टुकुर टुकुर देखना-याचना भरी निगाह से देखना ।
- टोंचा मारना-व्यंग्य कसना ।
- ठन-ठन गोपाल-अत्यन्त निर्धन ।
- ठट्टा करना-हँसी मजाक करना, चुहल बाजी करना ।
- ठठाकर हँसना-ठहाका लगाकर हँसना ।
- ठस दिमाग-मूर्ख ।
- ठस्का मारना-अपनी हैसियत का रौब दिखाना ।
- ठाठ पड़ा रह जाना-सांसारिक धन संपदा छोड़कर प्राणत्याग करना । छत्तीसगढ़ में कबीर पंथियों में दार्शनिक विचार के रूप में बहुत अधिक प्रयुक्त मुहावरा ।
- ठिकाने लगाना-प्रतिशोध में प्रताड़ित करना, हत्या करना ।
- ठोकर लगाना-नुकसान उठाना ।
- डंगनी होना-लकड़ी की तरह दुर्बल होना ।
- डंड देना-जुर्माना देना, दंड के अर्थ में सामाजिक पंचायत आदि में प्रयुक्त होने वाला मुहावरा ।
- डाढ़ा कुचरना-दांत तोड़ना, दण्ड देने के रूप में प्रयोग किया जाने वाला मुहावरा ।
- डेरा डंडा उसालना या डेरा डंडा उखाड़ना-सामान सहित अन्य स्थान पर जाना । बोरिया बिस्तर बांधना भी समानार्थी मुहावरा ।
- डेरी हाथ के खेल-बांये हाथ का खेल, आसान काम ।
- डेहरी खूँदना, डेहरी फांदना-घर के अन्दर प्रवेश करना ।
- डंका बाजना-प्रसिद्धि प्राप्त करना ।
- डांवाडोल होना-अनिश्चय की स्थिति में पड़ जाना ।
- डींग मारना-दंभपूर्ण बातें करना ।
- डूबत ला तिनका के सहारा-डूबते को तिनके का सहारा ।
- ढोल पीटना-प्रचार करना ।
- तड़ाक-फड़ाक करना-अतिशीघ्र कार्य करना ।
- तिड़ी-बिड़ी होना-तितर-बितर होना ।
- तकदीर सीधी होना-भाग्यशाली होना ।
- तनमन लगाना-पूरी शक्ति लगाकर कार्य करना ।
- तारा बूड़ना (तारा डूबना)-अच्छे भाग्य का समय चला जाना ।
- तारा टूटना-अशुभ संकेत ।
- दिन म तारा देखना-दिवा स्वप्न ।
- ताव खाना-उत्तेजित होना ।
- तिल ले ताड़ बनाना-बातों को अतिरंजित करके प्रस्तुत करना ।
- तू-तू मैं-मैं होना-झगड़ा लड़ाई होना ।
- थपरा देना-थप्पड़ मारना ।
- थाली लोटा धरके-थाली लोटा लेकर ।
- थू-थू होना-बदनामी होना ।
- थोथना उरमाना-मुँह लटकाना ।
- दबका मारना-दबदबा कायम करना, रौब जमाना ।
- दम मारना-पूर्ण शक्ति से प्रयास करना, विश्राम करना ।
- दम निकला-मृत्यु होना ।
- दम लगाना-गाँजा पीना ।
- दाँत कटी रोटी होना-गहरी मित्रता होना ।
- दाँत निपोरना-खिसियाना ।
- दाँत पीसना-क्रोधित होना ।
- दिल खोलकर कहना-बिना किसी संकोच के कहना ।
- दिल लगाना-मन लगाना ।
- दिल टूटना-निराश होना ।
- दया मया धरना-प्रेम प्रीति बनाये रखना ।
- दूध के मांछी-दूध की मक्खी ।
- दूध के दांत-बालपन, अपरिपक्व ।
- दुम दबाकर भागना-डर कर भागना ।
- दुम हिलाना-चापलूसी करना ।
- दुधमुँहा-दूध पीने वाला बालक ।
- दो कौड़ी का-व्यर्थ, तुच्छ, अनुपयोगी ।
- दिन बहुरना-अच्छा समय आना, भाग्यशाली समय ।

- देव के न बाम्हन के-अनुपयोगी, व्यर्थ।
- दुहना-दूध दुहना, लाभ उठाना, शोषण करना।
- धुकुर-धुकुर करना-दिल धक-धक करना, घबराहट होना।
- धकियाना-धक्के मारकर बाहर करना।
- धक्का धक्की करना-धक्का मुक्की करना।
- धज्जी उड़ाना-निंदा करना, दुर्दशा करना।
- धनी धोरी-मालिक।
- धूप में बाल पकाना-अनुभवी होना।
- धोबी के कुकुर-कहीं का न होना, बेसहारा।
- धुरी बिगाड़ देना-दुर्दशा करना।
- नंगरा नाचना (नंगा नाच)-अश्लील हरकत करना।
- नकटा-बेशर्म, निर्लज्ज।
- नकलची-किसी व्यक्ति के हाव भाव बनाकर उसे हँसी का पात्र बनाने वाला।
- नून वेल लकड़ी के फिकर करना-घर गृहस्थी चलाने की चिन्ता करना।
- नंगा करना-बेइज्जत करना।
- नजर लगाना-बुरी दृष्टि पड़ना।
- नाक कटना-अपमानित होना।
- नाक चढ़ाना-घृणा करना, किसी वस्तु को नापसन्द करना।
- नाम म बट्टा लगाना-बदनामी होना।
- नीच ऊँच समझना-भला बुरा समझना।
- नोन मिरिच लगाना-नमक मिर्च लगाना, बात को बढ़ा-चढ़ाकर कहना, अतिरंजना करना।
- पंच लकड़िया देना-दाह संस्कार में लकड़ी के पाँच टुकड़े डालकर मृतक को श्रद्धांजलि प्रदान करना।
- पंचायत जोड़ना-सामाजिक पंचायत की बैठक बुलाना।
- पंच परमेसर-पंच परमेश्वर। सामाजिक पंचायत में पांच पंचों के सम्मान में संबोधन। उनका निर्णय इश्वरीय न्याय माना जाता है।
- पटपट ले-झटपट से, तुरन्त से।
- पट पटाना-सूखजाना (वृक्षादि के लिये)।
- पटखनी देना-पराजित कर देना, धराशायी कर देना।
- पट्टी पढ़ाना-छल-छद्म सिखाना-बहकाना।
- पट्टी पढ़ना-छल-दम सिखाना।
- पथरा के देवता-निष्ठुर।
- पल्ला झाड़ना-पीछा छुड़ाना।
- पथरा के छाती होना-पत्थर दिल होना, कठोर हृदय होना।
- पय डगरी करना-पगडंडी बनाना, पगडंडी पर चलना।
- परता परना-लाभ दायक होना।
- पसीना गारना-पसीने की कमाई, परिश्रम द्वारा अर्जित।
- पेट की बात-गोपनीय बात।
- पेट पालना-आजीविका चलाना, पालन-पोषण करना।
- पेट भर देना-अनैतिक संबंध में गर्भवती बना देना।
- पोटार लेना-गले लगाना।
- पार पाना-सफल होना, मुकाबला कर पाना।
- पार लगाना-पार उतरना, कार्य पूर्ण होना।
- पाला पड़ना-किसी शक्तिशाली व्यक्ति से मुकाबला होना।
- पिंड छुड़ाना-पीछा छुड़ाना।
- पीठ पीछे बातें करना-चुगली करना।
- पुराना पापी (पुराना घाघ)-अनुभवी।
- बिन पेंदी के लोटा-मुरादाबादी लोटा, अवसरवादी, अस्थिर मस्तिष्क।
- फौत होना-मृत्यु होना।
- फरजाना-पालतू पशु का गर्भधारण करना।
- फुटहा आँखी नहीं सुहाना-फूटी आँख नहीं सुहाना, नापसन्द करना।
- फंदा म फंसना-दूसरे व्यक्ति द्वारा रचे षडयन्त्र में फंसना, धोखे में पड़ना, दूसरे व्यक्ति के वशीभूत होना।
- फूँक-फूँक के पाँव मढ़ाना-सावधानी बरतना।
- फोकट छाप होना-मुफ्त में चीजे पाने की चाह रखने वाला।
- बकर-बकर करना-बक-बक करना, व्यर्थ ही अधिक बोलना, बातूनी होना।
- बजार करना-हाट बाजार में खरीद फरोख्त करना।
- बड़-बड़ करना-बड़-बड़ाना, बकवाद करना।
- बड़बनवा होना-बातूनी होना।
- बड़ बोला होना-बड़ी-बड़ी बातें करने वाला होना।

- बने-बने-सब कुछ शुभ होना, सब ठीक-ठाक होना।
- बादर टोक के आना (आसमान से तारे तोड़ कर लाना)-दुर्लभ वस्तु लेकर आना।
- बादर ले गिरके रूख म अरझना-आसमान से गिरा खजूर में अटकता है।
- बेंदरा के लड़वा-लालच में फंसना।
- बेंदरा के घुड़की-डराने के लिये दी जाने वाली घुड़की जो कार्य रूप में परिणित नहीं की जाती, (बंदर घुड़की)
- बात गाँठियाना-बात को गाँठ में बांधना, बात को महत्त्व देना।
- बोहनी होना-दिवस की प्रथम बिक्री।
- बौरा जाना-पगला जाना।
- बोलती बंद करना-धमका कर चुप करना।
- भाग जागना-अच्छा समय आना-सुअवसर मिलना।
- भोरका म गिरना-नुकसान कर बैठना।
- भंडाफोड़-भेद खोलना।
- भांडा फूटना-भेद खुलना।
- भरा-पूरा-सब प्रकार से सम्पन्न।
- भाड़ झोंकना-व्यर्थ के कार्य करना।
- भाड़ में डालना-नष्ट करना, बर्बाद करना।
- भाव खाना-ऐंठना, स्वयं के महत्त्व को समझकर अकड़ दिखाना।
- भुरता बनाना-ठुकाई पिटाई कर देना।
- भेड़िया घसान-अंधा अनुकरण।
- भैंस के आगू बीन बजाना-अज्ञानी के आगे ज्ञान बघारना।
- मन म फरक आना-प्रेमपूर्ण संबंधों में अन्तर आना।
- मन फटना-मोह भंग होना।
- माटी गोटी होना-अनुपयोगी होना, व्यर्थ होना।
- माटी म मिलना-मृत्यु होना।
- मिठलबरा-मीठी-मीठी किन्तु झूठी बातें करने वाला, चापलूस।
- मुँह करिया करवाना-मुँह काला करवाना, कलंकित होना।
- मुँह मारना-दो व्यक्तियों के वार्तालाप के बीच में बोलना।
- मुँह मोड़ना-विमुख हो जाना।
- मूड़ मुड़ाना-नुकसान उठाना।
- मोहा जाना-मोहित हो जाना।
- मत्था टेकना-नत मस्तक होना, माथा नवाना।
- मरे न मुटाय-न तो मरता ही है न मोटा ही होता है। यथावत बने रहना।
- मातना-भूमि का उर्वर हो जाना।
- माटी के मोल-सस्ता सामान।
- अपन मुँह मियाँ मिट्टू-आत्म प्रशंसा करना।
- रंच कनिक या रंच कन-जरा सा, थोड़ा सा।
- रबक जाना-कीचड़ में धंस जाना, फँस जाना, अटक जाना।
- रिसाना, रिसखाना-क्रोधित होना, अप्रसन्न होना, रूठना।
- रंग रेलवा-रंगीला, रंगीली तबियत वाला।
- लकर धकर करना-जल्दबाजी करना, हड़बड़ी करना।
- लट्टे-पट्टे-किसी कदर, किसी तरह।
- प्रयोग-लट्टे-पट्टे गाड़ी अमरा पाये हवँ। किसी तरह से गाड़ी पकड़ पाया।
- लपर लपर करना-बक-बक करना, बेवजह अधिक बोलना।
- लपरहा-झूठ बोलने वाला।
- बखत-बखत के बात-समय-समय की बात।
- बनी बूती करना-मजदूरी करना।
- संवागा करना-इन्तजाम करना, आवश्यक सामान जुटाना।
- सटक जाना-खिसक जाना।
- सुरता करना-याद करना।
- सेर के सवासेर होना शेर से सवा शेर होना, हावी होना, भारी पड़ना।
- सोन असन तउलना-एक दम सही तौलना।
- ढपोर शंख होना-मूर्ख होना।
- शान बघारना-डींग हाँकना।
- साँप ला दूध पिलाना-दुश्मन को बढ़ावा देना।
- साँप छहूँदर की गति होना-असमंजस में पड़ना।
- सिट्टी-पिट्टी भूलना-डर से होश खो बैठना।
- सिर खपाना-किसी पर अत्याधिक चिन्तन मनन करना।
- सिर धुनना-सिर पीटना, अफसोस करना।

- सोन म सुगंध होना-सुन्दर और श्रेष्ठ होना। सोने की तरह सुन्दर और उसमें सुगंध होना।
- सोन म सुहागा-सोने में और अधिक आभा या चमक होना।
- हंडिया उपास परना-भोजन न बनना।
- हंसिया असन सोझ होना (व्यंग्म में)-हंसिए की भाँति सीधा होना।
- हर्ग लागे न फिटकरी-मुफ्त में काम हो जाना।
- हांत गंधाना-अपयश लेना।
- हाँसी खेल न होना-आसान कार्य नहीं होना।
- हड़बड़ी करना-जल्दबाजी करना।
- हलाकान होना-परेशान होना।
- हँसा उड़ना-मृत्यु के उपरान्त आत्मा का शरीर त्याग देना। कबीर पंथी व सतनामी समाज में यह उपमा बहुधा प्रयुक्त होती है।
- हो हल्ला मचाना-शोर करना, हल्ला करना।
- हाँसी ठट्टा करना-हाँसी मजाक करना।

संदर्भ -

1. लोक साहित्य की भूमिका/पृष्ठ 160-168/कृष्णदेव उपाध्याय।
2. कुमाऊँनी भाषाओं और उसका साहित्य/पृष्ठ 334
3. छत्तीसगढ़ी, हलबी, भतरी बोलियों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन/पृष्ठ 349-357
4. द स्टडी ऑफ फोकलोर/एल.न./पृष्ठ 187
5. अवधी का लोक साहित्य/डॉ. सरोजनी सरोज
6. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल
7. इनसाक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन्स एण्ड एथिक्स
8. भोजपुरी लोकोक्तियाँ/डॉ. शशि शेखर तिवारी
9. राजस्थानी कहावतों की भूमिका/सुनीति कुमार चाटुर्ज्या।
10. भोजपुरी लोकोक्तियाँ/डॉ. शशि शेखर तिवारी
11. राजस्थानी कहावतें
12. रामदहिन मिश्र, हिन्दी मुहावरें : ब्रह्मस्वरूप दिनकर
13. मुहावरा भीमांसा से उद्घृत/पृष्ठ-51
14. हिन्दी मुहावरे, दो शब्द, हरि पौध
15. मुहावरा भीमांसा/डॉ. ओम प्रकाश गुप्त
16. ओरिजन ऑफ लैंग्वेज/एफ. डब्ल्यू. फरार

उत्तरांचल में भवन निर्माण कला

डॉ. दिवा भट्ट / डॉ. जे.एस.खर्कवाल

आज के युग में भवन केवल आवासीय सुरक्षा के ही परिचायक नहीं हैं, अपितु वे कला, संस्कृति, सम्पन्नता और सामाजिकता के परिचायक भी बन गये हैं, किन्तु मनुष्य की भवन-निर्माण तकनीकी का विकास सर्वप्रथम सुरक्षा की आवश्यकता से आरम्भ हुआ। मनुष्य का प्रथम आश्रयस्थल वृक्षों की शाखाओं पर बना, फिर गुफा-कन्दराएँ। उसके पश्चात् उसने धीरे-धीरे लकड़ी, घास-फूस और पत्तियों से छप्परों के घर बनाये, तदनन्तर पत्थरों के। हजारों वर्षों के विकास क्रम में जैसे-जैसे मानव-सभ्यता और संस्कृति का विकास होता गया, वैसे-वैसे उसके आश्रयस्थल पर अर्थात् भवन निर्माण कला का भी विकास-परिष्कार होता गया।

उत्तरांचल में मानव-आवास के रूप में प्रयुक्त लगभग प्रत्येक युग के अवशेष और उदाहरण आज भी उपस्थित हैं। यहाँ के विविध भाँति के आवासों तथा ऐतिहासिक प्रमाणों में भवन-निर्माण कला के विकास के प्रायः प्रत्येक स्तर का इतिहास सुरक्षित है। पाषाणकालीन मानव ने गुफाओं, कन्दराओं तथा ऊँची चट्टानों को अपना निवास बनाया था, जहाँ वह स्वयं को हिंसक पशुओं से सुरक्षित रखते हुए अपने शिकार का भी निरीक्षण कर सकता था। इतिहासकारों ने लखु उड्यार, फड़कानौली तथा फलसीमा (अल्मोड़ा) एवं गोर्खा वड्यार (चमोली) में ऐसी गुफाएँ तथा शैलाश्रय खोजे हैं, जिनमें पाषाणकाल के (ई. पू. 3500 से 1400) मानव द्वारा निर्मित चित्र अंकित हैं। देवीधुरा, मलारी, ग्वालदम तथा पश्चिमी रामगंगा के किनारे नौला-जैनल में मिले शवागाह, कपमाक्स तथा मृद्भाण्ड पाषाण कालीन शिल्प का परिचय कराते हैं।

ऐसा माना जाता है कि मानव के स्व-निर्मित आवासों की शुरुआत घास-फूस और लकड़ी से निर्मित झोपड़ियों से हुई। प्रारम्भिक काल से ऐसे आवासों के अवशेष मिलना असंभव है, फिर भी कुमाऊँ के सीमांत क्षेत्र की 'राजी' तथा 'बनरावत' नामक जनजाति के वर्तमान युग में भी गुफाओं एवं झोपड़ियों में रहने के उदाहरण मनुष्य के प्राथमिक आवासों के प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ऐसी झोपड़ियाँ देश के अन्य आदिवासी क्षेत्रों में भी मिलती हैं। कुमाऊँ के बनरौत अब सभ्य समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित होते जा रहे हैं और उनके अधिकांश घर पत्थरों से बनने लगे हैं।

उत्तरांचल में पक्के घरों के प्राचीनतम प्रमाणों के उल्लेख कुणिन्द काल (लगभग ई.पू. 200 से 200 ई. तक) के मिलते हैं। तदुपरान्त कत्यूरी राजवंश के काल के पक्के भवनों, महलों तथा मंदिरों के उल्लेख मिलते हैं। ऐतिहासिक युग का एक प्रमाण भरतपुर-ऋषिकेश के उत्खनन से प्राप्त एक प्राचीन अवशेष है। इसमें समकोण काटती हुई दीवारों तथा कमरों के फलक दिखाई देते हैं। (नौटियाल एवं सहयोगी, 1989) इतिहासकारों के अनुसार इस क्षेत्र में मिली चौकोर ईंटें ई.पू. चौथी सदी से छठी सदी के बीच की हैं। छठी से तेरहवीं सदी के मध्य यहाँ उत्कृष्ट मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ। हेमवत शैली की विभिन्न उप भातियों वाली ये कृतियाँ सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत और समृद्ध समाज का परिचय देती हैं। तत्कालीन शिल्पियों ने इसकी चट्टानों को छील-तराश कर 'एक हथिया देवाल' (थल) 'एक हथिया नौला' (चंपावत) तथा नौदुंगी मकान (चंपावत) जैसी अद्वितीय रचनाएँ की हैं, जो उत्तर-मध्ययुगीन भव्य कला के उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। चंद राजाओं के कार्यालय के नाम से विख्यात चंपावत स्थित मध्यकालीन भवन तराशे हुए ठोस पत्थरों से निर्मित हैं। इस सादे आयताकार दो मंजिले भवन की दीवारों को स्लेट की छतों से धुरी पर जोड़ा गया है। लम्बाई वाली दीवाल में काष्ठ की खोली (प्रवेश द्वार) है। इसमें फूलों-पत्तियों का अलंकरण है। ऊपरी तल पर लम्बाई-चौड़ाई में छज्जे बने हैं। उनमें भी अलंकरण है। चंपावत में इस शैली के अन्य भवन भी हैं। अस्कोट में पाल राजाओं के दो प्राचीन आवासीय भवन दर्शनीय हैं। इनमें पत्थर की खोली का प्रयास प्रयोग किया गया है, परन्तु उसमें अलंकरण नहीं है। द्वितीय तथा तृतीय तल के 'चाख' नामक सामने के कमरों में दो-दो छज्जे बने हैं। भूतल के कमरों में बाहरी कमरों, 'चाख' का प्रावधान नहीं है। लम्बाई की दीवारों को आधा बनाकर छोड़ दिया गया है, जैसे किसी मंदिर का बन्द मण्डप बनाया जाता है। इसके सामने के पहाड़ी पर स्थित दूसरे भवन का मूल रूप पुनर्निर्माण के कारण बदल गया है। पिथौरागढ़ के टकाड़ी ग्राम के 'कोट' के नाम से प्रचलित मध्यकालीन सामन्ती भवन की धुरी युक्त छत स्लेट-पत्थरों की है। भवन में अनेक दरवाजे हैं। दो मंजिले पर लकड़ी का बरामदा है। कुमौड़ गाँव का सामन्ती भवन भी इसी शैली का है।

इस प्रकार के जितने भी भवन आज मिलते हैं, उनमें से अधिकांश अठारहवीं शताब्दी या उसके बाद के हैं। इनमें प्रयुक्त

कलात्मक काष्ठ के अलंकरण यहाँ की वास्तु कला की विशेषता को दर्शाते हैं। 'खोली' अर्थात् प्रवेश द्वार की मोटी-मोटी चौखटों और दरवाजों पर देवी-देवताओं की आकृतियों, पशु-पक्षी तथा फूल-पत्तियों की आकृतियों से अलंकरण किया गया है। खोली के ऊपर मध्य भाग में प्रायः गणेश या किसी अन्य देवता की प्रतिमा अंकित की जाती थी। उस काल के कुछ भवनों के अन्दर के कक्षों और उल्टी छत पर भी अलंकरण मिलता है। सामान्य लोगों के घरों में भी थोड़ा अलंकरण अवश्य मिलता है। इन घरों में प्रायः एक रसोईघर तथा एक पूजा कक्ष अवश्य बनाये जाते थे। कमरे के अन्दर अनाज भंडारण हेतु 'भकार' नामक लकड़ी के बड़े-बड़े सन्दूक बने होते थे। उसी घर के भूतल पर पशुओं हेतु गोष्ठ बना होता था। लम्बाई की दीवाल के एक छोर पर लकड़ी की पट्टियाँ लगी होती थीं, जिनमें प्रायः चिड़ियाँ घोसले बनाती थीं। जन-विश्वास के अनुसार जहाँ गौरैया घोसला बनाती है, वह घर मनुष्य के निवास के अनुकूल होता है। कई गाँवों में इस शैली के कम ऊँचाई के छोटे-छोटे अनेक कक्षों वाले दो सौ-तीन सौ वर्ष पुराने भवन आज भी विद्यमान हैं। छोटे द्वार तथा नीची छत वाले इन कमरों में कभी-कभी गुफाओं जैसी अनुभूति होती है। यह शैली हिंसक पशुओं, उपद्रवियों और ठंड से बचाव हेतु अपनाई गई प्रतीत होती है। गढ़वाल में इस प्रकार के प्राचीन भवनों के दो मंजिले में खोली के स्थान पर प्रायः लकड़ी का बरामदा और एक ऊँची सीढ़ी बने होते हैं। उत्तर-काशी के अनेक गाँवों के घरों में भूतल पर गाय-भैंस, प्रथम तल पर बकरियाँ और सबसे ऊपर मनुष्यों के निवास की प्रथा है। इससे पालतू पशुओं की देखभाल सरल हो जाती है तथा प्राणियों की उपस्थिति से घरों का तापमान ऊष्मामय बना रहता है। पहले से मनुष्यों का पशु-पक्षियों के साथ सामंजस्य अधिक था। सम्पन्न लोगों में पत्थर के पक्के मकान बनाने की प्रथा रही है। मजबूत बड़े-बड़े पत्थरों को मिट्टी के गारे अथवा उड़द की दाल के मसाले से जोड़कर चौड़ी दीवालें बनाई जाती थीं। छतें बड़ी-बड़ी स्लेटों की बनती थीं। दरवाजे, खिड़कियों तथा भीतर की सीढ़ी एवं कक्षों की विभाजक दीवालें लकड़ी की बनती थीं। बल्लियाँ तथा बीम (भराण) भी लकड़ी के ही बनते थे। गरीबों के घरों में पत्थरों की सादी दीवारों के ऊपर लकड़ी के तख्तों अथवा घास-पत्तियों की छत बनाई जाती थी। पिछड़े तथा निर्धन लोगों के घर झोपड़ीनुमा होते थे। सैकड़ों वर्ष पुराने द्वारहाट मंदिर समूह एवं राजमहल के अवशेष पत्थरों के सुदृढ़ भवनों के

जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। पूरे उत्तरांचल में अनेक स्थानों पर सातवीं-आठवीं सदी तथा उसके बाद बने अनेक मंदिर तथा नौले भी यहाँ की विकसित भवन-निर्माण कला के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनके निर्माण में वास्तुकला के नियमों का पालन किया जाता था। ये नियम लोक-विश्वास के रूप में जनमानस में बसे हुए थे। इसलिए प्रतिकूल परिस्थितियों में भी ये भवन सुरक्षित रहते थे।

सामान्यतः लम्बाई तथा चौड़ाई में पत्थर की मोटी दीवारों से चौकोर या लम्ब चौरस आकार के कक्षों के ऊपर लकड़ी के बीच (भराण) तथा बल्लियाँ लगाकर ऊपर से पाथर/पतली पटालों (स्लेट) की ढलुवा छतें बनाई जाती हैं। भूतल पर मिट्टी और पटालों का फर्श होता है, जहाँ पशु बाँधे जाते हैं और भूसा, घास आदि रखा जाता है। ऊपरी कमरों के फर्श पर बल्लियों के ऊपर तख्ते बिछाकर मिट्टी का फर्श (पाल) बनाया जाता है। पाल की मजबूती के लिए चिकनी मिट्टी में कुछ विशेष प्रकार की लचीली पत्तियाँ, गेहूँ का भूसा (चिल) अथवा रुई कूटकर मिलाई जाती हैं। उसके ऊपर मिट्टी-गोबर का लेपन किया जाता है। दीवारों पर भी मिट्टी-घोलकर प्लास्टर लगाया जाता है। इन प्रयोगों से घरों में मजबूती के साथ-साथ वातानुकूलन क्षमता भी बनी रहती है। लकड़ी एवं मिट्टी की अवशोषण क्षमता भवन को तेज धूप, वर्षा, हवा तथा ठंड के साथ-साथ भूकंपीय झटकों से भी बचाती है। ऐसे घरों में भूकंपीय कंपन फैलकर निकल जाने से भवन के टूटने का खतरा कम रहता है। लकड़ी के अधिक प्रयोग के कारण भी भूकंप के समय भवनों को अपेक्षाकृत कम क्षति पहुँचती है। 1991 में उत्तरकाशी के भूकंप के बाद 'पीपल्स साइन्स इन्स्टीट्यूट' देहरादून के एक दल ने भूकम्प प्रभावित क्षेत्रों का अध्ययन करने पर पाया कि वहाँ 'फिरौल' वाले पारम्परिक घरों को सबसे कम क्षति पहुँची थी। इनमें से कई घर सौ वर्ष से भी अधिक पुराने थे। इन घरों के सुरक्षित रहने के और भी कई कारण हैं, जैसे कमरों की ऊँचाई कम होना, ऊपर का बरामदा लकड़ी का होना, उसकी छत हलकी होना तथा प्रवेश द्वार तथा खिड़कियाँ छोटी होना आदि।

छत की धुरी के नीचे दोनों ओर को जाले (रोशनदान) होते हैं, जिनसे अन्दर का धुँआ तथा गैसों बाहर निकल जाती हैं और हवा-प्रकाश प्रविष्ट होते हैं। इसके ऊपर चौड़े पटाल रखे जाते हैं, जिससे धूल-धक्कड़ तथा वर्षा का पानी भीतर नहीं जा पाता। इसी

धुरी पर एक स्थान पर मिट्टी रखकर उसमें नागफनी का पौधा लगाया जाता है और डाँसी (चकमक) पत्थर रखे जाते हैं। जन-विश्वास के अनुसार ये दोनों वस्तुएँ बुरी शक्तियों से घर की रक्षा करती हैं। सम्भवतः चकमक पत्थर से आकाशीय बिजली जैसी अनिष्ट शक्तियाँ परावर्तित होती हैं। नागफनी जैसे कटीले पौधों की तीव्र संवेदनशीलता भी अनिष्ट शक्तियों को स्वयं वहन कर घरों की रक्षा कर सकती है। इसी तरह छत में लोहे का त्रिशूल गाड़ने की परम्परा भी आकाशीय विद्युत से बचाव हेतु किया गया वैज्ञानिक उपाय है। पहले से विद्युत प्रवाह को निष्कृत करने हेतु इस त्रिशूल को भूतल पर मिट्टी में गाड़कर छत तक पहुँचाया जाता होगा। कालान्तर में लोग मूल कारण को भूल गये और केवल विश्वास के आधार पर छत पर एक छोटा-सा त्रिशूल गाड़ने लगे। ढलवा छतों पर बर्फ या वर्षा नहीं ठहर पाती। इससे भवन को अतिरिक्त भार वहन नहीं करना पड़ता तथा शीलन भी नहीं होती। 'खोली' वाले प्रवेश द्वार भी पहाड़ों के लिए सर्वथा वैज्ञानिक हैं। इसमें एक या दो सीढ़ी के बाद दो मंजिले का प्रवेश द्वार आरम्भ हो जाता है। प्रवेश द्वार के अन्दर से सीढ़ियाँ क्रमशः ऊपर को जाकर एक सपाट दीवाल के सामने पूरी होती हैं। वहाँ दायें-बायें दोनों ओर को अलग-अलग दरवाजे होते हैं। तीव्र ठंडी या गर्म हवा, वर्षा की बौछार अथवा आँधी के धूल भरे थपेड़े ऐसे प्रवेश द्वार से भीतर नहीं आ सकते। ठंडी हवा का झोंका द्वार से भीतर आ भी जाये, तो सामने की दीवाल पर टकराकर लौट जाता है, इसलिए ऐसे घरों का अन्दरूनी तापमान सदैव अनुकूल बना रहता है। 'खोली' के बाहर की कलात्मक नक्काशी घरों को सुन्दर और आकर्षक भी बनाती है। ऐसे घर समृद्धि सूचक माने जाते हैं।

ऐसे पारम्परिक भवनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका निर्माण स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री से ही किया जाता है, जैसे पत्थर, लकड़ी, मिट्टी, घास। इसके परिणाम स्वरूप ये भवन पर्यावरणीय दृष्टि से अनुकूल होने के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से भी सस्ते होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बिना अधिक धन खर्च किये सिर्फ आपसी सहयोग से स्थानीय सामग्री एकत्र कर भवन बन जाते थे। इसी कारण हम आज भी पाते हैं कि उत्तराखंड में आवास विहीन शायद ही कोई हो। प्रायः निर्धनों के पास भी छोटा-मोटी घर अवश्य होता है। उत्तरांचल में उक्त शैली के भवनों की परम्परा लगभग एक हजार वर्षों से अधिक है। अंग्रेजों के

शासन काल में राजकीय भवनों की छतों पर पटालों के स्थान पर टिन डालने की प्रथा चली, लेकिन छतों में भी ढाल काफी अधिक रखी जाती थी। उसके बाद अनेक निजी भवन भी इसी प्रकार के बनने लगे। स्वतंत्रता के बाद धीरे-धीरे ईंट, सीमेंट, बजरी तथा लोहे के अधिक प्रयोग द्वारा आर.सी.सी. के समतल छत वाले भवन-निर्माण का प्रचलन बढ़ता गया और आज दूर-दराज के गाँवों में भी यह शैली अपनाई जा रही है। यह पूरी सामग्री मैदानी क्षेत्रों के कारखानों में बनकर गाड़ियों और मजदूरों द्वारा ढोकर यहाँ तक लाई जाती है। इनसे भवन तैयार करने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है, किंतु ऐसे घर यहाँ के पर्यावरण के लिए अनुकूल नहीं हैं। इनमें न तो वातानुकूलन क्षमता होती है, न भूकंपरोधिता।

‘पीपल्स साइंस इन्स्टीट्यूट’ ने हिमाचल प्रदेश के भवनों का अध्ययन करके जो निष्कर्ष निकाला, वह उत्तरांचल के संदर्भ में भी सही है कि ‘भूकंप के लिए अति संवेदनशील इस हिमालयी क्षेत्र में आज भी ये पारम्परिक भवन ही अधिक टिकाऊ और उपयुक्त हैं।’ (दास, 2002)

भवन आज केवल आश्रय स्थल ही नहीं रहे। किसी भी स्थान की भवन-निर्माण शैली उस स्थान की प्राकृतिक, भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं की परिचायक होती है। उत्तरांचल के पारम्परिक भवन भी यहाँ के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन के प्रतिबिम्ब हैं।

अरुणाचल की वाचिकता

डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह

अरुणाचल के गाँवों में बसे लोगों की जबान से लोकोक्तियाँ और कहावतें अनायास ही निकलती रहती हैं। इन कहावतों के मूल कोई गंभीर अनुभव, कोई घटना अथवा प्रचलित कोई कथा रहती है। कम शब्दों में अधिक भाव-राशि को समेटे ये लोकोक्तियाँ लोगों को दिशा दिखाती हैं, बुरे कर्म करने से रोकती हैं तथा सुकर्म की प्रेरणा देती हैं। इनमें पूर्वजों के जीवनानुभवों से प्राप्त ज्ञानराशि निहित रहती है। अंगीठी के पास बैठने पर अथवा उत्सवों आदि के समय एकत्रित होने पर अरुणाचलवासी बातचीत के दौरान लोकोक्तियों और कहावतों के द्वारा अपनी बातों को पुष्ट करते हैं।

ईदु मिश्री

एक़ो-बे एम्बु आगु यागो लापरामी।

-पत्नी और बच्चों को गुप्त बात बताना अच्छा नहीं है।

याइकु में इजी नीरू-चा लायी।

-प्रायः महिलाएँ ही अफवाह फैलाती हैं।

इकु रू-गा इत्तो अतरा गोदो अहरू-मी।

-कुत्ते के भूँकने अथवा मुर्गी के बांग देने पर ध्यान नहीं देना चाहिए, अर्थात् अफवाहों पर विश्वास नहीं करना चाहिए।

नान्यी-जी थेको-को, नाबा-जी थेनना।

-माता जैसी पुत्री, पिता जैसा पुत्र।

इक्कु-मे थु अंदोगा-गा उजी।

-गरीब लोग यदि कुत्ते की तरह झगड़ा करें तो उसका कोई महत्त्व नहीं है।

इक्की-पी इक्कोबे बिगेचा लाही बाबा येयी।

-पाखण्डी व्यक्ति एक बार ही किसी को मूर्ख बना सकता है।

इम्मु खेगे-में ताप्पु में चिरूगा यीमी।

मनुष्य को सबकुछ नहीं मिलता है।

इम्मु लाहिंदी येहा लाहा यी।

-मनुष्य भूल करता है।

ताजी आ मे कापा बाबा येयी ताजु कापा,

आ मे ताजी बाबाब येयी।

-हमेशा चालाक के पुत्र ही चालाक नहीं होते, कभी-कभी मूर्ख व्यक्ति के पुत्र भी चालाक निकल जाते हैं।

तागिन

किओकोम कुइ ता-पु, ता-पु कुई किओकोम।

-तेज, बुद्धिमान और प्रभावशाली व्यक्ति का पुत्र मूर्ख व्यक्ति का पुत्र चालाक भी हो सकता है।

मेतुंग तुंगकेने इमे गुसामा न्यीलु बोकेने न्यीकम पलमा।

-जिस प्रकार लकड़ी का अकेला टुकड़ा जल नहीं सकता है, उसी प्रकार अकेल व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता, अर्थात् एकता में बल है।

न्यी कचींग में ओ-लो लेबींग, सेमीक ओ-लो तयास।

-दुर्भाग्य अकेले नहीं आता है।

मीनसा यालुंगे गो-दु नेला।

-किसी की बाहरी वेशभूषा देकर उसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता है, अर्थात् किसी भी व्यक्ति को छोटा नहीं समझना चाहिए।

न्यी येमा देदे सोसाला हेके यांगोम यानेगे पोसीक।

-गरीब व्यक्ति सर्वत्र असहाय होता है।

सिले युलबोलो पेरो जोदु, न्यी अलबोलो सेगो जाकुम दु।

-विनम्र और उदार व्यक्ति सभी के द्वारा सम्मानित होता है।

सोने रिबुने तिरदेन लामा, सरदे कुनेम तिरदेन लामा।

-दुर्जन का सुधरना कठिन है।

बेने लोलने मक्पो केकेला।

-चरित्रहीन महिलाएँ सब कुछ खो देती हैं।

अनीक निंगे पेजीक अकक निंगे कोजल युयु निंगे तक्कु, मामा निंगे ता रिक।

-जो मनुष्य कोई काम करने के पूर्व उस पर गंभीर चिंतन-मनन करता है और काम धीरे-धीरे और लगातार करता है, उसे अच्छा फल मिलता है, लेकिन जो मनुष्य बिना विचार

किए हड़बड़ी में कार्य करता है, उसका फल अच्छा नहीं होता है।

चेलु अंगुग गुलका, दोलु असा सलाका।

-सभी जगह मैत्री पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

होमे बेबोलो कु गेन्गो।

-वैवाहिक संबंध से दो परिवारों में स्थाई रिश्ता कायम होता है।

मोंपा

लपना खेमा सुरंग जंग, मलप खेमा सुरंग मेय।

-शिक्षा मनुष्य को बुद्धिमान बनाती है। बिना शिक्षा के मनुष्य गूंगा है।

मेन्तो येगपुक दुइका ये मेयेन्य, गूती अरंग दुरंग धा फेयेनवेंगे।

-समय और ज्वार किसी की प्रतीक्षा नहीं करते।

गाले-गाले जेना बौगपोल ल्हासा कोरयोंग।

-धीरे-धीरे और निरंतर प्रयास करने से खच्चर भी ल्हासा की सैर कर सकता है, अर्थात् धीरे-धीरे और निरंतर प्रयास करने से लक्ष्य की प्राप्ति निश्चित है।

आपातानी

मिल्लो ब्यास्सा हिरूंग ब्यास्सा।

-मनुष्य को अपना रास्ता खुद बनाना चाहिए जिस प्रकार जंगली सूअर अपना मार्ग स्वयं बनाता है।

नीइ दी नीइ दिनीइंग यास्सी नई लुनीइ लुनीइंग यास्सी।

-कोई मानव यह दावा नहीं कर सकता है कि उसके विचार और कार्य पूर्णतः सही और अंतिम है।

नीइ अनीइ मि इजी नखिंग मा, पाबो अबा मि ओह नखिंगमा।

-सरकारी सेवकों से झगड़ा नहीं करना चाहिए।

मिल्लो मि गुंगचु तवु, हिरूंग मि लइदु कवु।

-बोलने के पूर्व सोचना चाहिए।

अका सोने सोमे, ही न्यारनी-इ-न्यारखे।

भावार्थ-चट्टानों पर पेड़-पौधे नहीं उग सकते और जंगल की झाड़ियों में सूअर नहीं रह सकता। इसी प्रकार प्रतिकूल वातावरण में मनुष्य शांतिपूर्वक नहीं रह सकता है।

लाली गामीइ हो बरमी पीइतिंग तिन्दु।

-महिला संबंधियों की सुरक्षा करना और उसकी भलाई के लिए प्रयत्नशील रहना पुरुषों का कर्तव्य है।

मालवी गीतों में जीवन

डॉ. शशि निगम, अरूण निगम

किसी भी लोकांचल के गीतों के संबंध में आम धारणा यही है कि ये सकारात्मक अभिव्यक्ति वाले होते हैं। जैसे-विभिन्न संस्कार गीत, व्रत-त्योहार, धार्मिक गीत इत्यादि। परन्तु वास्तविकता यह है कि इनमें जीवन के अनेक पक्ष अभिव्यक्त हुए हैं। दिनचर्या की छोटी-छोटी पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं तक को बड़ी संवेदनशीलता के साथ उभारा गया है। इसी सरलता ने इसके सामाजिक जीवन के अनौपचारिक पक्षों को भी उभारा है। अनौपचारिक पक्षों में मालवांचल की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष विषम स्थितियों को अनुभव किया जा सकता है।

कृषि प्रधान क्षेत्र में यदि वर्षा समय पर न हो तो उसका सीधा प्रभाव आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। गीत में मेघों (इन्द्र देव) से अत्यन्त मार्मिक निवेदन करते हुए कहा जा रहा है -

मेवाजी आप बरसो ने धरती नीबजे
मेवाजी दुनिया में होवे, सुकाळ हो इन्दर राजा।
धरती अबोलो इन्दर क्यों रे लियो?
मेवाजी हाली का हाल तो सरवरजो,
मेवाजी जोड़ी की धुर तो उतारो हो इन्दर राजा।
धरती अबोलो इन्दर क्यों रे लियो?
मेवाजी सूक्या सरवर बावड़ी,
मेवाजी बन का पंखीड़ा प्यासा जाय हो इन्दर राजा।
धरती अबोलो इन्दर क्यों रे लियो?
मेवाजी थारा बिना तो भूखी गायोड़ी,

मेवाजी बछड़ा बिना भूखा दूध हो इन्दर राजा ।
 धरती अबोलो इन्दर क्यों रे लियो?
 मेवाजी म्हारी भींजई दो रंग भर चूनड़ी,
 मेवाजी केसरिया की पचरंगी पाग हो इन्दर राजा ।
 धरती अबोलो इन्दर क्यों रे लियो?

हे राजा इन्द्र! हे मेघों! खूब बरसो, आप बरसते हो तभी धरती कुछ उत्पन्न करती है, और दुनिया में अच्छा समय आता है। हे इन्द्र! धरती से अबोला (चुप्पी या विरोध) क्यों किया? आप हाली को उबारो।

‘हाली’ खेती का कार्य करने वाला सहायक होता है। प्रायः वर्ष भर किसी न किसी रूप में उसे कम उपलब्ध होता है। किन्तु पानी के न बरसने पर सम्पूर्ण आर्थिक गणित गड़बड़ाने के कारण हाली को यदि कुछ समय काम नहीं मिलता है, तो इसे घोर विषम परिस्थितियों का द्योतक माना जाता है।

बैलों को काम दो। तुमने धरती से अबोला क्यों लिया? जलाशय सूख गए हैं। यहाँ तक कि जंगल के पंछी भी प्यासे जा रहे हैं। तुम्हारे बिना गायें और बछड़े भी बिना दूध के भूखे हैं, तुमने धरती से अबोला क्यों लिया? मेरी चूनर भिगो दो, मेरे स्वामी की पचरंगी पगड़ी भी। तुमने धरती से अबोला क्यों लिया?

ऋण ग्रस्तता और गरीबी मालवांचल की भी समस्या है। जिसका उल्लेख यदा-कदा लोक गीतों में भी देखने को मिलता है।

पिताजी ऋणग्रस्त हैं, नन्हीं बेटी के गुड्डे-गुड़िया कोठी पर रखे हुए हैं और वह ससुराल के लिए विदा हो रही है। गीत में बेटी का हृदयस्पर्शी निवेदन दृष्ट्य है-

कोठी पे पड़्या बई का देलणा,
 बई तो चाल्या परदेस ।
 संपत हो तो दायजी लावजो,
 नी तो भला परदेस ।
 संपत थोड़ो बई ऋण घणो,
 बई ने लावाँ बड़ी बेग ।
 कोठी पे पड़्या बई का डेलणा,
 बई तो चाल्या परदेस ।
 संपत हो तो बीराजी लावजो,

नी तो भला परदेस ।
 संपत थोड़ो बेन्या ऋण घणो,
 बई ने लावाँ बड़ी बेग ।

पिताजी ऋण ग्रस्त हैं। बेटी विदा हो रही है, कोठी पर उसके गुड्डे-गुड़िया रखे हुए हैं। अर्थात् अभी वह छोटी है। कहती है- पिताजी! धन हो तो ही मुझे ससुराल से लाना, वर्ना मैं तो परदेस में ही ठीक हूँ। वे कहते हैं- सम्पत्ति कम है, ऋण (कर्ज) अधिक है, लेकिन मैं तुम्हें जल्दी ही लाऊँगा। यही निवेदन वह अपने भाई से भी करती है, और भाई उसे जल्दी लिवाने का आश्वासन देता है।

गीत में ‘ऋण’ के स्थान पर ‘रण’ शब्द का प्रयोग भी देखा गया है, जिसका आशय पुराने समय में होने वाले ‘आक्रमण’ ‘विपत्ति’ आदि माना जा सकता है।

मालवांचल में अन्य प्रदेशों की प्रचलित कथाओं को भी उसी तन्मयता से समाविष्ट किया जाता है, जैसे वह यहीं की हो। उदाहरण के लिए राजस्थान के रामदेवजी, तेजाजी या गुजरात के नरसिंह मेहता। ‘नरसिंह मेहता का मायरा’ मालवा में बहुत लोक प्रिय है।

अपने करोड़ों रुपये मुक्तहस्त से बाँटकर ईश्वरभक्ति में मस्त नरसिंह मेहता का बेटी के ससुराल में अपनी निर्धनता के कारण हुए दुर्व्यवहार का उल्लेख निम्नांकित गीत में हुआ है -

हो मोड़ो घणों आयो रे, ले लई जा थारी गाँठड़ी ।
 ओर सगा ने मीठा भोजन,
 नरसीं ने खाटी राबड़ी । तू मोड़ो.....
 ओर सगा ने महल अटारी,
 नरसीं ने टूटी टापरी । तू मोड़ो.....
 ओर सगा ने गादी ने तकिया,
 नरसीं ने फाटी गोदड़ी ।
 तू मोड़ो घणों आयो रे, ले लई जा थारी गाँठड़ी ।
 हो..... मोड़ो घणों आयो रे, ले लई जा थारी गाँठड़ी ।

नरसिंह मेहता उस कृष्ण से, जो उन पर कृपा करके उनके स्थान पर स्वयं उनकी बेटी के यहाँ मायरा ओढ़ाते हैं, उन पर साधिकार गुस्सा करते हैं कि तुमने इतनी देर क्यों कर दी? वस्त्र

आदि की तुम्हारी गठरी वापस ले जाओ। मुझे उस समय खट्टी राबड़ी खिलाई गई, जब दूसरों को मीठा भोजन परोसा जा रहा था। दूसरों को महल-अटारी दी गई और मुझे ठहरने के लिए टूटी टापरी। अन्य रिश्तेदारों को गादी-तकिए दिए गए और मुझे सोने के लिए फटी गोदड़ी। तुमने देर क्यों कर दी? तुम्हारी गठरी वापस ले जाओ।

व्यसन की समस्या से त्रस्त एक पत्नी अपने पति से कहती है कि शराब पीकर तुमने अपना जन्म बिगाड़ डाला है। अपनी मानवता मत खोओ। वह शराब से होने वाली हानियों को बताते हुए उसे छोड़ने का आग्रह करती है-

अब तो समझो म्हारा आलीजा, परी छोड़ी दारूड़ी।
 यो सड़ियो सी पाणी थाने पीता लाज न आवे।
 घर में हाण जगत में हाँसी, कीमत बिगड़या जावेजी।
 अब तो समझो.....
 कई जणौरा मकान बिकाया, अणी मदिरा रे भाई।
 खाँसी चाले कालजो बाके, दारूड़ी दुखदाई जी।
 अब तो समझो.....
 हुई हजारों हत्या या मदिरा हे खोटी।
 घर की तिरिया ने मारन दोड़े, पकड़ हाथ में चोंटी जी।
 अब तो समझो.....
 सबी तमासो देखण आवे, लोग उड़ावे हाँसी,
 दारूड़ी मस्ती में मारू, जान आवसी जासी जी।
 अब तो समझो.....
 दासी कहे दारू पी के जनम बिगाड़या जी।
 ऊँचा कुल में पैदा हुई के मनक पणों मत हारो जी।
 अब तो समझो म्हारा आलीजा परी छोड़ो दारूड़ी।

मेरे स्वामी! अब तो समझ जाओ, शराब पीना छोड़ दो। ये सड़ा हुआ पानी पीते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती। घर में हानि, जगत में हाँसी और इज्जत खराब होती है। अब तो समझो, इस मदिरा ने कई के मकान बिकवा दिए हैं। शराब घर की स्त्री की चोंटी पकड़कर मारने दौड़ता है, सभी ये तमाशा देखते हैं और हाँसी उड़ाते हैं। जब पति दारू की मस्ती में हो तो कई बार (स्त्री की) जान निकल जाती है। आपकी दासी अर्ज कर रही है-‘दारू पीकर यूँ ही जन्म मत गँवाओ। उच्च कुल में पैदा होकर मनुष्यता मत

हारो’)

इसी प्रकार बीड़ी का नशा भी स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है। निम्न गीत में एक स्त्री अपने पति से प्रेमपूर्वक आग्रह करती है कि आप बीड़ी पीना छोड़ दो। मुँह से बहुत दुर्गन्ध आती है-

ओ रजड़ा मुखड़ा की आवे म्हाने बास,
 बीड़ी पीणों छोड़ दो।
 अगर गोरी थाने बास आवे तो,
 जाजो सासूजी के पास।
 ओ सासूजी पिसावे सारी रात,
 बीड़ी पीणों छोड़ दो।
 अगर गोरी थाने बास आवे तो
 जाजो जेठानी के पास।
 ओ जेठानी करावे घणों काम,
 बीड़ी पीणों छोड़ दो।
 ओ रजड़ा मुखड़ा की आवे म्हाने बास,
 बीड़ी पीणों छोड़ दो।

ओ राजा! मुझे आपके मुँह से दुर्गन्ध आती है। बीड़ी पीना छोड़ दो। वह भी प्यार से समझाता है- गोरी! यदि तुम्हें दुर्गन्ध आती है तो सासूजी के पास जाओ। वह कहती है- सासूजी के पास जाती हूँ तो वे सारी रात अनाज पिसायेंगी। आप बीड़ी पीना छोड़ दो। तुम्हें दुर्गन्ध आती है तो अपनी जेठानी के पास जाओ। वह कहती है- जेठानी बहुत काम करवाती है। राजा मुझे आपके मुँह से दुर्गन्ध आती है, बीड़ी पीना छोड़ दो।

शहरी क्षेत्र में तो नगण्य लेकिन ग्रामीणांचल में आज भी घोर निरक्षरता जैसी विषमता है, अशिक्षा के प्रतिशत अधिक हैं। परिजन तीर्थयात्रा पर गए हैं और अलग-अलग तीर्थ स्थानों से पत्र भेज रहे हैं। पत्र आने पर कहा जा रहा है, यदि कोई शिक्षित हो तो पत्र पढ़कर सुनाओ -

गंगाजी दादाजी को कारट आयो, भणिया हो तो बाँचो रे।
 अपना दादाजी को कारट रे।
 शरद रई तो कारट बाँचे, लाड़ी बऊ बगरे बुआ रे।
 बद्रीनाथ से कारट आयो, भणिया हो तो बाँचो रे।

अपणा काकाजी को कारट रे ।
 अरूण रई तो करट बाँचे, लाड़ी बरु बगरे बुआ रे ।
 हरिद्वार से कारट आयो, भणिया हो तो बाँचो रे ।
 अपना फूफाजी को कारट रे ।
 सुभाष रई तो कारट बाँचे, लाड़ी बरु बगरे बुआ रे ।
 केदारनाथ से कारट आयो, भणिया हो तो बाँचो रे ।
 अपना भैयाजी को कारट रे ।
 संजू रई लो कारट बाँचे, लाड़ी बरु बगरे बुआ रे ।

कहा जा रहा है, अपने दादाजी का गंगाजी से पत्र आया है, कोई पढ़ा-लिखा हो तो पढ़कर सुनाओ। पुत्र शरद पत्र पढ़ रहा है और उनकी दुल्हन आँगन बुहार रही है। अपने काकाजी का बद्रीनाथ से पत्र आया है, कोई पढ़ा-लिखा हो तो पढ़कर सुनाओ। बेटा सुभाष तो पत्र पढ़ रहा है, उनकी दुल्हन आँगन बुहार रही है। अपने भैया का केदारनाथ से पत्र आया है, कोई पढ़ा लिखा हो तो पढ़कर सुनाओ। बेटा संजू तो पत्र पढ़ रहा है और उनकी दुल्हन आँगन बुहार रही है।

मालवांचल में बाल विवाह जैसी सामाजिक विषमता विद्यमान है। संस्कार गीतों में इसकी झलक सहज ही मिल जाती है। निम्नांकित गीत में सीता एवं उनकी अन्य छोटी-छोटी बहनों की विदाई का वर्णन हुआ है। 'चारी बेन चली सुकुमार, उभर बारा के आसरे' पंक्ति में बाल विवाह जैसी विषमता सहज एवं स्वभाविक रूप से रेखांकित होती है-

नैना बरसे मूसलधार, सियाजी चाली सासरे, म्हारा राज ।
 चारी बेन चली सुकुमार, उमर बारा के आसरे, म्हारा राज ।
 म्हारो धीरज टूट्यो जाय, नई नैनन में प्यास रे, म्हारा राज ।
 बिदा होय चली बरात, जनकजी का गाँभ से, म्हारा राज ।
 नैना बरसे मूसलधार, सियाजी चाली सासरे, म्हारा राज ।

नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है, सीताजी सुसराल जा रही हैं। चारों बहन सुकुमार हैं, उम्र लगभग बारह वर्ष है। अब मेरा तो धैर्य छूट रहा है, जनकजी के गाँव से बारात विदा हो चली है। सीताजी ससुराल हेतु विदा हो रही हैं। नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है।

गणगौर के इस गीत में भी बाल विवाह जैसी बात को 'म्हारी गोरल बई तो घणा हो नानेरा' अर्थात् मेरी गौरल तो अभी

बहुत छोटी है, के माध्यम से बड़े ही प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है-

ईश्वरजी म्हारी गोरलबई तो घणा हो नानेरा,
 अबे आणों नी भेजाँ जी ।
 म्हारा सासूजी लावेगा अदवा-सदवा सूँढ,
 जदे आणों लई जावोजी ।
 म्हारा जेठाणी लावेगा अदवा-सदवा सूँढ,
 जदे आणों लई जावेजी ।
 ईश्वरजी म्हारी गोरल बई तो घणा हो नानेरा,
 अबे आणों नी भेजाँ जी ।

हे ईश्वर जी! (गोरल के पति महादेव) मेरी गौरल तो अभी बहुत छोटी है, उसे सुसराल हेतु अभी विदा नहीं करेंगे। मेरी सासूजी जब आधी-आखी सोंठ-सोंठ लायेंगी तब हम विदा करेंगी। गीत में ईश्वरजी और गौरल की भौजाई की बीच वार्तालाप हुआ है।

कुछ गीतों में बेमेल विवाह पर भी अप्रत्यक्ष रूप से व्यंग्य किया गया है। व्यंग्य को हास्य में छिपाकर बात को उजागर किया गया है। क्षण भर के लिए समधी को पाँच बरस का बताकर और समधन को लंबे मोटे स्वरूप की। इस प्रकार की कल्पना करके आनन्द और मनोरंजन भले ही कर लिया जाय, किन्तु गीत की जन्मदात्रियों के मस्तिष्क में समाज में देखे जाने वाले बेमेल युगल का चित्र अवश्य रहा होगा। इसी के साथ ही बड़ी स्त्रियों के छोटे एवं अयोग्य बालम की दुर्दशामय स्थिति भी स्पष्ट हो जाती है-

पाँच बरस का श्यामलालजी,
 दारी बाँगड़ सरी की नार, बालम छोटा सा ।
 मर जावे थारा माय ने बाज,
 म्हाने लाजा मत मारो भरतार, बालम छोटा सा ।
 घट्टी पिसन्ता म्हारी हथेलियाँ दुखे,
 आटो पिसवाओ भरतार, बालम छोटा सा ।
 दारी बाँगड़ा सरी की नार, बालम छोटा सा ।

पाँच वर्ष के श्यामलालजी हैं। बड़ी उम्र वाली पत्नी के वे छोटे से बालम जी हैं। वह गुस्सा करते हुए कहती है, तुम्हारे माँ-बाप मर जायें। छोटे से बालम मुझे लज्जित मत करो। घट्टी अर्थात्

हाथ से पीसने वाली आटा चक्की चलाते समय मेरी हथेलियाँ दर्द होती हैं, मेरे साथ पिसवाओ मेरे छोटे से बालम।

समाज में कुछ विषमताएँ स्वभावगत उत्पन्न होती हैं। एक लोक-गीत में भी यही बात कही गई है। बेटी गुजर के साथ प्रेम विवाह करने जा रही है, यह देख माँ करुण संताप करते हुए कहती है-

हीरा म्हारी ऊँची चढो मेड़ी गोखड़ा।
 आवता बताऊँ रसिया भोज।
 भोज सरीका भरतार म्हारे।
 भेज करौंगा भरतार छोरी।
 हीरा म्हारी मत जा गुजर की गोट।
 तो जावाँ गुजर की गोट।
 नम-नम पूजाँ बालो देव।
 हीरा म्हारी मत जा गुजर की गोट।
 अस्सी बरस को डोकरो ने बारा बरस की डावड़ी।
 भाया म्हारा लिख्या विधाता रा लेख नई मिटे।
 कागद हो तो बाँच लाँ करम न बाच्यो जाय।
 हीरा म्हारी माया रो लोभी थारो बाप।
 हँ छोटलो थारो बीर।
 बूड़ो परणायो रोगो, थारो डोकरो।

बेटी हीरा! तू अपने महल पर चढ़कर झरोखे में से देख। राजा भोज आ रहे होंगे। तेरे पिताजी भी राजा भोज के समान हैं। तेरा विवाह भोज जैसे कुँवर के साथ करेंगे। तू गुजर के साथ मत जा। बेटी गुजर के साथ जाने की इच्छा व्यक्त करती है। कहती है अस्सी वर्ष के बूढ़े के साथ मुझ जैसी बारह बरस की लड़की का विवाह मत करा। वह संताप करते हुए कहती है- विधाता ने मेरी किस्मत ही ऐसी लिखी है, कागज हो तो पढ़ लें, कर्म का लेख नहीं पढ़ा जा सकता। माँ कहती है-मेरी बेटी हीरा, तुम्हारा पिता धन का लोभी है और भाई अभी छोटा है। उन्होंने ही बूढ़े रोगी के साथ तुम्हारा विवाह किया है।

बाल विवाह एवं बेमेल विवाह जैसी सामाजिक विषमताओं की भाँति ही 'सती प्रथा' जैसी विषमता की जकड़नों में भारतीय लोक-मानस सदियों से आबद्ध रहा है। अज्ञान, अंधविश्वासों के कारण यह प्रथा भारतीय लोक-जीवन में भी विद्यमान रही।

आधुनिकता के प्रचार-प्रसार और कानूनी बन्धनों के बावजूद भी यदा-कदा सती होने की घटनाएँ मालवा में घटित होती रही हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि कुप्रथाओं की जड़ें जनता में कितनी गहराई तक जमी हुई हैं।

किसी समय विशेष में अपने प्रिय का वियोग न सहन कर पाने की दारुण स्थिति से मुक्ति पाने के लिए किसी स्त्री ने प्राणों की आहुति स्वेच्छापूर्वक दी होगी, किन्तु समाज ने उस घटना को परम्परा का रूप दे दिया। फिर नारी जाति की परतन्त्रता, मूक, कष्ट सहिष्णु प्रवृत्ति और पुरुष वर्ग की आधिपत्य भावना ने सती प्रथा के बंधनों को क्रमशः क्रूरतम बना दिया। ढोंग आडम्बरों पर जीवित रहने वाले अनैतिक तत्त्वों ने इसमें अपना योग दिया। धर्म और परम्परा से भीरु भारतीय जन जीवन में सदियों तक सती प्रथा की लोम हर्षक घटनाएँ घटती रहीं।

लोकांचलों में सती को देवी स्वरूप पूजा जाने लगा, महिमा मण्डित करते हुए सती के गीतों के माध्यम से स्मरण किया जाने लगा। मालवा में आज भी सती के गीत प्रचलित हैं।

सती होने जा रही नारी के शृंगार का वर्णन करते हुए तथा 'सायबजी से छोटी मती पाड़ो ही बीराजी, सती रो मत डग जावेगा' अर्थात् मुझे मेरे स्वामी से दूर मत करो, वर्ना मैं अपने पतिव्रत धर्म का निर्वाह कैसे कर सकूँगी? के माध्यम से तत्कालीन मनोभावों को मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है-

अपणी सती बई ने टीका बी सोवे,
 तो टिलड़ी की छब न्यारी।
 अपणी सती बई ने झुमकी बी सोवे,
 तो कुण्डल की छब न्यारी।
 सती रो डोल्यो चन्दन नीचे ऊबो,
 चन्दन नीचे ऊबो, चमेली नीचे ऊबो।
 सायबजी से छेटी मती पाड़ो ही बीराजी,
 सती रो सत डग जावेगा।
 अपणी सती बई ने हरवा बी सोवे,
 तो चेनों की छब न्यारी।
 अपनी सती बई ने चूड़ला बी सोवे,
 तो बीटो की छब न्यारी।
 सती रो डोल्यो चन्दन नीचे ऊबो,

चन्दन नीचे ऊबो, चमेली नीचे ऊबो।
सायबजी से छेटी मती पाड़ो हो देवरजी,
सती रो मत डग जावेगा।

अपनी सती माता को टीका शोभायमान हो रहा है, साथ ही बिन्दिया भी सुन्दरता बढ़ा रही है। इसी तरह झुमकी शोभायमान हो रही है, साथ ही कुण्डल सुन्दरता बढ़ रहे हैं। सती का डोला चन्दन-वृक्ष के नीचे ठहरा हुआ है, चमेली-वृक्ष के नीचे ठहरा हुआ है। सती कहती है- हे भाई! मुझे मेरे स्वामी से दूर मत करिये, वरना सती का सत (तपस्या) डगमगा जायेगा। अपनी सती को हार शोभा देता है, तो चेनों से सुन्दरता और बढ़ रही है। चूड़ला शोभायमान हो रहा है, तो अँगूठी की सुंदरता और बढ़ रही है। सती का डोला चन्दन और चमेली वृक्ष के नीचे ठहरा हुआ है। देवरजी! मेरे स्वामी से दूर मत करिये, वरना सती का सत डगमगा जायेगा।

नारी के सती होने जैसे सामाजिक विषमता की क्रूरता के दर्शन तो वहाँ होते हैं, जहाँ विवाह के बाद ही वर की मृत्यु हो जाती है। बाल-विवाह जैसी कुप्रथा की शिकार कन्याओं को सती होने के लिए विवश होना पड़ता है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो

हाथ के 'कंकण-डोरे' भी नहीं छूट पाते कि उसे चिता की लपटें स्वीकारना पड़ती हैं-

अरे बेरी दिन ऊगो, बिछड़ा तो पड़ेगा म्हारा कंत से,
धीरे-धीरे सुलगी री थी, दूनी दी सिलगाय।
पियू-पियू पुकारती थी, म्हारा पियू के संग।
बेरी तो हुयो म्हारी जान को, यो हकदी भर्यो अंग।
घड़ी एक पल सुख नई देख्यो, हुई या दुखियारी रात।
कदी पिया थारी सूरत देखूँगा, कदी कराँगा दो बात।

ऐसे बैरी दिन का उदय हुआ कि अब तो प्रियतम से वियोग हो गया। एक तो गाय दुखी थी और वन में आग लग गई, जिससे दुख अधिक असहनीय हो गया। प्रियतम के सानिंध में पिया-पिया की रट लगाये रहती थी। अब तो हल्दी भरा ये शरीर ही मानों मेरी जान का दुश्मन बन गया है। अर्थात् विवाह होते ही पति-वियोग हो गया। एक पल का भी सुख नहीं भोग सकी और दुःख भरी काल रात्री सम्मुख आ गई। अरे प्रियतम! कब तुम्हारी सूरत देखूँगी और कब करूँगी दो बातें?

इस तरह मालवा के लोक जीवन में हर्ष है तो विषाद भी है, समताएँ हैं तो विषमताएँ भी देखने को मिलती हैं।

गालो जनजाति की लोकोक्तियाँ

डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय

अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर के राज्यों में सीमांत जनजातीय पर्वतीय प्रदेश है। हिमालय के वात्सल्यमयी क्रोड़ में वसा अरुणाचल सदियों से ऋषि-मुनियों की साधनास्थली रहा है। यह वही प्रदेश है, जहाँ सूर्य की प्रथम रश्मि का उदय होता है। अपने उत्तुंग पर्वत शिखरों, विराट वन साम्राज्य और विशाल अल्हड़ नदियों के द्वारा निर्मित घाटियों के कारण यह प्रदेश जितना दुरूह है, उतना ही खूबसूरत भी। यहाँ पग-पग पर कल्पित स्वर्ग का अनुभव होता है। झर-झर झरते झरने, गगनचुम्बी पर्वत शिखरों से लुका-छिपी खेलते श्याम बादल, सदा हरित ऊँचे-ऊँचे वृक्ष और भाँति-भाँति के खिले हुए जंगली फूल, प्रकृति के इस आँगन को सजाये हुए हैं। ऐसा लगता है प्रकृति ने फुर्सत के क्षणों में इस प्रदेश को बनाया-सँवारा है। 83742 वर्ग कि.मी. के विशाल क्षेत्रफल में फैले इस प्रदेश में शताधिक जनजातियाँ अपनी बहुरंगी संस्कृति को समेटे निवासरत हैं। भारत की विविधता में एकता का दर्शन, यहाँ की बहुजनजातियों के भिन्न भाषा, त्योहार और धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताओं में समन्वय के रूप में प्रकट होता है। भौगोलिक रूप से जितना ही मनोमुग्धकारी यह प्रदेश है, उतना यहाँ का सामाजिक जीवन भी सरल और सहज है। दुर्भाग्य है कि देश के उच्च शिक्षित लोग, विद्वान साहित्यकार और उच्च अधिकारी तक, इस प्रांत को हिमाचल प्रदेश समझने की अक्सर भूल करते हैं।

अरुणाचल प्रदेश में एक सौ से अधिक छोटी-बड़ी जनजातियाँ निवास करती हैं। इनमें जनसंख्या और क्षेत्रफल की दृष्टि से 24 प्रमुख जनजातियाँ हैं। इनमें 'आदी' जनजाति सबसे बड़ी और प्रभावी है। इसकी कई उपजनजातियाँ हैं। 'गालो' (गालोंग) आदी जनजाति की एक प्रमुख उपजनजाति है। यह सामाजिक सांस्कृतिक, परम्परागत ज्ञान, भौगोलिक संरचना तथा भाषिक दृष्टि से समृद्ध जनजाति है। गालो जनजाति मुख्य रूप से पश्चिमी सियांग जिले के लिकाबली, गेंसी कांकू, बसार, तिरबिन, योमचा, दरिङ्ग, लिरोमोबा, आलोंग, बागरा, निके, कम्बा और दारक सर्किल (अंचल) की सैकड़ों बस्तियों में निवास करती है। इनके जीवन में लोक संस्कार है, लोक संस्कारों में ही जीवन रमता है। इनका लोक साहित्य मौखिक है, लेकिन इसमें वैविध्य है। लोकगीत, लोककथाएँ, लोकनृत्य, कहावतें/लोकोक्तियाँ आदि जैसी विधाएँ इनके मौखिक लोक साहित्य में रची-बसी हैं।

किसी देश की जातीय, राष्ट्रीय, साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं आर्थिक स्थिति को जानने-समझने का सरल साधन, उस देश या जाति का लोक साहित्य होता है। लोक हमारे राष्ट्रीय जीवन का महासमुद्र है। इसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी

कुछ संचित रहता है। लोकसाहित्य के केन्द्र में व्यक्ति नहीं लोक की अस्मिता होती है। लोकोक्ति लोकसाहित्य की एक प्रभावी विधा है। 'लोकोक्ति' का अर्थ होता है लोक में प्रचलित ऐसी उक्ति, जिसमें लोक समाज अपने अनुभव सिद्ध ज्ञान को सहज, सरल और स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त करता है। अर्थात् लोकोक्तियाँ कम शब्दों में अधिक भाव को व्यक्त करती हैं। यह ग्रामीण जनों का नीतिशास्त्र है। लोकोक्तियाँ सुनने-सुनाने में छोटी लगती हैं, लेकिन इसमें गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति छुपी होती है। लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिसमें बुद्धि और अनुभव की किरणें प्रस्फुटित होती हैं। 'गालो' जनजाति में लोकोक्तियों को 'मेंगेनाम' कहा जाता है। इनकी मौखिक लोक परम्परा में प्रचलित लोकोक्तियाँ सुदूर बस्तियों के शिक्षित-अशिक्षित जन-मन से सहज रूप से निकलती हैं। इसमें भाषा का दबाव नहीं है, व्याकरण नियम, नैतिक बोध से युक्त चेतावनियाँ, धार्मिक आचरण सम्बन्धी उपदेश, परोपकार-भावना, आत्मानुशासन पर बल, कर्तव्यनिष्ठा, कुसंगति से बचाव तथा नारी-प्रकृति जैसी भावानुभूतियाँ दिखाई पड़ती हैं। इन लोकोक्तियों में समाज की सहज सहानुभूति है, स्वस्थ संवेदना है और रम्य प्रकृति का सशक्त वैभव है। इन लोकोक्तियों में गालो समाज की युग-विशेष की समस्त लौकिक-धार्मिक परम्पराएँ अपने स्वाभाविक क्रिया-कलापों में साकार हो उठी हैं। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इन लोकोक्तियों में जो भाव या विचार दृष्टिगत होते हैं, वह अन्य भाषा-भाषी प्रान्तों में प्रचलित लोकोक्तियों से साम्य रखते हैं। इनके ऊपरी आवरण भले ही भिन्न हो लेकिन आत्मा एक ही है। उदाहरणार्थ गालो समाज में दुःख-सुख से सम्बन्धित अनेक लोकोक्तियाँ कही जाती हैं- 'अइगे गिमा हिमा एम अइ ए हेनसि दोन्यी ए हेनया मा' (भावार्थ-जो दुःख को भोगता है, वही दुःख का सही अर्थ समझता है। हिन्दी में इसकी साम्य लोकोक्ति है- जाके पाँव न फटे बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई? इसे चीन-तिब्बत आदि देशों से प्रव्रजित होकर आया हुआ मानते हैं, उन्हें अपने पूर्व निष्कर्षों पर पुनः विचार करने की आवश्यकता है। गत कुछ वर्षों में प्राप्त नवीन ऐतिहासिक साक्ष्यों पर पुनः शोध की आवश्यकता है। इस संदर्भ में गालो जनजातीय समाज में बोली जाने वाली लोकोक्तियों के संग्रह, अध्ययन-विश्लेषण तथा प्रकाशन से देश की भाषायी एकता मजबूत होगी। एक समाज की दूसरे समाज के साथ लौकिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परम्पराओं के आदान-प्रदान से आत्मीयता बढ़ेगी। स्नेह-सूत्र की डोर मजबूत होगी। एक राष्ट्र और राष्ट्रीयता का भाव प्रबल होगा।

विविध भावों को अभिव्यक्त करती हुई ऐसी ही कुछ लोकोक्तियाँ का संग्रह गालो लोगों से बातचीत के क्रम में किया है।

लेन्यी लेयुम बे मेट् रूट ना हिग मेराम दोना।

- आदमी एक बार झूठ बोल सकता है। बार-बार झूठ बोलने से वह खुद फँस जाता है।

*हिली हिदो-गे, इसी, ती-मा-ना,
मेली में दोगे ए-मे इ-मा-ना।*

- गन्दा पानी बीमार बनाता है। बुरों की दोस्ती से आदमी बुरा बन जाता है। धुँआ भरी आग न तो गर्मी देती है और न प्रकाश। वह तो गला बन्द कर देती है।

*तार होकेन लोक गोम ओमला मा,
हिदा दाकेन बोगने पला मा।*

- एक केन की लकड़ी से झूलता हुआ पुल नहीं बनाया जा सकता और न ही नदी बाँधकर मछली पकड़ी जा सकती है।

*आन् कादि लोक मिद्दी पाला मेंगे एम मेन्तो लोका।
आन काकुर लो मिकुर पाला मेंगा एम मेन्तो लाका।*

- कुछ भी बोलने और कुछ भी करने से पहले अनेक बार सोचना और विचार करना चाहिए।

*असि नितोम एम तान्ना होबे जिते एम जेदो,
अबो मेनतोम एम तान्ना येकपो बार एम बादो।*

- जो अपने बड़े भाई, पिता या पूर्वजों के दिखाये या बताये रास्ते पर चलता है, वह अधिक मिथुन रखने वाला आदमी हो जाता है। अर्थात् उसके पास अधिक पशुधन होने से वह सर्वाधिक धनी हो जाता है।

*निदु तुहा तुकि तादो बेसिन, नेदु तुना तुहिर दो,
पुया आना आखिर यादो।*

- कोई दोन्यी-पोलो (सूर्य-चन्द्रमा) ने मनुष्य के भाग्य में कुछ भी नहीं दिया तो वह सभी जगह मारा-मारा फिरता है। भाग्यहीन सर्वत्र असहाय होता है।

*जेतो कोला सिन नाम रा लो-यो-कामा,
योक्तो कोला सिन हरि लोयो-कामा।*

- सुन्दर वस्त्रों के पहनने से घर की गरीबी नहीं छुप सकती है। जैसे किस्म-किस्म के धान लगाने से गोदाम नहीं भर

सकता। इसके लिए जरूरी होता है अच्छी मात्रा में धान का उत्पादन होना।

योक् पाक रोक़ो ना हि ते-ते-ला-मा,
ओपेन रे-कोन ना न्यीबो दोतोम-ला-मा।

- गरीब आदमी बड़ी दावत देने की बात करता है, तो हँसी की बात होती है। बड़े-मोटे पेड़ को जिसे दाव से भी काटने में कठिनाई होती है, उसे चाकू से काटने की बात करना मजाक बन जाता है। यानी हर व्यक्ति को अपनी सीमा में रहकर ही काम करना चाहिए।

तादा गेल्ल न्यीगा तन्ना आने दुलि एम दोपि हिदो,
तादा गेल्ल न्यांगाम तान्या अबि दुगाम दोयके हिदो।

- आदमी को बिना सोचे-समझे उत्साहिस होकर हीरो (नायक) कहलाने के उद्देश्य से किसी आदमी पर आरोप नहीं लगाना चाहिए या उसे बुरा नहीं कहना चाहिए। सच्चाई जानने के क्रम में आरोपित व्यक्ति जब अपना परिचित, सम्बन्धी या मित्र निकलता है, तो बहादुरी का उत्साह टंडा पड़ जाता है।

कोकि मिकुर ए यो काकुमा।

- गलती करके पछताने से कोई फायदा नहीं होता। इसलिए आदमी को अपने ऊपर संयम रखना चाहिए।)

लिले हिदे रोक़ोम डरला,
हिबे जिजि हिबे जिजि ना तास लोबोब मा।

- जो आदमी प्रातः की ओस की बूँद की तरह पवित्र हो या जिसमें बचपन से ही स्वभाव में साधुभाव हो, उसकी क्या परीक्षा ली जा सकती है।

कासी-ला इन्-मा-योम्,
ले-ने-तो पिकू सी-दो।

- सँभलकर न चलने से गिरने का भय रहता है। अच्छे से अच्छा व्यक्ति भी अपनी वाणी पर नियंत्रण न रखने से लड़खड़ा जाता है।

गिदा न्यीलाक माना इक लोलोम याबे मे न्दो,
ओदे पिलाक मागे मोलाक माना पीसि याबे बोरजु याबे मेन् दो।

- जो खेती-बारी नहीं करता या आलस करता है, वह कुदाल और खुरपी को खराब कहता है। जो अपोंग नहीं बनाना

चाहता, वह घर में 'बोरजु' नहीं होने की बात कहता है।

देडगोम देल् बे गिदा न्यीना हुन् न्यीबे दो,
देडगोम देल् बे इसि लामा नामने लाबि दो।

- जो धीरे-धीरे किन्तु खेती-बारी का काम करता है, उसका घर धान से अवश्य भर जाता है। जो धीरे-धीरे और लगातार पानी भरता है, उसके घर में बहुत पानी भरा रहता है।

होना तुपसि मा, योत्रा मोले मा।

- चोर के लिलार पर यह नहीं लिखा होता है कि वह चोर है। ऐसे बुरे आदमी हजारों गुनाह करके भी जल्दी पकड़ में नहीं आते हैं। इनसे सावधान रहना चाहिए।

बी-के-बीदे बी-मेक मेक-पा दो।
न्योके-न्यादे न्यो-मेक मेक पा-दो।

- लड़ाई-झगड़ों से बचने के लिए दुष्ट स्वभाव वालों पर ठीक समय से अंकुश लगाना चाहिए। यदि साँपों और शेरों को आजाद घूमने के लिए छोड़ दिया जाये तो मनुष्य का जीना कठिन हो जायेगा।

न्यी-गे बूइली दुक्-को-लो दुक्-नाम ए,
न्यी-गे डोका हा-को-ला हा-नाम्-ए।

- बिना बिचारे दौड़ते रहने से बुइली चूहा पिंजरे में फँस जाता है। डोका मछली आँख मूँदकर धारा में जाने से मर जाती है। विचारहीन मूर्ख ऐसे ही मिट जाते हैं, जो बुद्धिमान होता है सदा सोच-विचार कर ही कोई काम करता है।

निय्मे लोक यासु ए, अमपो लोक यासु ए।

- औरत और धान की भूसी से घर जल जाता है।

न्याम ने गोमसार ना न्यीग् डेर दुम्बा,
लो आदो न्यामने लाकसार ना हिबो एम,
दुमि मोदो बेम्बो लेया मादो।

- जिसकी औरत चारित्रिक रूप से अच्छी नहीं होती, उसे कोई सम्मान नहीं करता है। जैसे जिसका हाथ ठीक नहीं होता है, उससे पकड़ी हुई मछली भी छूट जाती है।

न्यील बोकेन ये गोडने मेनको लोके यालु यासु ए दुलेन दो,
न्यीमे नेकेन गे न्यीगो क्-लो यासु-पिया ए दुलेन दो।

- एक आदमी के गलत करने से पूरा समाज बदनाम हो जाता है। जैसे एक औरत के चरित्रहीन होने से पूरा घर बदनाम

हो जाता है।

इसाक आयने बिन्योम इसाके हीदा बे इदो।

- धनुष की डोर टूट जाने से धनुष और लकड़ी में कोई फर्क नहीं रह जाता। इसी प्रकार पत्नी और पति जीवन के समानुभूति के साथी होते हैं।

*दोळि लुद्री एम पिगने माबे गिदा न्यीला माये,
तिल् लोपो एम एरो माबे इसि लाल मा।*

- भूखे-प्यासे आदमी का मन खेती में नहीं लग सकता है। भूख से पीड़ित व्यक्ति किसी भी काम को ठीक से नहीं करता है।

*गिदा न्यीगा न्यीया ना गिदा न्यीपी मा इसि लागा लाया ना इसि
लापि मा, न्यीने मेन्गा मेनया ना न्यीन मेनपि मा।*

- सिर्फ जंगल काटने से ही झूम खेती नहीं हो सकती है, यदि मन स्थिर न हो तो। अर्थात् यहाँ-वहाँ केवल जंगल काटते चलने वाला व्यक्ति कभी भी झूम खेती नहीं कर सकता है। नदी के सभी किनारों से (घाट से) पानी भरने को सोचने वाला व्यक्ति कभी पानी नहीं भर सकता है।

*न्यी मेन्तोम कोलोक न्यीते तेला मा,
न्यी मेन्तोम कोलोक न्यीगाम गामला मा,
अयी गे मिक्कि कोलोक न्यीते एम तेला दो,
अयी गे मिक्कि कोलोक न्यीगाम एम गामला दो।*

- दूसरों के बताये रास्ते पर चलकर कोई भी आदमी बड़ा (अमीर) नहीं बन सकता। जिस प्रकार दूसरों के बताये तौर-तरीकों को अपनाकर शिकारी, शिकार नहीं मार सकता है।

*आयो यो केन लोक बे बा नाम ए,
अइगे मिनाम एम मेन्त डुर दो।*

- संसार के सभी इंसान एक ही रात में पैदा नहीं हुए हैं। इसलिए सभी इंसानों के सोचने का ढंग अलग-अलग है।

*अल मान एम हेनदो ला इकेम माबे का,
कोकि मिकुर ए यो कामा।*

- कोई भी काम करने से पहले मनुष्य को अच्छे-बुरे का ज्ञान कर लेना चाहिए। बाद में पछताने से कुछ फायदा नहीं होता।

*बोमे लोटु बे हुते ऐला मा, बोमो लोटु बे नामते रे लामा,
देनगोम देले बे हुते एम रेदो ना,
देनगोम देले बे नामते नामते एम रेदोना।*

- एक दिन में धान से गोदाम (धान रखने का घर) नहीं भरा जा सकता है। उसको भरने में मेहनत और समय लगता है। एक दिन में बड़ा घर तैयार नहीं हो सकता है। उसे बनाने में कई लोगों की कई दिनों का परिश्रम लगता है।

उपर्युक्त कुछ लोकोक्तियों के निदर्शन से ही स्पष्ट है कि गालो समाज का लोक साहित्य कितना परम्परागत और समृद्ध है। विविध जीवन स्थितियों तथा अवसरों से सम्बन्धित अनुभव सिद्ध सरस और व्यंजनामय लोक उक्तियों का उनके मौखिक लोक-साहित्य में अभाव नहीं है। गालो समुदाय के लोकमानस की अभिव्यंजना कराने, साथ ही स्थानीय परिवेश, प्रकृति, मानव-प्रवृत्ति तथा संस्कृति आदि के वैशिष्ट्य को अद्भुत रूप से उजागर करती हैं। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इनको पढ़ते-सुनते समय इनसे साम्य रखती हिन्दी की अनेक लोकोक्तियाँ, मस्तिष्क में उमड़ने-घूमड़ने लगती हैं। 'अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गयीं खेत', 'बिन विचारे जो करै सो पाछे पछताय', 'मनके जीते जीत है मनके हारे हार', 'भूखे भजन न होय गोपाला', 'एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है', 'तेते पाँव पसारिये जेती लांबी सौर', 'जाको राखे साइयाँ मार सकै न कोय' जैसी अनेकानेक हिन्दी लोकोक्तियाँ इनके जैसी हैं और निरंतर ध्यान में आती चलती हैं। इस प्रकार के लोकोक्तियों के संग्रह एवं अन्य प्रान्तीय लोक साहित्य के साथ अध्ययन से सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ करने में मदद मिलेगी।

बागरी लोक साहित्य और संस्कृति

डॉ. बिट्टो जोशी

वर्तमान में जहाँ मध्यप्रदेश की अधिकांश अनुसूचित जातियाँ मुख्य धारा से जुड़ गई हैं, वहीं बागरी एक ऐसी जाति है जो अभी भी अपना पृथक अस्तित्व बनाए हुए है। मूलतः राजस्थान की यह जाति पुंवार, सोलंकी, डाबी व बड़गूजर नामक चार गोत्र में विभाजित है। इनमें से पुंवार व बड़गूजर ही मालवा में निवास करते हैं, जबकी सोलंकी व डाबी राजस्थान में रहते हैं।

बागरी जाति की उत्पत्ति से संबंधित कथा के अनुसार इनके आदि पुरुष 'बाघाजी' थे जो कि अत्यंत शक्तिशाली थे। किंवदन्ति के अनुसार बाघाजी ने गाँव की सभी लड़कियों के फेरे लगा दिए, जिसके कारण किसी भी लड़की के लगन नहीं निकल सके। जब गाँव के बुजुर्गों को इसका पता चला तो उन्होंने बाघा से ही इसका उपाय बताने को कहा- तब बाघा ने कहा कि मेरे बाँहे फैलाने पर उसमें जितनी कन्याएँ आ जाएगी, वे सब मेरी पत्नियाँ होंगी, शेष लड़कियों का आप नातरा कर देना। इस क्रम में बाघा की बाहों में बारह कन्याएँ आईं, जो विभिन्न जातियों की थीं। बाघा की प्रत्येक पत्नी के दो पुत्र उत्पन्न हुए और उनसे ही विभिन्न जातियाँ जैसे बागरी, गायरी, गुर्जर आदि की उत्पत्ति हुई।

समूह भावना से सुरक्षित बागरी गाँव के बाहर किसी एकान्त स्थल पर बस्ती बनाकर रहते हैं। सामान्यतः एक बस्ती में एक ही गोत्र सदस्य रहते हैं। खजूर के पेड़ से झाड़ू, चटाई व पंखे बनाकर अपना जीवनयापन करने वाली इस जाति में 'पाड़ा' (भैंसा) संस्कृति का अभिन्न अंग है।

बागरी स्वयं को हिन्दू कहते हैं, अतः हिन्दुओं के सभी देवी-देवताओं में विश्वास रखते व पूजते हैं। चूँकि इनका मूल निवास-स्थल राजस्थान है, अतः राजस्थानी संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट है। तीन देवियों शीतलामाता, नाहरमाता व हाथी पर बैठी माता की त्रिमूर्ति की विशेष पूजा करते हैं। नवरात्रि में इन देवियों की चौकी बैठती हैं, जिसमें देवी को शराब चढ़ती है तथा बकरे की बलि दी जाती है।

बागरी संस्कृति में विवाह एक प्रमुख संस्कार है। इस जाति में विवाह पद्धति काफी कुछ अन्य जातियों के समान है। सामान्यतः वर पक्ष की ओर वधू पक्ष को विवाह का प्रस्ताव भेजा जाता है। वधू पक्ष द्वारा पर्याप्त खोजबीन के पश्चात् विवाह हेतु रजामंदी दी जाती

है। सगाई कि रस्म को 'चिडी' कहा जाता है, जिसमें वर पक्ष वधू को 700 रुपये नगद व घर गुंजास (हैसियत) के हिसाब से कपड़े व जेवरात देते हैं। बागरी जाति में वधू मूल्य प्रचलित है, जो कि नगद रुपयों के रूप में लिया जाता है। यह अधिकतम चालीस से पचास हजार तक भी हो सकता। वधू मूल्य चुकाने के पश्चात् ही सगाई की रस्म पूर्ण होती है।

सगाई के पश्चात् और विवाह के पूर्व भावी वर अपने ससुराल में जाकर अपने सास-ससुर की सेवा करता है। इस रस्म का उद्देश्य वर का चरित्र परीक्षण है।

विवाह की रस्में अन्य हिन्दू जातियों के समान ही हैं, जिसमें गणपति स्थापना, चौक न्यौतना, हल्दी व पाचम डोरा आदि होते हैं। किन्तु फेरों की रस्म में पंडित की उपस्थिति अनिवार्य नहीं अपितु लड़की का मामा पण्डित के द्वारा निश्चित मुहूर्त में विवाह की रस्म पूरी करवाता है।

'पंचकामड़ा' बागरी जाति के विवाह की एक प्रमुख व रोचक रस्म होती है। इसके द्वारा विवाह को कानूनी रूप दिया जाता है। इसमें जाति के विवाह पंचायत के सामने सौ रुपये के स्टाम्प पेपर पर-अनुबंध लिखा जाता है, जिसमें वधू मूल्य की राशि सहित उन शर्तों का उल्लेख होता है, जिन पर वर एवं वधू पक्ष विवाह निश्चत् करते समय सहमत होते हैं। जैसे वधू को प्रताड़ित नहीं किया जाएगा, अन्यथा वधू को विवाह संबंध भंग करने का अधिकार होगा।

लड़की जब प्रथम बार ससुराल आती है तब उसकी अग्निपरीक्षा होती है, नववधू जब तक अग्नि परीक्षा से नहीं गुजरती, सास-ससुर उसके हाथ से बिना भोजन ग्रहण नहीं करते तथा जाति के सदस्य भी उसे हेय दृष्टि से देखते हैं। अग्नि परीक्षा में नववधू को कुल देवी के सामने जलते हुए तेल में अपने हाथ डालकर पूरियाँ तलनी होती हैं। सात पूरियाँ निकालकर उसका भोग भगवती को लगाया जाता है। परीक्षा का उद्देश्य वधू का चरित्र परीक्षण है। सामान्यतः नववधू पूरियाँ तलने से पूर्व ही देवी भगवती के सामने अपने संबंध स्वीकार कर लेती है। ऐसी स्थिति में यह पति पर निर्भर करता है कि वह पत्नी को रखेगा अथवा नहीं।

बागरी लोक जीवन में लोक साहित्य का समृद्ध भण्डार है।

यद्यपि शिष्ट समाज के मनोरंजन के साधनों ने बागरी लोकजीवन को भी प्रभावित किया है। तथापि आज भी बागरी लोक जीवन अपने लोक साहित्य की निर्मल जलधारा में अवगाहन के लिए आश्रित है।

अरत लोक जीवन में मनोरंजन का एक सशक्त माध्यम है। पहेली को बागरी जाति में 'अरत' कहा जाता है। बागरी लोकसाहित्य में अरत का संसार समृद्ध है। अरत कहने हेतु विषयों का अभाव नहीं है। घर परिवेश में मिलने वाली वस्तुएँ, मानव-अंग, प्रकृति, जीव-जन्तु आदि विषयों पर अनेकानेक अरत कही गयी है-

अनावान में एक राण्ड माथो बखेर ने ऊबी

इसका उत्तर खजूर का वृक्ष है, जो सूने जंगल में अकेला अपने पत्तों को बिखेर कर खड़ा रहता है।

नानीक राणी राजा ने रोवडे।

इसका उत्तर मिर्ची है। पर यह जानना इतना आसान नहीं है। राजा या शक्तिशाली पुरुष को रुलाना इतना आसान नहीं, किन्तु थोड़ी मिर्च खाते ही उसकी आँखों में पानी आ जाता है।

मेला बेठि डोकरी मोट्याँ रो मन

इसका उत्तर कच्चा आम है। कच्चा आम जब बाजार में बेचने को लाया जाता है, तब उसे देखकर छोटे-बड़े सब के मुँह में पानी आ जाता है।

दन्नौ-दन्नै भरी रातै-रातै खाली

बागरी लोग घरों में बिस्तर रखने हेतु एक बड़ी लकड़ी बांध देते हैं, जिस पर दिन भर बिस्तर रखते हैं। रात में बिस्तर बिछाकर सोते हैं, जिससे रात में वह खाली रहती है।

या अई ने वा गी

इसका उत्तर नजर है। नजर कभी स्थिर नहीं रहती है। एक जगह से हटती है तो दूसरी जगह टिक जाती है।

लोकोक्तियों में अनुभव सिद्ध ज्ञान का कोश छिपा है। समाज के आचार-विचार, रीति-रिवाज, परम्पराएँ तथा लोक जीवन की संपूर्ण अभिव्यंजना लोकोक्ति के माध्यम से प्रकट होती है। बागरी जाति में लोकोक्ति को केवात कहा गया है-

मनका मे नाई जनावरा में काग
पानी में को काछबो तिनी दगाबाज

मनुष्य में नाई, पक्षियों में कौआ व जल में कछुआ तीनों ही
दगाबाज होते हैं।

आगंरी ती नख दूर नी रे हे

जिस प्रकार उँगली से नाखून दूर नहीं होता, उसी प्रकार
भाई-भाई में चाहे कितनी भी मनमुटाव हो, किन्तु भाई के समान
निकट संबंधी कोई नहीं होता है।

सावण में सूरयो चाले भादवा पुरवाइ,
आसोजा में पछवा बोले भर-भर गाड़ा लाई

यदि श्रवण में उत्तर-पश्चिम की हवा, भादों में पूर्व की हवा
तथा आश्विन में पश्चिम की हवा चले तो फसल बहुत अच्छी होती
है।

निना वेरो नाव कुण लेव

जिस पुरुष के संतान नहीं होती, उसका नाम लेना ही
अशुभ है। इस प्रकार का विश्वास इस जाति के लिए सामान्य है।
इसी प्रकार मानव अंग से संबंधी विश्वास पर लोकोक्ति देखिए-

आँख फड़कै बाई कै बीर मिले कै साई
आँख फड़कै दाहिणीलात धमुका सहिणी

अर्थात्-यदि स्त्री की बाई आँख फड़के तो उसे पति या
भाई मिलने का संकेत माना जाता है और यदि दाहिनी आँख
फड़के तो उसे लात घूसे की मार सहनी पड़ेगी।

जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक संस्कार बागरी जाति द्वारा
संपन्न किए जाते हैं और प्रत्येक संस्कार से संबंधित गीत भी
प्रचलित हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बागरी स्वयं को हिन्दु
कहती है और उनके लगभग समस्त संस्कार अन्य उच्च जातियों
के समान हैं। अतः इनसे संबंधित गीत भी अन्य जातियों के समान
हैं। अन्तर सिर्फ देवनारायण से संबंधित भजन, बलिदान प्रथा से
संबंधित गीत व देवियों के भजन में है, जो कि अन्य जातियों में
इतने प्रचलित नहीं है। संस्कार विषयक जो गीत एकत्रित हैं, इनमें
पूर्वज, सतीमाता, जुझार बावजी, भेरूजी, गणपति स्थापना, हल्दी-

कलश स्थापना, गाली, कामण, बना-बनी, शीतलामाता, तेल चढ़ावा,
घोड़ी, विदा आदि है। यह गीत परम्परागत रूप से अन्य उच्च
जातियों द्वारा भी गाए जाते हैं। इन लोकगीतों में रस सृष्टि की
क्षमता अत्यंत तीव्र है। इन गीतों में हास्य, शृंगार, शान्त व करुण
रस ही प्रमुख रूप से पाए गए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ गीतों में
वीर रस का भी चित्रण हुआ है। खेलाउ गाली आदि के गीतों में
हास्य रस का उदाहरण देखिए-

नार मिली अधबन्डी
कुवारा क्यो नी रईग्या जी

इसी तरह विदाई के गीतों व मामेरा के गीतों में करुण रस
पाया जाता है।

वो म्हे तो खाजा दई ने खेलाई
ओ सासु दुखड़लो मती दीजो

जुझार बावजी के गीत में वीर रस देखिए

पूरा रण में जूझे रे सुरो एकलो.....

भेरूजी के निम्न लिखित गीत में शृंगार रस का आकर्षक
वर्णन है-

चालती सुतारण मोई रे कुमर काला रे
बंसरी बजाते मुखडा पर डाले रूमाल।

रस के अतिरिक्त वैवाहिक गीतों में उपमा, अनुप्रास व
अतिशयोक्ति अलंकार विशेष रूप से पाए गए हैं। ये अलंकार इन
गीतों में स्वाभाविक रूप से आए हैं। उपमा अलंकार का उदाहरण
निम्नलिखित बना-बनी गीत में देखिये-

धूप पड़े धरती तपे रे
बना चांद वदन कुम्हलाय

अनुप्रास अलंकार देखिए-

चालो गजानन्द सोनी रो रे चाला
तो आछा-आछा गोणा मोलावा

अतिशयोक्ति अलंकार देखिए

केसरिया केसरिया सब सिणागार्या
केसरिया जाने सूरज जी पदार्या
केसरिया जाने चन्द्रमा जी पदार्या

लोक गीत साहित्यिक क्लिष्टता से परे होते हैं, क्योंकि इनका उद्भव लोक जीवन व लोक कण्ठों से होता है। इसलिए इनकी भाषा सहज व सरल होती है। बागरी के मांगलिक गीत औपचारिक हैं। ये गीत सभी प्रकार के मांगलिक अवसरों पर गाए जाते हैं। बागरी के संस्कार, कौटुम्बिक एवं माहवारी गीतों की प्रवृत्ति स्त्रैण हैं, क्योंकि ये सभी गीत स्त्रियों से संबंधित हैं। जबकि देवताओं की अरत, देवनारायण से संबंधित भजन व अन्य भजन व अन्य भजन गीत स्त्री व पुरुष में समान हैं।

नवरात्रि उत्सव मालवा तथा राजस्थान के साथ ही देश के विभिन्न भागों में बड़े उत्साह से मनाया जाता है। मनोहर वस्त्राभूषण से देवी के विभिन्न रूपों का शृंगार किया जाता है। बागरी जाति की मुख्य आराध्य देवी ही हैं। यह जाति राजस्थान में स्थित जोगणिया माता में विशेष श्रद्धा रखती है। जब माताजी के मन्दिर में ढोल बजता है तो बागरी के पैर थिरकने से नहीं रुकते।

*जोगनिया महाराणी नै ढोल बाजै
घाटावारी माताजी नै ढोल बाजै
ढोला तू नाचा वा नी दे
मारो कारजो बरै*

जोगणिया माता भक्तों के सभी दुख दूर करती है।

*जोगणिया महाराणि मारो कीजे दुखड़ो मेट
दुखे से मारी कमरिया दुखै से मारो पेट*

देवनारायण बागरी जाति के परम आराध्य देव हैं। देवनारायण के देवरे के दर्शन की अभिलाषा प्रत्येक बागरी महिला-पुरुष में तीव्रतम होती है। यद्यपि उनके अभाव व संकट इसकी पूर्णता में बाधक हैं। यथापि जब देवनारायण उन्हें स्वयं बुलाते हैं, तो सारी रूकावटें स्वयं दूर हो जाती हैं-

*रात अंधारी ने गेलो चिकणों
जानी डरफूओ बण में एकली*

इसका उत्तर देवनारायण देते हैं-

*मती डराकोओ ऐ माना ओ गूजरी
थारी भाइल्या ने लारा लावजों
थारा देवरिया ने लारा लावजों
ढोला के ढमकै आवजै*

इसी प्रकार अनेकानेक भजनों व गीतों के माध्यम से बागरी लोककंठ अपने आराध्य को स्मरण करता हुआ अपने कष्टों के निवारण हेतु प्रार्थना करता है।

वैवाहिक गीत तो संपूर्ण मालव समाज में एक समान रूप से प्रचलित होने से किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं, किन्तु भजन व देवी-देवताओं से संबंधित गीत बागरी समाज में ही अधिक प्रचलित होने से अपने अस्तित्व हेतु संघर्षरत हैं। बागरी समाज में भी नई पीढ़ी का रुझान खड़ी बोली की ओर अधिक होने से इन लोक गीतों व भजनों की परम्परा लुप्त होती जा रही है।

बागरी लोक कथाओं में बागरी संस्कृति के अनुरूप स्त्रियों को महत्त्व दिया गया है। इन कथाओं में स्त्रियों को सुन्दर, प्रतिभावान व बुद्धिमती बताया गया है। 'चार सवाल' व 'घर का पता' कहानियाँ इसका सुन्दर उदाहरण हैं। चार सवाल कहानी में राजा व उसके दरबारियों द्वारा सेठ की संपत्ति हड़पने हेतु षडयंत्र रचा जाता है, जिसमें सेठजी फँस जाते हैं। उन्हें इस मुसीबत से सेठजी की चतुर बहू निकालती है। इसी प्रकार घर का पता कहानी में गुर्जर को गाँव की स्त्रियाँ मूर्ख बनाकर बिना पैसे दिये काचरे ले जाती हैं। और घर का पता भी संकेत रूप में बताती हैं। गुर्जर की प्रतिभावाना-पत्नी ही संकेत का अर्थ समझकर घर का सही पता बताकर काचरे के पैसे लेने में मदद करती है।

इसी प्रकार प्रकृति से निकटता भी इनके कथा साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होती है। बागरी कथा साहित्य में पशु-पक्षी से संबंधित कथाओं का भण्डार है। इन कथाओं में न सिर्फ पशु-पक्षियों की शारीरिक संरचना का अपितु स्वभाव का भी यथार्थ चित्रण है। इन कथाओं की प्रमुख विशेषता पशु-पक्षियों का मानवीकरण और उनके माध्यम से नैतिक शिक्षा देना है। 'भोला को भगवान' कथा में कौए द्वारा चिड़िया को धोखा देना फिर ईश्वर की कृपा से चिड़िया का धन-धान्य से पूर्ण होना, इसका सशक्त उदाहरण है। इसी प्रकार 'पच्चहतर पुत्र और सुआ' कथा में सभी पुत्रों का सुआ बन जाना और पुनः मनुष्य बनकर अपनी माता को दासता से मुक्ति दिलाना सत्य की जीत का संदेश देती है।

इनके अतिरिक्त भूत-प्रेत में विश्वास जादू-तंत्र से संबंधित संस्कार व नीति से संबंधित कथाएँ सहज ही प्राप्त हैं।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आज के समय में जब प्रेम, दया, करुणा जैसे शाश्वत मूल्य समाप्त होते जा रहे हैं, हम भावनाओं के धरातल पर संवेदन शून्य होते जा रहे हैं और सारा समाज हृदय पक्ष को छोड़ सिर्फ बुद्धि पक्ष पर बल दे रहा है। ऐसे समय में

लोक साहित्य न केवल संस्पर्श करता है, वरन छूता है और छूकर झंकृत कर देता है। ये गीत, अरत, केवात, कथा मानवीयता के बुझते हुए स्वरो को नई शक्ति प्रदान कर सकते हैं। आवश्यकता इनके अनुसंधान की है।

तागिन जनजाति का महोत्सव : सी दोन्यी

तारो सिन्दिक

हिमालय पर्वत के आँचल में बसा अरूणाचल प्रदेश, जिसे सूर्यदेव अपनी मंगल किरणों से सर्वप्रथम आशीष प्रदान करते हैं, छब्बीस विभिन्न जनजातियों का बसेरा है। यह बहुत ही दिलचस्प बात है कि इन सभी जनजातियों की अपनी-अपनी भाषा एवं बोलियाँ, धार्मिक आस्थाएँ, वेश-भूषा, सामाजिक रीति-रिवाज, संस्कृति, जीवन शैली एवं त्योहार है। इतनी सारी विविधताएँ होने के बावजूद अरूणाचल वासी शांतिपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते आ रहे हैं। 'विविधता में एकता' जिस तरह भारत को विश्व में अलग पहचान दिलाती है, वही अरूणाचल प्रदेश को भारत में। इसी कारण अरूणाचल प्रदेश को 'लघु भारत' की उपाधि प्राप्त है।

अरूणाचल की छब्बीस जनजातियों में से एक प्रमुख जनजाति है-तागिन। तागिन लोग मुख्य रूप से अरूणाचल की एक प्रमुख नदी 'सुबनसीरी' के ऊपरी इलाकों में केन्द्रित हैं, जिसे 'अपर सुबनसीरी' जिला कहते हैं। अपर सुबनसीरी के उत्तरी दिशा/सीमा में 'नाह', दक्षिण में 'गालो', पश्चिम में 'न्यासी' तथा पूरब में 'रामो'; 'बोरी' तथा 'बोकर' आदि जनजातियाँ निवास करती हैं। वैसे पहाड़ी इलाकों में बसने के कारण अधिकतर बस्तियाँ आज भी नगरीकरण से वंचित हैं। फिर भी तागिन की अपनी समृद्ध संस्कृति आज भी जीवित है, परन्तु लिखित साहित्य के अभाव में वह प्रकाश में नहीं आ सकी। तागिन लोग पूजा-पाठ जैसे अनुष्ठानों पर विशेष आस्था रखते हैं। अपने दृष्टिदेव के रूप में वे 'दोन्यी' यानी सूरज तथा 'पोलो' यानी चन्द्रमा की उपासना करते हैं।

तागिन में कई प्रकार के 'उई मनम' यानी पूजा पद्धतियाँ चिरकाल से प्रचलित हैं। इस 'उई मनम' के कई प्रयोजन हो सकते हैं, जैसे किसी बुरी आत्मा के साये को भगाना, किसी की भविष्यवाणी करना, किसी को रोग-मुक्त करना, किसी परिवार के जीवन को सुखमय बनाना इत्यादि। पूजा-विशेष के आधार पर मुर्गी, बकरी, सुअर, कुत्ता, गाय या मिथुन जैसे जानवरों की बलि चढ़ाई जाती है, जिसे 'मिनम' कहते हैं। इन्हीं पूजा विशेष के अनुसार 'न्युबु' यानी स्थानीय पुजारी द्वारा 'इरीरिनाम' यानी विधि-निषेध का समय एवं स्वरूप निर्धारित किया जाता है। पूजा के रूप में सबसे बड़ा आयोजन होता है-'सी-दोन्यी'। चूँकि इसका आयोजन बड़े ही भव्य ढंग से होता है, इसी कारण यह त्योहार का रूप धारण कर लेता है।

'सी' का अर्थ होता है-धरती माँ तथा 'दोन्यी' का अर्थ है सूर्य देवता। परन्तु तागिन मान्यताओं के आधार पर धरती पुल्लिंग तथा

सूरज स्त्रीलिंग है, तभी तो वे लोग 'अतु-सी' तथा 'अयु-दोन्यी' से उन्हें संबोधित करते हैं। 'अतु' का अर्थ है दादा/पितामह/नाना तथा 'अयु' यादी दादी या नानी। जैसे कि अरूणाचल के बाकी जनजातियों के त्योहार-मोपिन, सोलुङ, दिरी, बुरी-बुत, न्योकुम-युलो इत्यादि का संबंध कृषि से है, इसी प्रकार सी-दोन्यी का संबंध भी कृषि और मानव कल्याण से है। इस त्योहार की उत्पत्ति के संबंध में तागिन में एक विस्तृत लोक कथा प्रचलित है। आगे इसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

तागिन मान्यताओं के अनुसार ब्रह्माण्ड या सृष्टि के निर्माण से पूर्व महाशून्य में से 'कुरयुम' तथा 'कुलु' नामक दो परम शक्तियाँ अस्तित्व में आयीं। इसी कुरयुम-कुलु में से पुनः 'रियुमचिनजेरिन', 'रियुमसी' और 'रियुमदो' नामक तीन पदार्थ अवतरित हुए। इनमें से रियुमचिनजेरिन सबसे बड़े थे और साथ ही अपूर्व ज्ञान और विवेक के साथ निर्मित हुए थे। बाकी रियुमसी और रियुमदो आकार के बहुत छोटे थे। इसी कारण दोनों अबाध गति से अपने आप का विस्तार करते चले गए। दोनों के इस तीव्र-विस्तार से सभी खाली जगहें धीरे-धीरे भरने लगीं। अब रियुमचिनजेरिन को यह भय होने लगा कि इस तरह तो सभी रिक्त स्थान भर जाएँगे। रियुमचिनजेरिन ने सृष्टि निर्माण का बीड़ा उठा रखा था। उन्होंने दोनों के इस आत्म विस्तार से यह अनुमान लगा लिया था कि सृष्टि निर्माण के पश्चात् देवी-देवताओं सहित सभी भौतिक पदार्थों के लिए खाली जगहों की आवश्यकता पड़ेगी, जो इस तरह संभव नहीं थी। अतः बहुत विचार-विमर्श के बाद रियुमचिनजेरिन ने यह निष्कर्ष निकाला कि रियुमसी और रियोमदी को दो भागों में विभाजित करने में ही भलाई है। एक आध्यात्मिक अनुष्ठान के साथ विभाजन कार्य का आरंभ एवं समापन हुआ। इस विभाजन के आधार पर रियुमसी 'सेची' यानी धरती और रियुमदो 'न्योदो' यानी आकाश के रूप में विभाजित किये गए। इस विभाजन-प्रक्रिया को तागिन में 'सेची-न्योदो काम्बो-बेनम' कहते हैं। विभाजन के दौरान अनुष्ठान में 'सेची गे तातिक' यानी जमीनी मेंढक तथा 'दोते गे हरचू' यानी आसमान का मेंढक की बलि चढ़ाई गई। अनुष्ठान की सफलता के लिए दोनों ही को दस-दस दिनों तक विधि-निषेध का पालन करने के लिए निर्देश दिया गया और कहा गया कि दस दिनों तक वे दोनों अपने में ही सिमटकर रहें तथा किसी भी प्रकार के क्रिया कलापों में भाग न लें। दोनों ने ही इसे सहर्ष स्वीकार किया। इस आध्यात्मिक अनुष्ठान का मूल उद्देश्य था- रियुमसी-रियुमदो के बीच शांति, एकता, संगति एवं स्थायित्व बनाए रखना।

परन्तु समस्या अभी खत्म नहीं हुई थी। रियुमसी-रियुमदो के विभाजन के दौरान 'चेचप-दोचप' (दोनों के बीच की विभाजन रेखा) से 'इची-पिंची' नामक एक कुटिल चमगादड़ बाहर आया, जिसे लोगों के कान भरने में महारत हासिल थी। कहा जाता है कि विधि-निषेध के पाँचवे दिन में इची-पिंची ने रियुमसी के पास जाकर यह कहा कि रियुमदो विधि-निषेध का पालन करने के बजाए दुष्कार्यों में मग्न है। तुम्हारा इस तरह रहना हास्यास्यद जान पड़ता है। यह सुनने के बाद रियुमसी गुस्से से भड़क उठी। उसने सोचा कि उसे 'छला' गया है। तत्पश्चात् रियुमसी ने तय किया कि वह निषेध का पालन करना छोड़ देगी। गुस्से से बेकाबू होकर उसने नियम का उल्लंघन तो किया ही, साथ ही रियुमचिनजेरिन के पास जाकर उन पर अपना सारा गुस्सा उतार दिया। परिणामस्वरूप रियुमचिनजेरिन ने उसे शाप दिया कि वे भू-स्खलन, भूकम्प, बाढ़, तूफान, बवंडर इत्यादि प्राकृतिक आपदाओं के प्रकोप की शिकार बने। इस तरह धरती अपने रचनात्मक रूप में समतल होने के बजाए ऊबड़-खाबड़ होने लगी क्योंकि उसे विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक आपदाओं का शिकार जो बनना था। उधर रियोमदो ने आराम से दस दिनों तक निषेध को पूरा किया और स्थायित्व को प्राप्त किया। इस तरह वह स्थायी 'न्योदो-कोलो' यानी आकाश बन गए। उन्होंने अपनी साज-सज्जा के लिए 'ताकार' यानी तारागण को जन्म दिया। तागिन में तारा को आकाश की बेटी भी माना जाता है।

'सेची' यानी धरती के पूर्ण निर्माण के बाद प्रकाश, जल और समय की जानकारी हेतु प्रसाधन या बुनियादी सामग्री जुटाने की आवश्यकता पड़ी। अब धरती पर जीवन भी शुरू होने जा रहा था। 'अबो तान्यी' और 'अने यापी' नामक परम पुरुष और स्त्री भी जन्म ले चुके थे। कुरयुम-कुलु ने सारी स्थिति का जायता लेते हुए प्रकाश के लिए 'दोन्यी' जल के लिए 'हाई' यानी सरिताएँ तथा समय की जानकारी के लिए 'पोलो' यानी चन्द्रमा का निर्माण किया। इस तरह सृष्टि का निर्माण कार्य सम्पन्न होता है।

इची-पिंची द्वारा लगाई गई आग से रियुमसी ने जो बड़ी भूल की थी, उसी के दुष्परिणाम स्वरूप आज की तारीख में भी हमें तरह-तरह की प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। चूँकि दोन्यी-पोलो सृष्टि की निगरानी हेतु निर्मित किए गए हैं, इसी कारण 'सी-दोन्यी' नामक इस त्योहार में तागिन लोग यह प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें हर प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों, बीमारियों एवं दुर्भाग्य से बचाए रखें। इसके अतिरिक्त इस पूजा/

त्योहार में खेतों में अच्छी उपज की भी कामना करते हैं। अपनी प्रार्थना की पूर्ति के लिए दोन्यी-पोलो के नाम से दो मिथुन की बलि चढ़ाई जाती है।

सी-दोन्यी तागिन जनजाति का सांस्कृतिक पर्व है, इसलिए इसे बहुत जोरों-शोरों और धूम-धाम से मनाया जाता है। सबसे मजे की बात तो यह है कि साल की शुरूआत के साथ-साथ इस त्योहार का भी आरंभ होता है। प्रतिवर्ष माह जनवरी की 4 से 6 तारीख तक 'सी-दोन्यी' का ही आधिपत्य होता है। इस त्योहार के अन्तर्गत तागिन समाज के विभिन्न सांस्कृतिक आयाम जिस प्रकार उभरकर सामने आते हैं, वह देखते ही बनता है।

जैसे कि सभी को विदित है कि कोई भी अनुष्ठान या पूजा-पाठ किसी पुजारी के बगैर संभव ही नहीं है। ठीक उसी प्रकार 'सी-दोन्यी' भी 'न्युबु' यानी स्थानीय पुजारी या धर्मगुरु द्वारा ही आरंभ, निर्वाह एवं सम्पन्न किया जाता है। 'न्युबु' का चयन भी एक विशेष प्रक्रिया के साथ गुजरकर किया जाता है। तागिन में उबले अण्डे या मुर्गी के बच्चे की अँतड़ी से भविष्यवाणी करने की परम्परा है। इस तागिन में 'पुप चिनम' और 'रु-कोकनम' कहते हैं। इसी प्रक्रिया के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि किस न्युबु द्वारा यह पूजा सम्पन्न की जा सकती है। कुछ बुजुर्ग जन आपस में बैठकर इस कार्य को अंजाम देते हैं। न्युबु के पश्चात् 'बुरी' (सहायक न्युबु) भी सर्वसम्मति के साथ चयनित होती है। यह सब क्रिया त्योहार के शुरू होने के चार-पाँच दिन पहले ही सम्पन्न की जाती है।

तीन दिवसीय इस त्योहार का पहला दिन आरंभ होता है- न्युबु के भव्य स्वागत से। न्युबु और बुरी अपने पूरे पारम्परिक पहनावे के साथ पूजा स्थल की ओर बढ़ते हैं और उनके पीछे-पीछे सभी 'पोनुड-दल' और आम जनता भी हो लेते हैं। पूजा स्थल एक खुला मैदान होता है, जिसमें हजारों लोग एक साथ एकत्र हो सके। वहाँ पहले से ही न्युबु के रहने के लिए एक पारम्परिक घर बना दिया जाता है, लेकिन उस घर पर न्युबु सीधा नहीं चढ़ जाता। इससे पहले वह कुछ विशेष मंत्रों का जाप करते हैं। कहा जाता है कि उस घर की सीढ़ी में कुछ स्थानीय पुजारी ईर्ष्या के मारे काँटे या कुछ ऐसी चीज़ बिछाते हैं, जिससे उस न्युबु को क्षति पहुँचे। उन्हीं बाधाओं को दूर करने के बाद ही वह ऊपर चढ़ते हैं। इस दौरान सभी पोनुड दल बड़े जोरों-शोरों के साथ नृत्य करते हुए न्युबु के घर चढ़ते हैं, चक्कर काटते हैं और फिर चले जाते हैं। इस तरह पहला दिन गुज़रता है।

पोनुड एक ऐसे सांस्कृतिक नृत्य को कहते हैं, जिसमें नर्तक खास हाथों से बुने कपड़े और बेशकीमती आभूषणों (स्थानीय) से अलंकृत होकर एक ही ताल और लय में नृत्य करते हैं। इस नृत्य का प्रदर्शन सामूहिक रूप में होता है। सी-दोन्यी में कई नर्तक दल देखे जा सकते हैं। प्रत्येक नर्तक दल का नेतृत्व करने वाले अपने-अपने न्युबु होते हैं। सभी पोनुड दलों के पहनावे, वस्त्र एक दूसरे से भिन्न होते हैं। उनमें जो समानताएँ पायी जाती हैं, वह हैं-

गाले - स्त्रियों द्वारा बुना हुआ कपड़ा

रुबीन - चाँदी से बनी बाली

देसि - पीतल से बना पतला गोल थाल, जिसे चमड़े या कपास से बने कमरबंध में गूँथा जाता है। कमर बंध में गूँथे देसि की संख्या सात होती है।

कोपू - नीले रंग की माला

ये समानताएँ विशेषतः स्त्रियों के पहनावे में पायी जाती हैं। सी-दोन्यी में 'अची रियाबु' के अलावा अन्य पुरुष नर्तक दल नहीं होता। फिर भी जितने लोग (पुरुष) इसमें शरीक होते हैं, स्वेच्छा से उनके पहनावे में निम्नलिखित समानताएँ पायी जाती हैं-

गोलोक - लाल रंग का कोट, जिसे स्त्रियाँ खास त्योहार के लिए बुनती है।

रियोक्से - तागिन समाज में सबसे कीमती तलवार। इसमें कुछ रेखाएँ खींची हुई होती हैं। उन्हीं रेखाओं की संख्या के आधार पर उसकी कीमत निर्धारित की जाती है।

रियोकपक - यह भी एक तलवार ही है, परन्तु रियोक्से की अपेक्षा इसे साधारण ही कहा जाएगा। रियोक्से की भाँति ये रेखायुक्त नहीं होती है। इसी कारण रियोक्से की तुलना में उसकी कीमत और महत्त्व कम होता है।

तासी - नीले रंग की माला।

बोतू या बोतुप - बेंत की रस्सी से बनी टोपी।

यू तो इस महोत्सव में पैंतीस से अधिक नर्तक दल भाग लेते हैं, परन्तु उनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं- 'अन्यी चूने', 'अची रियाबु' तथा 'ताकार गेने'। इनकी उत्पत्ति के संबंध में भी प्रचलित लोक कथा इस प्रकार है-

तागिन मान्यताओं के आधार पर 'अतु-सी' यानी धरती की रचना के समय कई देवी-देवता उसके भीतर से अवतरित हुए थे। इसी 'सी' या 'सेची' में से 'चूने' और 'रियाबु' नामक दो देवदूत भी बाहर आए। चूने स्त्री और रियाबु पुरुष रूप में। इसी कारण इन्हें अन्धी चूने और 'अची रियाबु' कहते हैं। 'अन्धी' यानी बड़ी बहन और 'अची' यानी बड़े भाई। यह दोनों ही अत्याधिक सुन्दर नृत्य करने में निपुण थे। नृत्य के साथ-साथ अन्धी चूने को पेमालाप करने में महारथ हासिल थी। 'अतु-सी' के भीतर से निकलने वाले अन्य सभी देवी-देवता भी अभूतपूर्व शक्तियों से सम्पन्न थे, लेकिन अपनी उन्हीं शक्तियों के घमण्ड में सभी देवी-देवता अपनी-अपनी सीमा का विस्तार करने लगे। वे सब एक-दूसरे को पराजित करके उनकी सीमा हड़पने में उतारू होने लगे। अतु-सी से यह सब नहीं देखा गया और गुस्से में आकर उन्होंने सृष्टि की गति को एकदम से स्थिर कर दिया। अब सृष्टि में जीवन लगभग समाप्त होने की कगार पर था। तब सभी देवी-देवताओं को अपने किये पर पछतावा होने लगा। अन्ततः वे इस समस्या का हल पूछने के लिए 'दोरीचिजी' नामक एक विद्वान के पास गए। दोरीचिजी ने पहले तो उनकी अवहेलना की, परन्तु बाद में थोड़ी सी उदारता दिखाते हुए यह सुझाव दिया कि तुम लोगों को अन्धी-चूने और अची-रियाबु के नेतृत्व में अतु-सी को पुनः प्रसन्न करना होगा। तत्पश्चात् अन्धी-चूने और अची-रियाबु सहित सभी देवी-देवता आनुष्ठानिक नृत्य करते हुए अतु-सी के समक्ष पहुँचे। उनके इस नृत्य से अतु-सी अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने सृष्टि में जीवन को पुनः गति प्रदान की। आज की तारीख में, सी-दोन्यी उत्सव में धरती में खुशहाली और गति को कायम रखने के लिए युवतियाँ एवं नौजवान लड़के अन्धी चूने और अची-रियाबु बनकर नृत्य करते हैं।

ताकार यानी तारागण, न्योदो-कोला यानी आकाश की बेटे के रूप में अवतरित हुई थी। वह आकाश में मौन रहकर अन्धी-चूने और अची-रियाबु द्वारा अतु-सी को मनाने के निमित्त जो आनुष्ठानिक नृत्य प्रदर्शन किया गया था, उसे गौर से देख रही थी। जब दोनों देवदूत अपने उद्देश्य से सफल हुए तो ताकार की खुशी की कोई सीमा न रही। अपने जज्बात से बेकाबू होकर ताकार ने भी एक समूह बनाकर, ताल एवं लयबद्ध होकर नृत्य करना आरंभ किया। इसलिए 'सी-दोन्यी' में देखी जा सकती है कि युवतियाँ एक समूह में तारा-धारक वस्त्र पहनकर नृत्य करती हैं। इसी नर्तक दल को ताकार गेने कहते हैं।

पूजा के दूसरे दिन सभी पोनुड दल एक-एक करके न्युबु के घर चढ़कर उसके 'मरम' यानी चुल्हा का चक्कर लगाते हैं। नृत्य करते हुए वे फिर वापस उतर जाते हैं। कहा जाता है कि यह न्युबु से आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु किया जाता है। इसके पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रम के तहत प्रतियोगिता में सभी नर्तक दल भाग लेते हैं, जिससे पूरे दिन मैदान दर्शकों से खचाखच भरा रहता है। इस प्रतियोगिता के दौरान कई लोक कथाएँ उनके नृत्य के रूप में उभरकर सामने आती हैं, जो आम या बाकी दिनों में केवल नेपथ्य में ही रहती हैं। पूजा का दूसरा दिन सांस्कृतिक कार्यक्रम के साथ ही समाप्त होता है।

पूजा का तीसरा और आखिरी दिन सबसे रोमांचक होता है। पूरा मैदान रंग-बिरंगे कपड़े पहने लोगों की भीड़ से भरा रहता है। उस वक्त ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह मैदान न होकर एक चलती-फिरती रंगशाला हो। उस मैदान की शोभा तक और बढ़ जाती है, जब सभी भाग-भाग कर एक दूसरे के ऊपर 'एटी' की बरसात करते हैं, जिसे 'चेपर' यानी ओखी में कूटकर पानी में घोला जाता है। इस एटी के बगैर सी-दोन्यी अधूरा ही कहा जाएगा।

अन्तिम दिन बलि चढ़ाने का दिन होता है, सो कई जनों द्वारा आपस में मिलकर एक 'न्येगी' या 'न्येगिड' यानी वेदी का निर्माण किया जाता है। इस वेदी की सामग्री के रूप में बाँस और कुछ कच्ची लकड़ियाँ ही प्रयोग में आती हैं। इस वेदी की 'सेतू' यानी नींव लगाते समय सी-दोन्यी गीत गाया जाता है। वेदी के निचले हिस्से में दो मिथुन बाँध दिये जाते हैं और हिस्से में न्युबु अपना कार्य कर रहे होते हैं। इस दौरान सभी नर्तक दल पूरे हर्ष-उल्लास के साथ उस वेदी का चक्कर लगाते हैं। उस समय एटी की बरसात चारों तरफ से होती है। मैदान में मौजूद बुजुर्ग और कुछ बड़े लोग भी अपने हाथ में तलवार लिये उस वेदी का चक्कर लगाते हैं। इसे तागिन में 'कोन्यी बोकर' कहते हैं। कहते हैं कि इस 'कोन्यी बोकर' में वे अपने शौर्य, ऐश्वर्य, पराक्रम और वीरता का प्रदर्शन करते हैं।

अब आता है समय बलि चढ़ाने का, दोनों मिथुन को वेदी की 'सेटू' यानी नींव में इस तरह बाँधा जाता है कि वह तिलमिलाकर भाग न सकें। मन्त्रों का जाप करते-करते न्युबु कुछ इशारा करता है, जिसे पाकर मिथुन की गरदन पर वार कर दिया जाता है। इस एक झलक को पाने के लिए हजारों की भीड़ लग जाती है। अतः औपचारिक रूप से इस महोत्सव का समापन यहाँ हो जाता है,

परन्तु अनौपचारिक रूप से यह कई दिनों तक चलता रहता है। फर्क सिर्फ इतना होता है कि अब मैदान खाली रहता है, परन्तु घर-घर में अब भी धूम मच रही होती है।

इस प्रकार प्रतिवर्ष जनवरी महीना तागिन समाज के लिए हर्ष-उल्लास, जोश और उत्साह का पैगाम लेकर आता है। चूँकि जनवरी महीने तक सारी फसल भी कट चुकी होती है। लोगो के

पास ज्यादा काम भी नहीं रहता, जिसमें वे व्यस्त रह सकें। इसी कारण इस महोत्सव में बच्चे-बूढ़े, अमीर-गरीब, सम्पन्न-विपन्न, साक्षर-निरक्षर इत्यादि सभी वर्ग के लोग बिना किसी भेदभाव के शरीक होते हैं। आखिर है तो यह त्योहार मानव मात्र के कल्याण के लिए ही। जीवन के इतने अनमोल दिन को भला कौन खोना चाहेगा। अतः मस्ती के इस अपार समन्दर में सब एक साथ गोता लगाते हैं।

बस्तर के कुम्हार

डॉ. राजेश सिंह

बस्तर में मिट्टी का कार्य करने वालों की कोई अलग संज्ञा नहीं है। बस्तर में उड़ीसा और आन्ध्रप्रदेश से कुम्हार आकर बस गये हैं। बस्तर के सभी कुम्हार अपने आपको उड़ीसा ओरांगाल क्षेत्र से आये हुए मानते हैं। इसलिए बस्तर के कुम्हारों की परम्पराओं और कलाकृतियों में उड़ीसा और आन्ध्र की संस्कृति और कला का प्रभाव आज भी दिखाई देता है। इस संबंध में कोंडागाँव कुम्हारपारा के वयोवृद्ध घसियाराम कुम्हार ने एक कथा सुनाई—‘हम लोग बहुत पहले उड़ीसा से बस्तर में आकर बसे। उड़ीसा से बारह भाई चले थे। कुछ लोग कहते हैं ये बारह भाइयों में से दो मुरिया-माड़िया थे। शेष कोई न कोई शिल्पकार और ब्राह्मण थे। उनमें पाँच भाई कुम्हार थे। कोई कहता है— हमें राजा भंजदेव के पूर्वज यहाँ काम करने के लिए लाये। पाँच भाइयों में से एक भाई बस्तर के ग्राम लोहरा में बसा, दूसरा आमाबेड़ा में, तीसरा बाँसकोटा, चौथा जगदलपुर और पाँचवा नारायणपुर में बसा। मेरे दादा-परदादा कहते थे— हम लोगों को राजा ने लड़ने के लिए बन्दूकें, लाठियाँ, टंगिया आदि दी थीं। जो हमसे उड़ीसा की सीमा में पानाबरस चौकी में जप्त कर ली गई। उसके बाद हम लोगों ने बरगद के पेड़ की छाया में विश्राम किया और निहत्थे बस्तर की ओर चल दिये थे। कुम्हारपारा में लगभग एक सौ से अधिक घर हो गये हैं। बस्तर में कई प्रकार के कुम्हार हैं— नाईक, जात, समरथ, पुरहित और रावतिया। नाईक कुम्हारों के राजा हैं। जात में भी दो प्रकार होते हैं। बड़े जात और दूसरे छोटी जात। उड़ीसा से आने वाले कुम्हार छोटी जाति के माने जाते हैं। समरथ कांवड़ उठाने वाले होते हैं। रावतिया बरतन बनाने के अलावा पानी भरने का भी कार्य करते हैं। इनकी भी दो शाखाएँ होती हैं। एक बड़े रावतिया, दूसरे छोटे रावतिया। सुरहित और पुरहित एक से स्तर के कुम्हार हैं। पुरोहित, सुरोहित और नाईक जगदलपुर से लगी उड़ीसा की सीमा में अधिक निवास करते हैं। इसके अलावा ये लोग सुकमा, कुसमरी, तुमनार में भी बसे हुए हैं। जो लोग लोहरा गाँव में आकर बसे थे, वे कुम्हार लोहरा कुम्हार कहलाने लगे।

महाराष्ट्र चन्द्रपुर के प्रसिद्ध कुम्हार भरोतराव खंडारे ने मुझे बताया कि कुम्हारों का मूल स्थान राजस्थान है। चित्तौड़गढ़ से कुम्हार देश के कोने-कोने में गये और जो जहाँ रहे वे उसी संस्कृति में ढल गये और वे वहीं के कहलाने लगे। पूरे देश में दो जाति के कुम्हार

हैं, एक राना और दूसरे प्रजापत। महाराष्ट्र में राना की बोली मराठी है और प्रजापतों का पहनावा, रीति-रिवाज और बोली मारवाड़ी है। दक्षिण में लिंगायत लोग कुम्हार होते हैं। आन्ध्र में कुम्हार कुम्भरोल्ल कहलाते हैं।

कुम्हारों में समगोत्री विवाह नहीं होते। लेकिन मामा-फूफा के बच्चों में विवाह हो जाते हैं। बस्तर के कुम्हार विवाह मंडप में मिट्टी की बनी रूखी और करसा रखते हैं। कुम्हारों में चिरचोली भांवर होते हैं। इनमें केवल दुल्हन की भांवर पड़ती है। कुम्हार युवक-युवतियाँ झलियाना और डाँडामाली नृत्य, नगड़िया और डफ वाद्य पर समूह में नृत्य करते हैं। लेजा एक प्रकार का विशेष लहजे में गाये जाने वाला विवाह गीत है।

बस्तर के कुम्हारों में मृतक के दफनाने और जलाने दोनों प्रथा प्रायः देखी जाती है। मुरिया-माड़िया आदिवासियों की तरह कुम्हार जाति भी स्थानीय देवी-देवताओं को मानती है। पर्व-त्योहार, सगाई-विवाह आदि में कुम्हारों के धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाज आदिवासियों के समान हैं। फर्क यह है कि एक संस्कृति के होते हुए भी कुम्हार लोग बस्तर में आदिवासी नहीं माने जाते हैं।

बस्तर में पारम्परिक मिट्टी शिल्प निर्माण के चार प्रमुख केन्द्र हैं। नगरनार, कुम्हारपारा, कोंडागाँव, नारायणपुर और एड़का। नगरनार जगदलपुर से 20-22 किलोमीटर उड़ीसा की सीमा से लगा हुआ गाँव है। ठेटगाँव तक दिन में एक ही बस आती-जाती है। वर्ना पैदल पहुँचना पड़ता है। यहाँ कुम्हारों के 35-40 घर हैं। यह कुम्हारों की लगभग सौ वर्ष पुरानी बस्ती है। यहाँ वृन्दावन कुम्हार और चन्दनसिंह जैसे विख्यात कुम्हार हुए, जिन्होंने नगरनार के मिट्टी शिल्प को देश और विदेशों में विस्तार दिया। इस समय यहाँ श्री झितरूराम सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में से एक हैं। चन्दन कुम्हार की अभी-अभी सौ वर्ष से अधिक उम्र होने के बाद मृत्यु हुई। वृन्दावन बहुत पहले भारत महोत्सव लन्दन में शिरकत कर चुके थे। यहाँ सभी कुम्हार मूर्तियों का काम नहीं करते। चालीस घरों में से 20-22 घर के कुम्हार मूर्तियाँ बनाते हैं, शेष बतरन बनाकर जीविकोपार्जन करते हैं। इस समय सर्वश्री झितरूराम, लक्ष्मीधर, मछीन्दर, महादेव, बलिहार, बूटीराम, बनसिंह, शंकर, सोनाधर नाग श्रेष्ठ शिल्पियों में गिने जाते हैं। नई युवा पीढ़ी के विद्याधर

नाग, विद्यासागर, बंगुराम, महादेव, मिठूराम आदि मिट्टी के कलात्मक काम में लगे हुए हैं।

कुम्हारपारा गोंडागाँव से नारायणपुर सड़क पर सात-आठ किलोमीटर दूर स्थित है। कुम्हारपारा में इस समय सौ से अधिक कुम्हार घर हैं। सभी आपस में एक दूसरे के सगे संबंधी हैं। बस्तर में कुम्हारों का यह सबसे बड़ा केन्द्र है। कुम्हारपारा में कुम्हारों के सौ घर दो पाराओं में बसे हुए हैं। सड़क के इस पार असुरापारा और उस पार कुम्हारपारा। मैंने घसियाराम से यहाँ इतने कुम्हार होने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया-यहाँ की मिट्टी इसका सबसे बड़ा कारण है। कुम्हारपारा की मिट्टी इतनी इच्छी और मजबूत है कि मूर्तियाँ पक जाने पर पक्की हो जाती है और यह तो मालूम ही है कि हम कुम्हारों का मिट्टी से कितना पुराना गहरा नाता है। प्राचीन काल से कुम्हार वहीं बसते रहे हैं, जहाँ की मिट्टी संस्कारित होती है, मतलब उसके गुणों के कारण मिट्टी असाधारण रूपाकार धारण करने की क्षमता रखती हो। घसियाराम ने अपनी आँखों चमक लाकर कहा-और कुम्हार लोग तो मिट्टी को हाथ में लेते ही पहचान लेते हैं। धरती बनी तब से कुम्हार और मिट्टी का वास्ता पड़ा है और तो और हम मिट्टी गूँथते-गूँथते एक दिन मिट्टी में मिल जाते हैं। कुम्हारों की यही कहानी है। कुम्हारपारा के सभी कुम्हार मूर्तियाँ नहीं बनाते। सौ घरों में से बीस-पच्चीस व्यक्ति ही मूर्तियाँ बनाते हैं। शेष बतरन बनाकर जीवनयापन करते हैं। पैंतीस वर्षीय जगदेव और तीस वर्षीय सहदेव कुम्हार देश के अनेक प्रतिष्ठा आयोजनों में शिरकत कर चुके हैं। ये दोनों कोंडागाँव कुम्हारपारा के श्रेष्ठ कलाकारों में से हैं। इनसे बड़ी उम्र के अच्छे कलाकारों में परवत्या, राजूराम, महादेव, गंगाराम, बलदेव 45 वर्ष के हैं। युवा मिट्टी शिल्पियों में दयाराम, अशोक, मदनलाल, तुलसीराम, वीरसिंह, रेनूराम, चन्दरू, शंकर जगत्तराम आदि हैं।

नारायणपुर के कुम्हारपारा में 20-25 घर कुम्हारों के हैं। सभी बतरन बनाते हैं। मूर्ति बनाने का कार्य पाँच-छह घरों में ही देखने को मिला। चालीस वर्षीय शंभू कुम्हार का कार्य देखने से लगा कि उसके मिट्टी शिल्प एक अलग पहचान रखते हैं। उनमें आदिम रूपाकार और पारम्परिक अलंकरण मौजूद दिखाई दिये। इस रूप में श्री शंभू एक श्रेष्ठ शिल्पी की संभावना से युक्त लगे। दूसरे शिल्पकार तीस वर्षीय सरवण कुम्हार का काम भी आकर्षित करने वाला है। इसके अतिरिक्त नारायणपुर में राजू, बैशाखू और

गुलाब मिट्टी की पारम्परिक मूर्तियाँ बनाने का कार्य करते हैं।

एड़का नारायणपुर से लगभग 30-35 किलोमीटर दूर स्थित एक छोटा सा गाँव है। यहाँ पहुँचने का मार्ग अत्यन्त कठिन है। बरसात में तो एड़का पहुँचना मुश्किल होता है। एड़का जंगल में बसा एक ग्राम है, जहाँ कुम्हारों के सत्ताईस घर हैं। इनमें तीर-चार घर में ही मूर्ति बनाने का कार्य होता है। यहाँ मिट्टी के बड़े आकार के और अलंकृत हाथी बनाये जाते हैं। सबसे बुजुर्ग कलाकार श्री देवनाथ ने बड़े अलंकृत हाथी बनाने में विशेष ख्याति अर्जित की है। एड़का के दूसरे कलाकार 35 वर्षीय रोशनलाल हैं। इनका कार्य विशेष रूप से आकर्षित करने वाला है। बहादुर और रोशनलाल देश के प्रतिष्ठा आयोजनों में हिस्सा ले चुके हैं।

जगदलपुर के कुम्हारपारा में बीस-पच्चीस घर कुम्हार रहते हैं। जगदलपुर में मूर्तियाँ बनाने का कार्य बहुत कम होता है। पर्व-त्योहार पर ये लोग आनुष्ठानिक पशु और देवी मूर्तियाँ बनाते हैं। सामान्य बातचीत में तुलसीराम कुम्हार ने बताया कि जगदलपुर में गोरिया और ओड़िया कुम्हार रहते हैं। ओड़िया कुम्हारों को गोरे काले की तर्ज पर गोरिया-करिया कुम्हार भी कहते हैं। यह कहावत जगदलपुर क्षेत्र में प्रचलित है। जगदलपुर के कुम्हार पोला और नवाखानी पर्व पर बैल, बेन्द्री और लड़कियों के लिए रसोई के छोटे-छोटे बरतन आदि अधिक बनाते हैं। इन प्रमुख केन्द्रों के अलावा दन्तेवाड़ा, कुम्हाररास, तुमनार, भैरमगढ़, सुकमा, कुकानार, कोकावाड़, करणपुर, डोढ़ी लुहारा, कांकेर में पंडरीपानी, करुण, मीरीपारा सातलोटा, कन्हनपुर, देवरी, धनेसरा में रहने वाले कुम्हार मिट्टी से सम्बन्धित पारम्परिक काम करते हैं।

बस्तर के कुम्हारों में बारह गोत्र प्रचलित है। आदिवासियों की तरह कुम्हारों का जीवन टोटेमिक है। कुम्हार अपने गोत्र चिह्नों की रक्षा करते हैं। गोत्र की आन रखने और चिह्नों की सम्मान रक्षा के लिए कुम्हार समाज कई निषेधों का अक्षरशः पालन करता है।

सर्वेक्षण के दौरान कुम्हारों के गोत्र और गोत्र चिह्न मिले हैं। कुम्हारों के सभी गोत्र मिथकीय हैं। बस्तर में आठ प्रकार के नाग गोत्र हैं। शंकर जटा में रहने वाले दूधनाग, धूल या रेत में रहने वाले धूलीनाग, सुकली, तम्बा आदि हैं। नागगोत्र वाले नाग की पूजा गोत्र के अनुरूप करते हैं, दिख जाने पर हाथ जोड़ते हैं, मारते नहीं

हैं और न उलाँघते हैं। चन्दन गोत्र का चिह्न वृक्ष है, चन्दन गोत्री चन्दन का टीका नहीं लगाते और न ही उसे काटते हैं। गोही गोत्र गोही गोरपड़ से बना है, गोही का दिखना शुभ माना जाता है। दिखने पर गोही के हाथ जोड़ते हैं। बघेल गोत्र बाघ से बना है। बोकड़िया गोत्र का गोत्र चिह्न केकड़ा है। ये केकड़ा नहीं खाते। सोनबस गोत्र चिह्न वाले सोना नहीं पहनते, पूजा करते हैं। रावतिया का गोत्र चिह्न कांवड़ है, क्योंकि ये पानी भरने का कार्य करते हैं। कचिम गोत्र वाले सबसे उत्तम माने जाते हैं। कचिम का गोत्र चिह्न कछुआ है। बस्तर में कुम्हार गोत्र को बस कहते हैं। झापराइया बस के लोगों का गोत्र चिह्न मछली है। मताम गोत्र वालों का चिह्न कुत्ता है। ये लोग कुत्ते की पूजा करते हैं। फाटक गोत्र वाले फाटक की पूजा करते हैं। पीढ़ा गोत्री लकड़ी के पीढ़े पर नहीं बैठते, पैर लग जाने पर अपराधबोध महसूस करते हैं और हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हैं।

नये चलन को देखते हुए कुम्हारों ने अपने गोत्र नामों में आंशिक परिवर्तन कर लिये हैं। गोही गोत्र वाले गोही के स्थान पर गौतम, कचिम की जगह कश्यप, नाग की जगह नागेश लिखने लगे हैं। कुम्हारों की धारणा है कि भगवान ने पहले उन्हें ब्राह्मण का रूप दिया था। लेकिन जनेऊ का उपयोग चाक पर से बरतन काट लेने के कारण कुम्हार ब्राह्मण धर्म से च्युत हो गये। इसके बारे में एक मिथ कथा सुनने को मिली। एक गाँव में एक कुम्हार पहले पहल चाक पर बर्तन बना रहा था। अचानक भगवान उसके सामने उपस्थित हो गये। भगवान को देखकर कुम्हार आश्चर्य में पड़ गया। उसने आसपास कोई चीज ढूँढी, लेकिन चीज नहीं मिलने पर अपनी जनेऊ तोड़कर चाक पर से बरतन काट दिया और हाथ जोड़कर भगवान के सामने खड़ा हो गया। ऐसा करते हुए देखकर भगवान अप्रसन्न हो गये। भगवान ने क्रोध में कहा- आज से तुम्हारा ब्राह्मण धर्म समाप्त हो जायेगा और तुम हमेशा ऐसी ही गिरी हालत में रहोगे। कहते हैं- कुम्हारों की आर्थिक हालत इसी कारण गिरी हुई रहती है। ब्राह्मण होने के अवशेष गोत्र के रूप में आज भी पाये जाते हैं। कुछ कुम्हारों में आज भी पांडे गोत्र प्रचलित है।

बस्तर के कुम्हार अपने गोत्र चिह्न का प्रयोग अपने पारम्परिक शिल्पों में करते आये हैं। अनेक कृतियों में नाग, कछुआ, केकड़ा,

बिच्छू, चन्दन वृक्ष, फूल पत्तियाँ आदि का अंकन देखा जाता है। बाघ, हाथी, घोड़ा, नदिया आदि की मूर्तियाँ बनाने और पूजा के पीछे भी उनकी पराशक्ति और उपयोगिता का एहसास होता ही है। श्री निरंजन महावर ने छत्तीसगढ़ के मृणमूर्ति शिल्प लेख में इसका उल्लेख करते हुए लिखा है- मृण्यमूर्तियाँ भेंट करने के पीछे ग्रामीणजन का ऐसा पशुओं की पराशक्तियों में आस्था होना माना जाता है। इन निर्जीव मृण्य मूर्तियों में सिंह, बाघ, नन्दी, घोड़े आदि में निहित पराशक्ति को मानव के वश में करने की भावना निहित होती है। जिन पशुओं का वे वास्तविक जीवन में अनेक बार आखेट करते हैं या उन्हें अपने वश में करके उपयोग में लाते हैं, उन्हीं की अलौकिक शक्तियों से भयाक्रान्त रहते हैं तथा उसके शमन हेतु वे अपने देवी-देवताओं की आराधना करते हैं।

बस्तर के कुम्हार घरों में सूअर नहीं पालते। कुम्हारों में सल्फी, दारू और माँस का चलन नहीं है। लेकिन आजकल कुम्हारों में सल्फी और दारू का चलन कई लोगों में देखा गया है। लोग व्यक्तिगत तौर पर शराब और मांस मुर्गा दोनों का सेवन करते हैं। नवाखानी, पोला, दशहरा, दीवाली, होली प्रमुख त्योहार हैं। विष्णु के अवतार भगवान नृसिंह की पूजा साल में एक बार गाँव के सभी कुम्हार मिलकर करते हैं। नृसिंह जयंती वैशाख पूर्णिमा को मनाई जाती है। बस्तर के कुम्हार साल भर चाक चलाना बंद नहीं करते, लेकिन नृसिंह जयन्ती के दिन कोई भी कुम्हार चाक नहीं चलाता है। कुम्हारों की मान्यता है कि नृसिंह जयंती पर कोई कुम्हार चाक चलाता है तो उसके बरतन फूट जाते हैं। नृसिंह भगवान की पूजा मिट्टी की मूर्ति बनाकर की जाती है। पूजा में फूल, चावल और नारियल चढ़ाया जाता है। स्त्री और पुरुष उस दिन व्रत रखते हैं। नृसिंह भगवान की पूजा और प्रतिष्ठा के पीछे भक्त प्रह्लाद की कथा है। भक्त गोरा कुम्हार के आवा में से बिल्ली के बच्चे जीवित निकलते हुए देखकर बालक प्रह्लाद को भगवान की भक्ति करने की प्रेरणा मिली थी। नृसिंह भगवान ने उसके क्रूर पिता हिरण्यकश्यप का वध कर प्रह्लाद को भक्ति के लिए निरापद कर दिया था, इसलिए कुम्हार लोग अपने पूर्वज गोरा कुम्हार की स्मृति और प्रह्लाद के सम्मान स्वरूप नृसिंह जयन्ती मनाते हैं।

बस्तर में तीन प्रकार की मिट्टी की पहचान की गई है। एक काली, दूसरी लाल और तीसरी सफेद पाण्डर मिट्टी। इनमें काली

मिट्टी पात्र और मूर्तियाँ बनाने के काम में सबसे उपयुक्त है तथा पाण्डर मिट्टी घरों और बर्तनों की पुताई के लिए उपयोग में आती है। काली मिट्टी में अधिक चिकनाई और लोच होती है। काली मिट्टी में मजबूती और रूपाकार धारण करने की अपूर्व क्षमता होती है। मूर्तियाँ और बर्तन बनाने की मिट्टी अलग-अलग नहीं होती। बरतन बनाने के लिए जिस मिट्टी का उपयोग किया जाता है, उसी मिट्टी से मूर्तियाँ भी गढ़ी जाती हैं। मिट्टी की पहचान करने में कुम्हार सिद्धहस्त होते हैं। बनऊराम नाग का कहना है- मिट्टी की परीक्षा के लिए उसके ढेले पर हाथ से थोड़ा पानी टपकाया जाता है। यदि मिट्टी पानी पड़ते ही बिखर जाती है तो उसे अच्छी मिट्टी नहीं समझा जाता और यदि वह मिट्टी पानी पड़ते ही सोख ले और बिखरे नहीं तो वह सबसे अच्छी मिट्टी होती है। तालाब और नदी की मिट्टी बरसात के दिनों में बाढ़ में किनारे-किनारे इकट्टी हो जाती है। जो पानी के निरन्तर सम्पर्क के कारण विशेष गुण धारण कर लेती है। उसमें एक महीन लोच पैदा हो जाती है। वैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कीचड़ में पानी के वाष्पीकरण के साथ जो रासायनिक प्रक्रिया होती है, उसमें अनेक और गैसों मिल जाती है। इसी के कारण तालाब और नदी के किनारे की मिट्टी विशेष लचीली और चिकनी हो जाती है। तालाब या नदी जिस गाँव में नहीं होती है, वहाँ खेत की काली मिट्टी का उपयोग किया जाता है। काली मिट्टी में नदी की बालू रेत मिलाने की प्रथा बस्तर में है। मिट्टी को आटे की तरह गूँथने के बाद उसमें रेत मिलाई जाती है। रेत मिलाने का कार्य प्रायः घर की महिलाएँ करती हैं। रेत मिलाने से मिट्टी में रूप धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है। रेत मिलाने से मिट्टी में मजबूती के साथ रन्ध्रों के व्यास की न्यूनता होती है, जिसकी वजह से मिट्टी में पानी की प्रतिरोधिता और चिकनापन बढ़ जाता है, जो बरतनों और मूर्तियों में भी मौजूद होती है। रेत के गुण धर्म के कारण 800 से 1200 डिग्री तक मिट्टी को ताप सहने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। भट्टी में कुम्हारों को 800 से 1200 डिग्री सेन्टीग्रेड ताप की आवश्यकता होती है। बरतनों और मूर्तियों की संख्या के हिसाब से पारम्परिक कुम्हार ईंधन लगाना जानते हैं।

जगदलपुर में सफेद, नगरनार में काली, कुम्हारपारा कोंडागाँव में काली, नारायणपुर में पीली भूरी और एड़का में पीली मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। इन सभी मिट्टी में बालू रेत और कहीं-कहीं

पाण्डु मिट्टी मिलाकर मूर्तियाँ तैयार की जाती हैं।

बस्तर में मूर्तियाँ बनाने की प्रक्रिया को अति प्राचीन कहा जा सकता है। सबसे पहले तालाब, नाला, नदी या खेत से मिट्टी खन्ता से खोदी जाती है। गर्मी में सूखी मिट्टी और बरसात में गीली होती है। घर में मिट्टी लाकर उसे पत्थर कंकड़ रहित किया जाता है। ढेकले बारीक किये जाते हैं, जिसे माटी रोकना कहते हैं। बारीक होने पर उसमें पानी डाल-डालकर मिट्टी को भिगोया जाता है। जहाँ नदी किनारे और तालाब की मिट्टी का प्रयोग किया जाता है, वहाँ मिट्टी रोकने में अधिक श्रम नहीं लगता। मिट्टी रोकने के बाद छोटे लोंदे तैयार कर एक बड़ी पिण्डी बना ली जाती है। छोटे लोंदे जमीन पर टाट बिछाकर बनाये जाते हैं। बड़ी पिण्डी भी टाट के ऊपर जमायी जाती है। फिर पानी छींट दिया जाता है। ऊपर से एक बारीक कपड़ा या टाट लपेट दिया जाता है। कपड़ा या टाट लपेटने से जितनी वायु की आवश्यकता होती है, उतनी पिण्डी को मिल जाती है। पिण्डी रातभर इसी हालत में रखी जाती है। दूसरे दिन सुबह बाँस की दूरी जिसे कमठी कहते हैं, कमठी से पिण्डी के सामने बैठकर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी खुरचकर बारीक कंकड़-पत्थर निकाल लिया जाता है। इन सारे कार्यों में सहयोग प्रायः घर की महिलाएँ करती हैं। मिट्टी चलाने के बाद मिट्टी रेत मिलाने के लिए तैयार होती है। दो भाग मिट्टी में लगभग एक भाग नदी की बालू रेत मिलाई जाती है। पहले जमीन पर रेत बिछा दी जाती है। फिर पिण्डी वाली सारी मिट्टी को फैला दिया जाता है। महिलाएँ इस मिट्टी को पैरों से गूँथती जाती है और पैरों से ही उलटती-पलटती जाती हैं। एक से दो घण्टे में मिट्टी में रेत, रेत में मिट्टी अच्छी तरह से मिल जाती है। फिर मिट्टी को एक घण्टे हाथों से चिकियाते हैं। अब छोटी पिण्डियाँ बनाकर रख ली जाती हैं, जिसे एक जगह कूड़ा कर देना कहते हैं। यह मिट्टी चाक पर चढ़ाने के लिए तैयार है। मिट्टी के काम में आलसीपन या ढीलेपन की बिल्कुल जगह नहीं होती। एक के बाद दूसरी प्रक्रिया निरन्तर जारी रहती है। यदि थोड़ी भी लेट तलीफी हुई कि मिट्टी सूखने में देर नहीं करेगी और पहले की गई मेहनत अकारथ चली जायेगी। इसलिए कुम्हार को मिट्टी के साथ सदैव सजग और संवेदनशील रहना पड़ता है।

चाक का निर्माण स्वयं कुम्हार ही करते हैं। चाक लकड़ी,

बाँस, मिट्टी, पुआल और रस्सियों का बना होता है। बस्तर में कुम्हार चाक को चायक या चाईक कहते हैं। चाक के बीच-बीच लकड़ी की गोल मठोनी होती है। बाही के सहारे बाँस की पतली चिपों का घेरा बनाया जाता है। इस घेरे पर गीली और मोटी-मोटी पुआल रस्सी के सहारे बांध दी जाती है। फिर उस पर मिट्टी लगाई जाती है। चाक के लिए साधारण मिट्टी का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसके लिए बमीठे की मिट्टी लाई जाती है। मिट्टी को कीचड़नुमा भिगोकर उसमें पुआल के टुकड़े डाल देते हैं, घेरे में बँधे हुए पुआल के ऊपर इस मिट्टी को अच्छी तरह लीप दिया जाता है। दो-चार दिन धूप में सूखने के लिए रख दिया जाता है। सूखने के बाद गोबर पीली मिट्टी से चाक को लीप दिया जाता है। मिट्टी के सूखने के बाद वह इतना मजबूत हो जाता है कि यदि उस पर हथौड़ी भी मार दी जाय तो वह फटता नहीं।

चाक जिस तिकोन पर चलता है, उसे गोटी पखना कहते हैं। जहाँ चाक चलाना होता है, वहाँ गोटी पखना को जमीन में गाड़ दिया जाता है। इस तरह चाईक तैयार हो जाता है। कहीं-कहीं पत्थर के चाक का प्रयोग भी करते हैं। लेकिन मिट्टी का चाक ही सबसे अच्छा माना जाता है। आजकल बिजली से चलने वाले और बाल-बेरिंग चाक उपयोग में लाये जाते हैं। चाक घुमाने के दो तरीके हैं। एक हाथ और दूसरा लकड़ी से। बस्तर में चाक हाथ से घुमाया जाता है। झुककर दोनों हाथ से उल्टी तरफ चाक को तेज गति से घुमाया जाता है। लकड़ी से घुमाने वाले कुम्हार बैठकर ही चाक घुमाते हैं। चाक की गति हाथ से रोकी जाती है। रुकने पर चाक एक तरफ ढलक जाता है। चाक कुम्हार के कर्म और जाति का प्रतीक है। चाक में किसी प्रकार के देवता का वास नहीं माना जाता, लेकिन कभी-कभार चाक की पूजा अवश्य कर लेते हैं। चाक पर मिट्टी मढ़ते समय कुम्हार लोग शिव का नाम लेते हैं और उस पर शिव लिंगी के अनुरूप मिट्टी के लोंदे को बनाते हैं।

छोटी मूर्तियाँ बेन्द्री, बेल, घोड़े आदि हाथ से ठोस बनाये जाते हैं, लेकिन बड़े आकार की मूर्तियाँ चाक पर पोली बनाई जाती हैं। पहले पशु मानव और बड़े दीपक आदि के अलग-अलग हिस्से चाक पर तैयार किये जाते हैं। फिर हाथ से अलग-अलग अंगों को जोड़ दिया जाता है। जोड़ने का कार्य मिट्टी की

गीली अवस्था में ही किया जाता है। जरा भी देरी करने पर मिट्टी के सूख जाने के बाद अंगों का जुड़ना असंभव हो जाता है। और पूर्व में की गई मेहनत बेकार जाती है। इसका ध्यान कुम्हार सदैव रखते हैं और समय पर कार्य पूरा करते हैं। चाक पर कार्य करते समय आवश्यक वस्तुएँ कुम्हार की बैठक के पास रखी जाती है। पानी रखने के लिए टोकसी, मिट्टी साफ करने के लिए कडरी, झोला, लकड़ी, पैरा की राख, काटने के लिए धागा पास में होना अनिवार्य है। बरतन बनाने की प्रक्रिया में सुबह, दोपहर और शाम को अलग-अलग कार्य होता है। ब्रह्म मुहूर्त से लगाकर सुबह सात-आठ बजे कुम्हार का कार्य बरतनों को घड़ना, दोपहर को पेटना होता है। जिसे क्रमशः घड़तो और पेटतो कहते हैं, पेटतो में तीन क्रियाएँ होती हैं। पहली उघलना, दूसरी उसकाना और तीसरी चिकनाना। पीटना और लोढ़ी बरतनों को पीटने अर्थात् बड़ा करने के औजार हैं।

मूर्तियों के निर्माण में हाथ और चाक दोनों का कार्य होता है। चाक पर पहले पशु के आवश्यक अंग बेलन के रूप में बनाते हैं, जैसे हाथी, घोड़ा बनाना हो तो पहले पैर बना लिये जाते हैं, फिर पेट का बड़ा हिस्सा ढोलकनुमा बनाया जाता है। मुंडी गोल बनाकर बाद में रोप देते हैं। घोड़ा हो तो मुंडी लम्बी बेलनाकार होती है। हाथी के लिए सूंड, कान लटकाते हैं। यदि हाथी पर देवी माता बैठानी होती है तो हमारी या हौदा हाथी के पीठ पर अलग से बनाकर जोड़ा जाता है। हौदे का छत्र चाक पर बनाया जाता है। मिट्टी मूर्तियों का सिंगार हाथ से किया जाता है। फूल बाती हाथ से बनाकर चिपकाई जाती है। गोटी मिट्टी के गोल-गोल आकृतियाँ होती हैं, जो अलंकरण में सबसे अधिक उपयोग आती है। घाटियों अर्थात् घण्टियों का अलंकरण हाथी में सबसे अधिक किया जाता है। घाटियों का निर्माण चाक पर आवश्यकतानुसार छोटे-बड़े आकार में किया जाता है। बारीक रेखा के लिए मिट्टी के लम्बे-लम्बे मोटे धागे को पीढ़ा पर गढ़कर लगाये जाते हैं। सबसे अधिक समय कृतियों के सिंगार में लगता है। इन सब कार्य के लिए कुम्हार को धैर्य और साहस रखना जरूरी होता है, वरना सिंगार अधूरा रह सकता है। एक ही लम्बी बैठक में सिंगार करना जरूरी है। घोड़े पर भी घण्टियाँ बहुत लगाई जाती हैं, घोड़े का सम्पूर्ण श्रृंगार घुँघरुओं से किया जाता है। बैठे हुए नन्दी का अलंकरण विशेषरूप से गर्दन, पीठ पर किया जाता है। देवी मूर्तियों में गले

का हार हाथ में कंगन और उनके सिंहासन का सिंगार सबसे अधिक किया जाता है। हाथी, घोड़े और बैलों के पैरों में घुँघरु नेऊर का सिंगार किया जाता है। पशुओं के मस्तक पर सिंगार अनुपम होता है।

बस्तर के हाथी घोड़े, बैल, गाय की आकृति का साम्य उड़ीसा में बनायी जाने वाली टेराकोटा मूर्तियों से अधिक मिलता है। हाथी, घोड़े नन्दी के अलंकरण की विद्या दक्षिण के मंदिरों से आई है, ऐसा लगता है, क्योंकि दक्षिण के मंदिरों में पत्थर के हाथियों में इसी प्रकार की सजावट मिलती है। हो सकता है उड़ीसा के कुम्हार दक्षिण की इस कला से प्रभावित रहे हों और वही प्रभाव बस्तर में उड़ीसा के कुम्हारों के साथ चला आया हो। बस्तर में हाथियों का अगला भाग कुछ मोटा और भारी तथा पिछला भाग कुछ पतला होता है, इससे बस्तर के हाथियों का अगला हिस्सा कुछ उठा हुआ और मोटा दिखाई देता है। घोड़े का बदन छरहरा और बीच का हिस्सा कुछ लम्बा बनाने की प्रथा बस्तर में सब दूर से दिखाई देती है। गाय, बैल, नन्दी की टांगें अपेक्षाकृत लम्बी होती हैं, मनुष्य आकृतियों में बस्तर के मुरिया-माड़िया, भतरा और उड़िया लोगों के नाक-नक्श, श्रृंगार की छबि सहजता से देखी जा सकती है। पोला, नवाखानी के अवसर पर बनाए जाने वाले बेन्द्री और बैल आदिम कला के जीवन्त प्रतीक हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता के जो मिट्टी के खिलौने मिले हैं, उनमें बेन्द्री और बैल दोनों हैं। उस समय की बेन्द्री और बैल की आकृतियों से वर्तमान में बस्तर की बेन्द्री और बैल से मिलती जुलती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि बस्तर का मिट्टी शिल्प आर्य सभ्यता से प्रभावित था। मिट्टी के बैलों की पूजा भारतीय किसान या कृषि संस्कृति का प्रतीक है। आज भी बेन्द्री और बैल के खिलौनों में सिन्धु घाटी के खिलौनों की तरह मिट्टी के चके लगाये जाते हैं। बेन्द्री बनाये जाने और उसकी पूजा का औचित्य क्या हो सकता है? बेन्द्री के साथ एक छोटा बच्चा भी बनाया जाता है, जो उसके पेट से चिपका होता है। बेन्द्री शायद माँ और बच्चे का प्रतीक है। पशुओं में बन्दर से अधिक अपने बच्चे के प्रति अधिक ममता रखने वाला कोई दूसरा प्राणी नहीं दिखाई देता। बन्दरिया हमेशा अपने बच्चे को छाती से लगाये रहती है। इसीलिए प्राचीन मानव ने उसे माँ और बच्चे के रूप में प्रतीक चुना होगा। विभिन्न प्रकार के कलात्मक और सादे दीपक बनाने की प्रथा बस्तर में है।

बरतन और मूर्तियों पर सूखने के बाद मिट्टी की पालिश की जाती है। पालिश के लिये विशेष प्रकार की मिट्टी का प्रयोग किया जाता है, जिसे पांजन मिट्टी कहते हैं।

पांजन मिट्टी का हंडी में घोल तैयार किया जाता है। इस घोल को दस-बारह दिनों तक सड़ाते हैं। फिर गाढ़ा होने तक उबालते हैं। इस तरह पालिश तैयार हो जाता है। घोल ठण्डा होने के बाद उसमें आवश्यकतानुसार पानी मिलाते हुए सूखे हुए बरतनों पर कपड़े के सहारे से पोत देते हैं। पोते हुए सभी बरतन और मूर्तियाँ अब पकाने के लिए तैयार हैं। आँवा प्रायः घर के खुले आँगन में लगाया जाता है। बस्तर में आँवा के लिए गड्ढा नहीं खोदा जाता। समतल जमीन पर ही आँवा लगाया जाता है। दो तरफ या कम से कम एक तरफ डेढ़ या दो मीटर ऊँची दीवाल हो तो उत्तम होता है। इससे हवा का प्रकोप रुक जाता है। आँवा के नीचे पहले लकड़ियाँ बिछाते हैं। उस पर धान का पैरा बिछा दिया जाता है। पैरे के ऊपर सावधानी से मूर्तियाँ आड़ी-तेड़ी जैसी सुविधा हो, जमा दिये जाते हैं। उसके ऊपर फिर पैरा बिछा दिया जाता है। पैरा के ऊपर पानी छींटते हैं। इस पर तालाब या नदी की चिकनी मिट्टी लीप देते हैं। आँवा में आग लगाने का समय प्रायः शाम का होता है। चारों ओर से पैरा के सहारे आग लगा दी जाती है। डेढ़ दो घण्टे से आँवा चारों तरफ सुलगने लगता है। तब तक सतर्कता से निगरानी आवश्यक होती है। जहाँ छेद मालूम पड़ता है वहाँ पैरा लगा देते हैं। हवा ज्यादा नहीं होनी चाहिए। आँवा के ऊपरी भाग से लिये हुए चिकला में से धुँआ उठते रहना चाहिए। आँवा में धुँआ रोका नहीं जाता। आँवा से दो-ढाई घण्टे के बाद लाल लौ निकलने लगे तो समझा जाता है कि बरतन अच्छे पक रहे हैं और उनका रंग लाल होगा। नीली लौ होगी तो बरतन काले और खंजर होने की सम्भावना होती है। मूर्तियों को काला करने के लिए धुँए को ऊपर निकलने के सारे रास्ते बन्द कर देते हैं, अर्थात् आँवा के ऊपर अच्छी लिपाई कर दी जाती है। बरतनों को अन्दर से काला करने के लिए कण्डे का एक टुकड़ा बरतन के अन्दर आँवा में जमाते समय रख दिया जाता है। आँच से पता लग जाता है कि आँवा ठण्डा है या गरम। हवा ज्यादा चल रही हो तो मूर्तियाँ कच्चे रहने और टूटने-फूटने की सम्भावना रहती है। यदि मूर्तियाँ ठीक से सूखी नहीं हैं और वैसी ही आँवा में रख दी जाती है तो मूर्ति निश्चित रूप से फूटने या तिड़कने का डर रहता है। ठण्डा होने पर

आँवे में से मूर्तियाँ निकाली जाती है। आँवे की एक तरफ से राख हटाई जाती है। धीरे-धीरे मूर्तियाँ निकालकर बाहर रख ली जाती हैं। सब मूर्तियाँ निकल जाने के बाद उन्हें झाड़ पोंछ ली जाती है। इस तरह बरतन अथवा मूर्तियाँ बिक्री के लिए तैयार हो जाती हैं। बस्तर के कुम्हार समय की मांग के अनुसार पारम्परिक शिल्पों के साथ शेर, हाथी, बैल आदि के मुँह वाले कलात्मक गमले बनाने लगे हैं। आजकल बस्तर के गमलों की प्रदेश और देश में अधिक मांग और प्रतिष्ठा होने के कारण बस्तर के कुम्हार अधिक से अधिक गमले बनाने लगे हैं। गमले आठ रूपये से लेकर पच्चीस रूपये तक बिकते हैं। नये उपयोगी उपकरणों में मिट्टी के कलात्मक ऐश ट्रे, पेन स्टैंड और दीवाल पर लटकाये जाने वाले सजावटी तथा विभिन्न आधुनिक प्रभाव की मानव मूर्तियाँ बनने लगी हैं।

कांकेर के ग्राम पंडरीपानी बस्तर के मिट्टी के शिल्प से सर्वदा अलग है। पैंसठ वर्षीय श्री शोभसिंह बोकड़िया पंडरीपानी के सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में से एक हैं। पंडरीपानी में अत्यन्त सुन्दर घोड़े बनाये जाते हैं। बस्तर की तरह कांकेर का मिट्टी शिल्प आदिमता लिये हुए नहीं है। कांकेर के शिल्पों पर आधुनिक प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। पंडरीपानी के घोड़े की गरदन लम्बी तनी हुई और कलात्मक होती है। छोटे और बड़े दोनों प्रकार के घोड़े यहाँ बनाये जाते हैं। बड़ा से बड़ा घोड़ा यहाँ ढाई तीन फुट तक बनाया जाता है।

कांकेर, बस्तर का एक भाग होते हुए भी बस्तर से थोड़ी भिन्न संस्कृति दिखाई देती है। इसी प्रकार यहाँ के मिट्टी शिल्प में फर्क दिखाई देता है। यद्यपि कुम्हारपारा कोंडागाँव के कुम्हारों के गोत्र संबंध एक ही है, फिर भी यहाँ के आचार-विचार, रहन-सहन में स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों के कारण बदलाव आया है। यहाँ मिट्टी कुछ पीले रंग की होने के कारण यहाँ के मिट्टी शिल्प गहरे लाल भूरे रंग से मिश्रित रंग के होते हैं। पंडरीपानी के अलंकृत हाथी, बैल आदि उनकी निजी पहचान रखते हैं। पंडरीपानी के कुम्हारों के लगभग 20-25 घर हैं, जिनमें मूर्ति बनाने वाले पाँच-छः घर हैं। यहाँ और भी कुछ पारम्परिक अच्छे कलाकार हैं- जिनमें शिवप्रसाद, रामरतन, सोनू, थानू, लालसिंह प्रमुख हैं।

प्रसिद्ध चित्रकार और कला चिन्तक श्री आनन्द कुमारस्वामी ने लिखा है- शिल्पी की कला में वास्तविक महानता के तत्व तभी

होते हैं, जब उसे काम करने का अधिकार निष्ठा के साथ अपने परिश्रम का समुचित पुरस्कार पाने का अधिकारी होता है और साथ ही अपने कार्य की सामाजिक, आध्यात्मिक, सार्थकता पर चेतन अथवा अर्धचेतन विश्वास होता है।

शिल्पी व्यक्तिगत मौज को प्रकट करने वाला व्यक्ति मात्र नहीं, बल्कि विश्व का एक अंग है। वह उसी प्रकार शाश्वत सौन्दर्य और प्रकृति के अटल नियमों के आदर्शों को मूर्तरूप प्रदान करता है, जिस प्रकार वृक्ष और पुरुष करते हैं, जिनकी प्राकृतिक सुषमा ईश्वर प्रदत्त है। छत्तीसगढ़ में बस्तर, सरगुजा, रायगढ़ अंचल के मिट्टी शिल्प से रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, राजनांदगाँव, मुंगेली में भिन्न प्रकार के शिल्प दिखाई देते हैं। इस अंचल के कुम्हार बिहार और उत्तरप्रदेश से आये हैं। बस्तर के कुम्हारों से न इनके गोत्र मिलते हैं और न जाति। रायपुर-बिलासपुर अंचल में सात प्रकार के कुम्हार हैं। झरिया, कोसरिया, कनौजिया, लोधिया, राणा, रखोटिया और परदेसिया-सुअरा। कहते हैं झरिया, झारखंड-बिहार से कोसरिया महाराष्ट्र से, कनौजिया इलाहाबाद से, लोधिया राजस्थान से, राणा उड़ीसा से तथा परदेसिया उत्तर प्रदेश से आये हैं। झरिया या झेरिया स्त्रियाँ गोल साड़ी पहनती हैं और ये लोग अपने आपको छत्तीसगढ़िया भी कहने लगे हैं। कोसरिया स्त्रियाँ महाराष्ट्रीयन साड़ी पहनती हैं और बोली ब्रज और बिहारी मिश्रित बोलती हैं। उत्तर प्रदेश के परदेसिया कुम्हार नीची जाति के माने जाते हैं। इसलिए उनको सुअरा भी कहते हैं। उत्तरप्रदेश के कनौजिया और परदेसिया कुम्हार सांचे से मूर्तियाँ बनाते हैं और अधिकतर ईंट भट्टों का कार्य करते

हैं। बिलासपुर और रायपुर में इनकी बिरादरी के लोग अधिक हैं। झरिया यानी छत्तीसगढ़ी कुम्हार किसी अन्य जाति के कुम्हारों से बेटी व्यवहार नहीं करते। कनौजिया और परदेसिया कुम्हार अलग बैठक के हैं। राणा और लोधियों में अलग-अलग व्यवहार होते हैं। ये सभी कुम्हार आपस में एक दूसरे को चाक भाई मानते हैं।

दक्ष प्रजापति से सभी कुम्हार अपना संबंध बताते हैं और अपने आपको प्रजापति कहलाने में गर्व का अनुभव करते हैं। इन कुम्हारों के कई गोत्र हैं। घाटी या घंटा, शनिचरहा, बरा, रेला, सेन्दूर, चोटी, तूमा, तातवरा, भरछौना, गरघांटी, घरसिया, मेहर, रनघाटी, सकरी, चिकट, सोनवानी, ग्वाल, कुलदिया, खुरदुलिया, टांटी, कासिम, अतरबेड़िया, गदैला, बुचरिया आदि गोत्रों के कुम्हार इस अंचल में बसे हुए हैं। प्रत्येक जाति के कुम्हार साढ़े बारह गोत्र होने पर विश्वास करते हैं। तातवरा का गोत्र चिह्न तातबड़ा, सोनवानी का सोना, घांटा एक प्रकार का फल है, गरघांटी गले की घंटी है, चिट्टहा कंजूसी के कारण बना है और मरदिहा-मर्दानगी से बना है। यहाँ कुम्हार ऋषियों के नामों पर भी अपने उपनाम रखने लगे हैं। कौशिक, भारद्वाज, वाल्मीकि, अंगिरा, व्यास, पाराशर, कश्यप, वशिष्ठ और भार्गव तक उपनाम देखे जाते हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार सबसे पहले कुम्हार रतनपुर में आकर बसे थे। रतनपुर के राजा के आमंत्रण पर कुम्हार यहाँ आये थे। बिलासपुर के कुम्हार बताते हैं कि बिलासपुर में हम लोग पहले जंगल काटकर बसे थे। ग्राम बसाने वाली मुखिया का नाम बिलसिया था, जिसके नाम पर ही वर्तमान नाम बिलासपुर पड़ा। इसे लगभग दो सौ वर्ष हुए होंगे।

लोकगाथा : गणीनाथ गोविन्द जी

अश्विनी कुमार आलोक

जनदेवताओं को लेकर आराधना और उत्सव की अपनी परम्परा रही है। इन जनदेवताओं की संख्या प्रत्येक प्रांत में हजारों होती हैं और उस समुदाय में उनकी पूजा परम श्रेष्ठ पूर्वज के रूप में होती है। वे जनदेवता उस जाति में सैकड़ों हजारों-वर्षों से पूजित होते हैं। हालांकि मान्यताओं में मतैक्य नहीं होता है, फिर भी मान्यताओं का आधार कभी न कभी, कहीं-न-कहीं समान होता है।

जनदेवता उस विशिष्ट जाति या समुदाय के पूर्वज या पूर्वजों के कठिन समय में कभी बहुत हितकारी होने की घटना से संबंध रखते हैं। गणीनाथ गोविन्द जी ऐसे ही एक जनदेवता हैं, जिनकी पूजा-अर्चना समस्त कानू-हलवाई जाति के परिवारों में पारम्परिक निष्ठा एवं आदर के साथ की जाती है। गणीनाथ के साथ उनके परिवार के अन्य लोगों को लोग मर्यादित श्रद्धा के साथ स्मरण करते हैं। कानू-हलवाई जाति का मानना है कि गणीनाथ ईश्वर के अवतार हैं, साक्षात् शिवस्वरूप हैं। गोविन्द जी उनके पुत्र तथा खेमासती उनकी धर्मपत्नी के रूप में लोकायत में अपार विश्वास और आदर के साथ जीवित हैं।

गणीनाथ-गोविन्द जी स्पष्ट रूप से बिहार प्रांत के वैशाली जिले की महत्त्वपूर्ण लोकगाथा है। वैशाली जिला मुख्यालय हाजीपुर के दक्षिण-पूर्वी तथा समस्तीपुर जिले के दक्षिणी-पश्चिमी सीमांत पर बसा हुआ ऐतिहासिक संदर्भों का साक्षी पलवैया गाँव यद्यपि आज अपना अस्तित्व खो चुका है, उनका अधिकांश भाग गंगा के भीषण कटाव की भेंट चढ़ चुका है, तथापि समीपवर्ती ग्रामों में कितने सारे इतिहास पोषक साक्ष्य अब भी हैं। वर्षों पहले पलवैया ग्राम विलीन हो चुका था, उसके बाद गणीनाथ गोविन्द जी के उपासकों ने पलवैया में दो मंदिरों का निर्माण हसनपुर पुरानी हाट के पास करवाया था। वर्षों तक इन मंदिरों में श्रद्धालुओं की भीड़ जुटती रही थी। वर्ष 1999 में गंगा नदी के भीषण कटाव में ये दोनों मंदिर भी चले गये। परन्तु, अभी-भी हसनपुर गुर्गा के समीप गणीनाथ गोविन्द जी की पूजा-अर्चना के लिए लोग विदशों से भी जुटते हैं। यहाँ गणीनाथ गोविन्द जी के नाम पर कई संस्थाएँ भी चल रही हैं। गणीनाथ गोविन्द जी के अन्य मंदिर पटना, हाजीपुर, महनार, बिदुपुर तथा अन्य कई जगहों पर भी हैं, परंतु असली मंदिर पलवैया में ही होना निश्चित है, यह प्रमाणित है।

गणीनाथ गोविन्द जी से संबंधित लोकगाथा के कई रूप सामने आते हैं। एक कथा के अनुसार गणीनाथ स्वर्ग लोक में रसोइए का काम करने वाले देवता थे। सुस्वादु भोज्य बनाने के कारण उनकी प्रतिष्ठा वहाँ खूब थी। उत्पाती नारद ने अपने स्वभाव के मुताबिक देवलोक के पाचनगृह में गम्हार की लकड़ियाँ रखवा दीं। गम्हार की लकड़ियाँ ईंधन की दृष्टि से अनुपयुक्त होती हैं, उनसे धुँआ बहुत निकलता है। नारद के उत्पात से अनभिज्ञ गणीनाथ ने समय से लकड़ियाँ जलायीं, तो तीव्र धुँआ से उनकी आँखें छलछला आयीं। तभी, नारद ने विष्णु के कान भर दिये कि गणीनाथ रो-रोकर देवताओं के लिए भोजन बनाते हैं। फिर गणीनाथ को विष्णुदेव के शाप के कारण मृत्यु लोक में आना पड़ा, जहाँ उनका एक महात्मा मानशाह की कन्या क्षमा या खेमा से विवाह हुआ तथा गोविन्द जी के रूप में साक्षात् भगवान उनके पुत्र हुए। कथा का विस्तार कुछ और भी है। किंतु हम यहाँ इस पहली कथा का उतना ही अंश दे रहे हैं, जो अन्य कथाओं से भिन्न है।

दूसरी कथा है कि जिन दिनों यवनों से वैश्य समाज का मान-हानन हो रहा था, उन्हीं दिनों दिव्य पुरुष के रूप में गणीनाथ का स्वर्ग से भूमि पर अवतरण हुआ। शिव के परम भक्त पलवैया के अत्यंत विनम्र मनसा राम को किसी पीपल वृक्ष के नीचे एक तीन दिनों का नन्हा शिशु मिला। निःसंतान मनसाराम उस शिशु को घर ले आये और पालने लगे। ईश्वरीय प्रवृत्तियों वाले उस शिशु का नाम गौरीनाथ रखा गया। बाल्यकाल से ही गौरीनाथ विचित्र अलौकिक कार्यों से सबको हतप्रभ करने लगा था। बिना बच्चे की बछिया का दूध दुहना और असाध्य रोगों से परेशान लोगों को स्पर्शमात्र से स्वस्थ कर देना, उनके लिए आम बात थी। आयु के पाँचवे वर्ष में वह हिमालय पर तपस्या के लिए चला गया। पलवैया के लोगों ने आकाशवाणी सुनी कि अट्ठारह वर्षों बाद गौरीनाथ वेदों का अध्ययन कर देवत्व प्राप्त किये हुए पुनः पलवैया आयेगा।

गौरीनाथ पलवैया लौटकर धार्मिक कार्यों के परिशीलन में लग गये। उसी समय वैश्यों की उनके गोत्र से पहचान करायी तथा मिष्ठान्न बनाना उनकी आजीविका का माध्यम निर्धारित किया। उपदेश दिये और लोगों को धर्मपंथ बतलाया। दुराचारी यवनों पर भी उन्होंने अपने पुण्यमंत्र चलाये। इन्हीं दिनों गौरीनाथ का नाम बदलकर गणीनाथ हो गया। पलवैया ग्राम के नामकरण के संबंध

में एक इतिहासेतर मत है कि गणीनाथ के अनुयायियों में एक राजा धर्मपाल के इकलौते पुत्र की मृत्यु सर्पदंश से हो गयी। धर्मपाल ने गणीनाथ के कहने पर उनके आश्रम के समीपस्थ भूमि साधुओं को दान में दे दी। वह बाईस सौ बीघे का भूखंड ज्योंही साधुओं ने ग्रहण किया, धर्मपाल का इकलौता पुत्र जीवित हो गया। वही भूखंड धर्मपाल के नाम पर धर्मपुर पलवैया हुआ। तत्कालीन तिरहुत राज्य के नरेश चंद्रधार को आखेट क्रम में एक नन्हीं-सी सुंदरी लड़की अकेली वन में दिखी। उन्होंने उसे प्यार से बेटी की तरह पाला-पोसा, उसका नाम क्षमा हुआ। उसने स्वयंवर में गणीनाथ को पति के रूप में चुना। गणीनाथ से विवाह के बाद क्षमा का ऐश्वर्य और भी प्रदीप्त हो गया। गणीनाथ के अनुयायियों ने गणीनाथ को शिव और क्षमा को पार्वती माना। गणीनाथ और क्षमा से पाँच संतानें हुईं। रायचंद, श्रीधर एवं गोविन्द नाम के तीन पुत्र तथा सोनमती और शीलमती नाम की दो पुत्रियाँ। रायचंद की सुंदरता साक्षात् अग्निदेव की तरह कांति से संपन्न थी, तो श्रीधर क्षमाशील और पर दुःखकातर, वहीं गोविन्द हनुमान की तरह वीर और अतुलित बुद्धि की खान थे। दोनों पुत्रियाँ भी सौंदर्यशील और शक्ति की प्रतिमूर्ति थीं। गणीनाथ और क्षमा की पाँचों संतानों ने शास्त्र और शस्त्र की विद्या प्राप्त कर स्वयं को निपुण किया। प्राणियों के सुख और शांति के लिए सदैव तत्पर रहने वाली गणीनाथ की पाँचों संतानों के यश से उनकी कीर्ति पताका और भी ऊपर गयी।

पाँचों युवावस्था में थे। तभी, गणीनाथ को सूचना मिली कि कुछ जंगली लोग सभ्य समाज में उत्पात मचा रहे हैं। बच्चे तथा स्त्रियों को उठाकर ले जा रहे हैं। गणीनाथ ने गोविन्द के सेनापतित्व में कुछ सेनाएँ जंगली लोगों से त्राण के लिए भेजीं, साथ में दोनों कन्याएँ सोनमती और शीलमती भी चलीं। सोनमती और शीलमती ने दुर्गा के समान प्रचंड वेग से आततायियों को खदेड़ा, उनका संहार किया तथा कुछ को बंधक बना लिया। बंधक बने लोग गोविन्द जी और गणीनाथ के पास लाये गये। गणीनाथ के पास लाये गये लोगों का हृदय-परिवर्तन गणीनाथ के दर्शनमात्र से हो गया तथा उनके अनुयायी बनकर वहीं रहने लगे।

माता-पिता से आशीर्वाद लेकर कुछ समय बाद गोविन्द जी तपस्या के लिए चले गये। उसके बाद रायचंद पर लोगों की

रक्षा और उनके कल्याण का भार छोड़ गणीनाथ लोगों को ज्ञानोपदेश देने निकल पड़े। अंधों को आँखें दीं, पुत्रहीनों को संतान और दरिद्रों को सुख-संपदा। गणीनाथ की यात्रा के पाँच वर्ष बीत गये। यात्रा के क्रम में पाटलिपुत्र के पास एक राजा केशी एवं उनके पुत्र वेशी से उनकी घनिष्ठता हो गयी। दोनों की एक-एक रूपवती कन्याएँ थीं। दोनों किशोरियों का विद्यार्जन में परम अनुराग देखकर गणीनाथ प्रसन्न हो गये।

एक बार भादों कृष्ण पक्ष चतुर्थी को पारम्परिक गंगा स्नान पर्व पर दोनों किशोरियाँ गंगा स्थान के लिए गयीं। वहीं क्षेत्रपाल नामक यवन सूबेदार ने उन्हें देखा और कामातुर हो गया। उसने उन दोनों से प्रणय-आग्रह किया। दोनों किशोरियों ने देखा कि यदि इसके आग्रह को इस तरह टुकराया जाये, तो यह जबरदस्ती करेगा। उन दोनों ने सूबेदार को चालाकी से कहा कि व्रत के बाद गंगा स्नान कर वे स्वयं उनके पास आ जायेंगी। सखियों और समीपस्थ एक वैश्य परिवार की सहायता से दोनों किशोरियाँ छुपकर गंगा स्नान के बाद घर लौट आयीं। उनके माता-पिता ने यह बात जानी, तो उन्हें चिंता हुई। भय से वे रायचंद की शरण में गये। इधर प्रतीक्षारत सूबेदार को जब दोनों नहीं मिलीं, तो वह क्रोध लायी कि दोनों किशोरियाँ सुरक्षा के लिए पलवैया के रायचंद के यहाँ रह रही हैं। पुनः सूबेदार ने रायचंद के यहाँ दूत भेजकर दोनों किशोरियाँ उन्हें दे देने के लिए कहा। दूत का रायचंद ने पर्याप्त सत्कार किया। दूत लौटा, तो रायचंद का संदेश दिया कि सूबेदार को यहाँ निमंत्रित किया गया। रायचंद के यहाँ सूबेदार और उसके सैनिकों का भी बहुत स्वागत-सत्कार किया गया। खाने के बाद सूबेदार ने वहीं आराम किया। फिर उसने उन दोनों किशोरियों की माँग रायचंद से की। उसने यह भी कहा कि वह उन दोनों लड़कियों के लिए हिन्दू धर्म अपना रायचंद के अधीन रह सकता है। रायचंद ने सूबेदार से उन लड़कियों को भूल जाने को कहा और उसकी प्रौढ़ उम्र की याद दिलायी। पर वह नहीं माना और अपने यहाँ लौटकर एक बड़ी सेना तैयार की। वह पलवैया पर आक्रमण के लिए चला। गणीनाथ की पत्नी क्षमा ने पुत्र रायचंद को उसके संहार की आज्ञा दी। रायचंद के साथ सोनमती तथा शीलमती बहनों ने भी यवनों को खदेड़-खदेड़ कर मार गिराया। कुछ समय बाद, सूबेदार पुनः अपनी सारी सेनाओं के साथ पलवैया पर आक्रमण कर बैठा। तब, गोविन्द आ गये थे, उनके अतुल शौर्य के आगे

किसी की एक न चली। युद्ध में रायचंद, गोविंद, सोनमती और शीलमती के साथ श्रीधर भी थे, जिस प्रकार रावण ने मरते समय श्रीराम का नाम लेते हुए मृत्यु लोक छोड़ा था, यवन सूबेदार ने उसी प्रकार गोविंद जी से प्रभावित होकर मरते समय जय गोविन्द कहा और धराधाम छोड़ गया। गोविन्द जी का नाम लेने से सूबेदार वैश्य समुदाय के लिए पूज्य हो गया। उसकी पूजा पलवैया में अब तक बनी हुई समाधि पर होती आ रही थी। समाधि अब गंगा नदी में चली गयी है। तभी गणीनाथ भी पलवैया लौट आये और दोनों कुमारियों का विवाह उनके माता-पिता की सहमति से रायचंद और श्रीधर से तय कर दिया। जब बारात चली, तो बौखलाये यवनों के सेनापति सुलेमान के आदेश पर मल्लाहों ने सारी नावों को गंगा नदी में डुबो दिया। तब, गणीनाथ ने गंगा से प्रार्थना की और न उनकी प्रार्थना पर गंगा नदी रात भर के लिए सूख गई, जिससे बारात आगे बढ़ी। बारात पहुँची और विवाह सोल्लास संपन्न हुआ। यवन राजा को गणीनाथ की महिमा और दिव्यत्व का पता चला, तो वह उनसे और उनके परिवार से मिला। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ न सिर्फ अपनी सेना लौटा ली, बल्कि उनसे क्षमा भी माँगी।

इस तरह, गणीनाथ के दो पुत्र रायचंद और श्रीधर गृहस्थ हुए, परन्तु गोविन्द जी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए लोगों के कल्याण के लिए खुद को समर्पित रखा।

एक तीसरी कथा, जो सर्वाधिक प्रमाणिक मानी जाती है, वह कुछ हस्तलेखों पर आधारित है। ये हस्तलेख वर्तमान पलवैया ग्राम (जिला-वैशाली, बिहार) के गणीनाथ सेवाश्रम में उपलब्ध है। कहा जाता है कि कैलाश पर्वत पर तपस्थ भगवान् शिव ने देवी-पार्वती की इच्छा पर पुत्रवती होने का उन्हें वरदान दिया। उन्होंने उन्हें कुछ चावल और फूल आंचल में बांधने को दिया। उसी अक्षत से गणीनाथ की उत्पत्ति हुई। कुछ समय बाद, गणीनाथ विष्णुदेव के दरबार में प्रधान रसोइये के पद पर रहने लगे। पृथ्वी पर बढ़ रहे पापाचारों, मायावी तंत्र साधकों की दुष्प्रवृत्तियों का संताप बढ़ने लगा, तो विष्णुदेव की आज्ञा से गणीनाथ का पृथ्वी पर अवतार हुआ। गणीनाथ को तभी से वैश्यवंशीय माना जाने लगा। हालाँकि कोई इतिहास-सम्मत तथ्य नहीं है, पर कथाकार युगल गणीनाथ का काल तेरहवीं शताब्दी के आस-पास स्वीकारते

हैं। पलवैया में जब से गणीनाथ का अवतरण हुआ, आनंद और शांति का वातावरण बनता गया। तत्कालीन पलवैया नरेश गोपाल शाह के इकलौते पुत्र धर्मशाह की सर्पदंश से मृत्यु हो गयी, तब अपने योगबल से गणीनाथ ने उसे जीवित कर दिया। कहा जाता है कि नैना जोगिन नामक प्रसिद्ध तंत्र-साधिका ने धर्मशाह की मृत्यु सर्पदंश से करवायी थी। गोपालशाह और धर्मशाह के नाम पर आगे चलकर गोपालपुर पलवैया और धर्मपुर पलवैया नामक नगर बने। गोपालशाह ने दानस्वरूप बाईस सौ बीघा जमीन गणीनाथ को दे दी। पलवैया के ही धर्मपरायण गरीब लकड़हारे को ईश्वर की कृपा से एक अबोध बालिका पीपल वृक्ष के नीचे अकेली मिली थी। उसने उसे बेटी बनाकर पाला-पोसा था, जिसका विवाह उसकी युवावस्था में गणीनाथ से किया गया था। खोमा से गणीनाथ को पाँच संतानें हुई थीं- रायचंद, श्रीधर और गोविंद तथा सोनमती एवं शीलमती। रायचंद और श्रीधर का विवाह हुआ था, जबकि गोविन्द जी ने आजीवन विवाह नहीं किया था। सोनमती और शीलमती भी आजीवन ब्रह्मचर्य जीवन जीना चाहती थीं। परंतु गणीनाथ की आज्ञा से तत्कालीन शिकारपुर के एक राजपरिवार में दोनों ब्याही गयीं। विवाह के बाद दोनों पलवैया में समाधिस्थ हो गयीं।

गणीनाथ की आगामी वंशावली के सम्बन्ध में चर्चा है कि रायचंद्र और श्रीधर की कई संतानें हुईं, जिनमें सहपति एवं चक्रपाणि के भी नाम आते हैं।

पलवैया के समीपस्थ कोइरी जाति के लोग केले की सघन खेती करते थे। परन्तु, केले के घौद पकने से पहले सड़ जाते। गणीनाथ से जब कोइरियों ने आग्रह किया, तो वे केले का एक घौद लेकर भगवान का भोग लगाने के लिए राजी हो गये। पूजा पर जब वे बैठे, तब केले का घौद आया, किन्तु उसमें से कुछ केले गायब थे। उन्होंने पूछा कि इस घौद में से केले किसने तोड़े, तो कोई उत्तर नहीं मिला। उन्होंने क्रोध में शाप दे दिया कि जिसने केले तोड़े हैं, उसकी गर्दन मरोड़ी जाये और उसे मूक बना दिया जाये। उन्हीं के पोते सहपति ने केले तोड़े थे। शाप के कारण वह तत्काल टेढ़ी गर्दन वाला और गूंगा हो गया। गणीनाथ के दूसरे पौत्र चक्रपाणि की भी चर्चा मिलती है। बसही की एक निःसंतान स्त्री को श्रीधर राय के वर से पुत्र की प्राप्ति हुई थी। प्रसन्नता से अभिभूत

स्त्री ने श्रीधर को घोड़ा भेंट स्वरूप दिया था। उसी घोड़े पर चढ़कर चक्रपाणि आखेट पर निकला। एक हिरण का उसने शिकार किया, तो हिरण का आर्तनाद सुनकर गणीनाथ विचलित हो गये। उन्होंने शाप दिया कि हिरण की मृत्यु का कारण बना प्राणी तत्कालीन मृत्यु को प्राप्त हो जाये। फलस्वरूप चक्रपाणि की वन में ही मृत्यु हो गयी। उसी चक्रपाणि की चर्चा प्रसिद्ध वैद्य के रूप में की जाने की बात कही गयी है।

गणीनाथ के छोटे पुत्र गोविन्द की पूजा-अर्चना भी वैश्य समुदाय के लोग उसी परम्परा और आदर के साथ करते हैं। उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि गोविन्द जी को जन्मकाल में ही गंगा नदी में प्रवाहित कर दिया गया था, क्योंकि ब्राह्मणों ने धर्म की रक्षा के लिए ऐसा आवश्यक बताया था। वर्तमान बाढ़ (पटना) में वह काष्ठ-मंजूषा लगा, जहाँ से उन्होंने राजपुरोहित को आजीवन दरिद्र रहने का शाप दे दिया। वर्तमान में वहाँ जलगोविन्द घाट है और उमानाथ मंदिर भी, जहाँ उनकी पूजा होती है।

उस समय तंत्र शक्ति से नैना जोगिन ने एक ब्राह्मण को पीपल का सूखा वृक्ष बना दिया था, ब्राह्मणी सती की तरह पीपल को पूजती थी। गोविन्द जी ने ब्राह्मण और उनके पुत्रों को नैना के तंत्र से मुक्ति दिलायी। साथ ही, नैना की योगविद्या भी जाती रही। जनकल्याण में अपना जीवन समर्पित किये हुए गोविन्द जी पलवैया के समीप ही समाधिस्थ हो गये।

इनके अतिरिक्त एक अन्य कथा भी गोविन्द के सम्बन्ध में इसी के साथ प्रचलित है। परंतु, कहा जाता है कि ये कोई दूसरे गोविन्द जी हुए थे। संकीर्ण समझ और धार्मिक पाखंड के विषम काल में गणीनाथ ही की वंश-परम्परा में एक और गोविन्द जी का उद्भव हुआ। बिखरते हिन्दू धर्म को एकत्रित करने का प्रयास गोविन्द जी ने पूरे मनोयोग से किया।

गोविन्द जी द्वितीय की कथा कहाँ तक इतिहास सम्मत है, यह स्पष्ट नहीं, परंतु कहा जाता है कि गयासुद्दीन तुगलक के समय उनका उद्भव हुआ था। 398 ई. के करीब कुछ मुसलमान जागीरदारों ने पलवैया राज्य पर आधिपत्य जमाना चाहा। उस समय पलवैया के राजा गोविन्द जी द्वितीय थे। गोविन्द जी द्वितीय ने अपने कुशल

सेनापतियों प्रेमचंद राय एवं शिवचरण राय के नेतृत्व में गणीनाथ के आशीर्वाद से विजयी हुए थे और पलवैया की मर्यादा बची रही थी।

गणीनाथ की इन कथाओं में साम्य तो बहुत है, पर ऐक्य नहीं। ये कथाएँ अधिकांशतः वाचिक परम्परा के गीतों से निकलती हैं। कई जगह खेमासती या क्षमा को गणीनाथ की पत्नी कहते हैं, तो कुछ जगह माँ। पर उनकी कथाओं से स्पष्ट होता है कि खेमासती या क्षमा गणीनाथ की धर्मपत्नी थीं, जो उनके यशवर्द्धन में सहयोगी रहीं। कुछ अन्य पात्रों के नामों में भी अंतर मिलता है। श्रीधर और रायचंद के ससुर का नाम कहीं केशी-वेशी तो कहीं झोंटी शाह कहा गया है। 1330 में जब बंगाल को जीतकर वहाँ का शासक हाजी इलियास को बनाया गया, तब धीरे-धीरे दिल्ली तक उनके अधीन होती चली गयी। परंतु कुछ समय बाद तुगलक सल्तनत कमजोर पड़ने लगी। चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हाजी इलियास जैसे छोटे राजाओं ने अपने राज्य को स्वायत्त घोषित किया। पलवैया की लोकभाषा बज्जिका है, इसीलिए गणीनाथ पलवैया एवं बज्जिका की मौलिक लोकगाथा है। हालांकि गणीनाथ की पूजा पूरे भारत और पड़ोसी नेपाल का वैश्य समुदाय करता है, परंतु उनकी उत्पत्ति पलवैया में हुई यही मान्य है, अर्थात् गणीनाथ के उद्भव के सम्बन्ध में कोई मतभिन्नता नहीं। गंगा नदी के कटाव से बार-बार प्रभावित होने वाला मूल पलवैया अब नहीं है। कहा जाता है कि उस पलवैया राज्य में भगवान् गणीनाथ और उनके वंशजों तथा भक्त फेकू दयाराम का मंदिर था। वह 1942 ई. में गंगा नदी में आयी भयानक बाढ़ की भेंट चढ़ गया। कहते हैं कि कोई ग्यारह-बारह बीघे में चौदह मंदिरों का समूह था। मंदिर समूह चहर दीवारी से सुरक्षित था। तीन अलग-अलग रास्तों से मंदिर में आना संभव था। प्रथम द्वारका सिंह द्वार था, जिसके सामने हनुमान जी थे। मंदिर के बीच संगमरमर की सीढ़ियाँ थीं। मंदिर के निकट सात कमरों का दो मंजिला पक्का भवन था, उसके अंदर सात दरवाजे थे। इन्हें तंत्र साधना से सम्बंधित बताया गया है। जहाँ गणीनाथ के पौत्र चक्रपाणि की मृत्यु हुई थी, उस सीकरी वन में चक्रपाणि चौड़ा था, वह पलवैया से मात्र एक मील की दूरी पर था। यहीं आसपास में मानशाह डीह, पनकट्टा कुँआ, चंपापुर आदि स्थान हैं, जो गणीनाथ के संदर्भ में आते हैं। धर्मगाछी पुस्तकालय एवं धर्मशाला के भी प्रमाण लोग देते हैं।

कहते हैं, गणीनाथ मंदिर तीन बार बनाया गया। 1942 में कटे मंदिर के पहले 1936 में एक मंदिर कट चुका था, उसके बाद मंदिर 1958 में बना, जो चालीस वर्षों बाद 1998 में कटा। इसके बाद मंदिर बनाने का कार्य आरंभ कर दिया गया, जो अब पूरा होने को है।

प्राचीन मंदिरों के अवशेष अब तक पलवैया के समीपस्थ ग्राम, गणीनाथ के अनुयायियों के पास सुरक्षित बताये जाते हैं। अपने में इतिहास के पर्याप्त बिंबों की धरोहरें छुपाये पलवैया अध्ययन-अनुशीलन के कई महत्वपूर्ण द्वार खोलता है। गणीनाथ से सम्बन्धित लोकवाचनों में सहज लोकस्वरों का उद्घाटन है, तो संस्कृति, धर्म, इतिहास एवं संस्कारों में एक अद्भुत रख-रखाव का एकीकरण।

हम कुछ गणीनाथ लोकगीतों की चर्चा करें। गणीनाथ पूजा के आरंभिक समय में खेमासती की पूजा गौरी की तरह होती है, उस समय का गीत गोसाईं गीत कहलाता है।

*चिकनियो मितिया चिकनियो मितिया
बंधतो में बेदिया बंधतो में बेदिया
हँसइते-खेलइते आबे खेमासती सखिया आजु बधाई
अरे केकरा माथे सुपली मउनिया
अरे सती माथे सोने भखरा सेनुरवा आजु बधाई
अरे गणीनाथ माथे सोन सुपली मउनिया आजु बधाई
आहे किनका डार शोभे पियरी धोतिया
किनका डार लहंगा पटोरबा
गणीनाथ डार शोभे पियरी धोतिया
सती डार शोभे लहंगा पटोरबा आजु बधाई
कहँमा ही उपजे सुपली मउनिया
तिरहुत उपजे सुपली मउनिया
पटना उपजे भखरा सेनुरवा आजु बधाई
केकरा हाथ शोभे सोने के सटकवा
केकरा हाथ शोभे सुरखी लहठिया आजु बधाई
गणीनाथ हाथ शोभे सोने के सटवा
सती हाथ शोभे सुरखी लहठिया आजु बधाई
किनका छत्तीस जोड़े शोभे सोने के खड़मुआ*

किनका गोर शोभें झुनकी पयलिया आजु बधाई

गणीनाथ की पूजा का लोकगीत है-

जै बैजंती ले ले गणीनाथ बबू आएथिन
अगर चंदन घर लिपाएब हे
घी के बाती कपूर के आरती
मानिक हार पेन्हाएब हे
हीरे चोकी लाइब बैठक देब दूधे से गोर पखारब हे
पैर पखारी चरण जल पड़बो अँचरा पसारी यश मांगब
सोने के कलशा नीचे मोती के पुरहर अंजोरिया
भरि-भरि उझलब हे
बाल-गोपाल मिली गीत सुनैबो घर-घर हरख मनाएब
जो हम जनती गणीनाथ बाबू आएतन
अगर-चंदन घर छिड़कती हे

अगर चंदन घर देहरी मेंरतो दूधे से पैर पखारती हे
पैर पखारी यश मांगती हे सोने कलश
तल पुरहर धरती

खेमा सती के जन्म का गीत है-

तीन दिन के बालिक पेड़ तरे पड़ली
लेली उठाई मानशाह से
घर जे पूछे तिरिया कहां ले लेयल
बालिका इहे तीन दिन के खून हे

गीतों में लयात्मक उतार-चढ़ाव एवं गाथा में विश्वास का स्वर संजोये गणीनाथ की लोकगाथा बिहार की उन मौलिक लोकगाथाओं में एक है, जो पारम्परिक मान्यताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

भोजपुरी आख्यान : शोभानयका

विद्या सिन्हा

किस्सा, गल्प, कथा, गाथा, आख्यान, आख्यायिका, कहानी, नाम कोई भी दें, कल्पना की उड़ान से इसका सीधा संबंध सहज ही जोड़ दिया जाता है। इसके बावजूद कथा में यथार्थ को धारण कर अभिव्यक्ति करने की गहन क्षमता है। यह आकस्मिक नहीं है कि आधुनिक काल में विधा के स्तर पर कथा साहित्य और विचारधारा के स्तर पर यथार्थवाद का जन्म लगभग साथ-साथ हुआ। आधुनिक कथा साहित्य में यथार्थ की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की बहुमुखी संभावनाएँ रही हैं। पौराणिक कथा साहित्य, गाथा साहित्य और आख्यान परम्परा में कल्पना के गहरे रंगों और अतिशयोक्ति युक्त विवरणों में विद्यमान प्रच्छन्न यथार्थ की छवियों में समाज और जीवन की बहुविध वास्तविकताओं की छवि मितली है।

इस कड़ी में लोक गाथा अथवा आख्यान लोक साहित्य की महत्वपूर्ण विधा है, जो हमें प्रत्येक भाषा और क्षेत्र की विशिष्टताओं के साथ जातीय संस्कृति से भी जोड़ती है। लोक गाथा शौर्य और प्रेम के केन्द्रीय भावों पर आधारित होती है। धार्मिक आख्यान की श्रेणी अलग है, जिसमें देवी-देवताओं के प्रति भक्त के अपरिमित समर्थन की कथा चलती है। भोजपुरी क्षेत्र की संस्कृति मुख्यतः शौर्य और ओज की संस्कृति है। इस क्षेत्र में प्रधान रूप से नौ लोक गाथाएँ मिलती हैं- आल्हा, लोरिकी अथवा लोरिकायन, विजयमल अथवा कुँवर विजई, बाबू कुँवर सिंह, शोभानयका बनजारा, सोरठी, बिहुला, राजा भरथरी एवं राजा गोपीचन्द।

ये गाथाएँ किसी न किसी रूप में पूरे उत्तर भारत में प्रचलित हैं, किन्तु भोजपुरी प्रदेश में अपनी विशिष्ट क्षेत्रीय छवि के साथ ये अत्यंत लोकप्रिय हैं। भोजपुरी के वाचिक साहित्य की अमूल्य निधि ये लोक गाथाएँ भोजपुरी समाज के जीवन की संवेदना और आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक प्रसंगों को प्रस्तावित करती हैं। इन लोक आख्यानों में शौर्य, वीरता, प्रेम और रोमांच की भावनाएँ प्रमुख रूप से व्यक्त हुई हैं। भोजपुरी लोक गाथाओं के वाचिक रूप को प्रकाशित करने का काम सबसे पहले जार्ज ग्रियर्सन ने किया था।

‘शोभानयका बनजारा’ भोजपुरी क्षेत्र की नितान्त अपनी लोक गाथा है, जिसमें युद्ध, रहस्य, रोमांच न होकर केवल पति-पत्नी के गार्हस्थ प्रेम की उदात्त अभिव्यक्ति हुई है। सबसे पहले जार्ज ग्रियर्सन ने सन् 1889 ई. में जर्मनी की एक प्रसिद्ध पत्रिका में ‘सेलेम्टेड स्पेसीमेन ऑफ बिहारी लैंग्वेज’ के अन्तर्गत ‘नयका बनजारा’ नामक गाथागीत का संकलन छपवाया था।

इस लोक गाथा में साधारण पात्रों के बीच प्रेम का अद्भुत, उदात्त और उच्च रूप अभिव्यक्त किया गया है। इस लोक गाथा के उपलब्ध रूपों से यह ज्ञात होता है कि इसके पात्र तेली जाति से संबंध रखते हैं। इसके गायकों द्वारा भी इस बात की पुष्टि की गई है। बिहार और बंगाल में 'नायक' लोगों की बहुत बड़ी बस्ती है, जिनका प्रधान काम ही व्यापार करना है। जार्ज ग्रियर्सन ने भी इस गाथा के चरित्रों को व्यापार करने वाले सौदागर 'ट्रेडिंग मर्चेन्ट्स' कहा है। इस गाथा को अधिकतर तेली, नेटुआ जाति के लोग ही गाते हैं। ऐसा करते हुए इन्होंने इसके चरित्रों को भी अपनी जाति का नाम दे दिया हो यह भी संभव है। इस गाथा द्वारा सामाजिक संरचना के अनेक सूक्ष्म सूत्र उजागर होते हैं। इस लोक गाथा की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है।

अपने महल में बारी दसवंती (जसुमति) सो रही थी। देवी ने प्रकट होकर उसको एक चटकन (थप्पड़) मारते हुए कहा- 'तेरा पति बहुत दिनों के लिए परदेश जा रहा है और तू यहाँ नींद में मदमाती है।' यह सुनते ही दसवंती जागी और दौड़ी हुई अपने भाभी के पास गई और कहाँ -

रामा भउजी तू कइलू हमार बियहवा रे ना
रामा सामी हमार जाला मोरंग के लदनिया रे ना
रामा गिरी रे जइहें चढ़ल हमार जवनिया रे ना
रामा करदइ हमरो गवनवाँ रे ना।

'मेरे पति परदेश जा रहे है, मेरा गवना कर दो, नहीं तो मेरा यौवन व्यर्थ हो जाएगा।'

बारी को अपने मुख से गवना मांगते देखकर उसकी भाभी सन्नाटे में आ गई। उसने यह बात अपनी सास से कही जो यह सुनते ही अपनी पतोहू पर ही आग बबूला हो गई और उसे कहने लगी- 'तू मेरी बेटी पर कलंक लगा रही है। अभी वह नादान है, उसका गवना नहीं होगा।'

उधर बांसडीह नगर में शंभू बनजारा के मन में आया कि अब बेटा शोभानायक जवान हो गया है, सो उसका गवना कर देना चाहिए। उसने इसी विचार से नाई को तिरहुत नगर भेजा। दसवंती के पिता जादूसाह ने नाई को यह कहकर लौटा दिया कि बेटी नादान है। नवयुवक शोभानायक प्रेम में उतावला हो रहा था, उसने स्वयं पता लगाने का मन बनाया कि सच क्या है? वह अपने मुनीम

मधवा पगहिया को साथ लेकर काशी चला गया और वहाँ मनियारी का सब समान खरीदकर तिरहुत नगर को चल पड़ा। मधवा पगहिया की मदद से रास्ते के कष्टों से बचते हुए वह तिरहुत नगर पहुँचा। वहाँ दसवन्ती के घर के नजदीक मनियारी की दुकान सजा दी और स्वयं मनियारी का भेष बनाकर बेंचने बैठ गया। दसवंती की सखी मनियारी की दुकान देखकर टिकुली, सेंदुर, चूड़ी आदि खरीदने वहाँ पहुँची और शोभा के सुन्दर रूप को देखकर मूर्छित हो गई। शोभा ने जल छिड़ककर उसकी मूर्छा दूर की। होश आते ही वह दसवंती के महल में जाकर उससे सब हाल कहती है। ऐसे मनियारी को देखने के लिए दसवंती तीन सौ साठ दासियों के साथ दूकान पर गई। एक दासी ने चोली का भाव पूछा। शोभा ने कहा कि तुममें जो सकदारिन हो वही मोल भाव करे। निडर दसवंती सामने आ गई। शोभा ने उसे देखकर कहा- 'तुम तो पूरी जवान हो और बाजार में घूमती हो? मैं शोभा का हितू (मित्र) हूँ, उससे जाकर सब बात कह दूँगा।' यह सुनते ही वह शोभा को पहचान गई और नौ हाथ का घूँघट काढ़कर महल में भाग गई। शोभा भी अपने नगर बांसडीह चला गया।

शंभू बनजारा (पिता) से आज्ञा लेकर शोभानायक गवने की पूरी तैयारी करके तिरहुत नगर जाकर दसवंती को विदा करा लाया। कोहबर की रात्रि में शंभू शाह ने सूचना दी कि उसका व्यापार नष्ट हो रहा है, इसलिए आज ही मोरंग देश के लिए रवाना होना है। शोभा तुरंत तैयार हुआ। सोलह सौ बैलों पर जीरा मिर्च लादकर मोरंग के लिए चल पड़ा। बहुत दूर तक चलने के बाद एक जगह पड़ाव डाल दिया। जहाँ शोभा सो रहा था, वहीं एक वृक्ष के ऊपर हंस और हंसिनी आपस में कह रहे थे कि- 'जो व्यक्ति आज की रात सोहागरात मनाता होगा, उसे सुंदर एवं गुणी पुत्र उत्पन्न होगा, जिसके हँसने से लाल गिरे और रोने से हीरा भरे।' शोभा यह बात सुन रहा था, उसे अपनी गलती का अनुभव हुआ। वह हंस से प्रियतमा के पास पहुँचाने के लिए प्रार्थना करने लगा। हंस उसे अपनी पीठ पर बैठाकर उसी रात्रि में दसवंती के महल में पहुँचा दिया।

दसवंती को भरोसा नहीं हो रहा था कि उसका पति उसके पास आ गया है। उसी रात शोभा ने सोहागरात मनाई। चलते समय शोभा ने अपने आगमन का चिन्ह अपना रुमाल दे दिया। उसने अपने छोटे भाई चतुर्गुन से भी सब बातें बता दी। शोभा फिर हंस

की पीठ पर सवार होकर सुबह होते-होते अपने पड़ाव पर पहुँच गया।

इधर दसवंती को गर्भ रह गया। पता चलने पर उसकी ननद ने उसे कुलकलंकिनी समझा। दसवंती ने उससे सब हाल सुनाया, शोभा का चिन्ह रुमाल भी दिखाया, लेकिन ननद ने विश्वास नहीं किया और दसवंती को समाज से बहिष्कृत कर दिया। चतुर्गुन सच जानता था सो मजदूरी मेहनत करके अपना और अपनी भाभी का पेट पालने लगा। नौ महीने बाद दसवंती को पुत्र उत्पन्न हुआ। ननद ने पीछा नहीं छोड़ा, उसने शिशु को कुम्हार के अलाव में डलवा दिया और दसवंती को जंगल में मार डालने के लिए हत्यारों के हाथ में सौंप दिया। जंगल में दसवंती ने हत्यारों से कहा कि मुझे मारने से क्या लाभ, मुझे बेच दो, तुम्हें पैसा मिल जाएगा। हत्यारों ने दयावश ऐसा ही किया। बाजार में शोभानायक का बहनोई दीपचंद दसवंती के रूप पर मुग्ध होकर उसे नवलाख अशर्फी में खरीद लिया। हत्यारों ने कुत्ते का कलेजा निकालकर ननद को खिला दिया। उधर बालक भी अलाव में से जीता जागता निकल आया और कुम्हार के यहाँ पलने लगा।

रामा खाइयो के ना देले ननदिया रे ना
 रामा भारी अब पड़ल बिपतिया रे ना
 रामा दिन भर करे चतुरगुन बनियारी रे ना
 रामा सांझि के बनावे भोजनिया रे ना
 रामा एही तरे लागल बीते दिनवा रे ना
 रामा बारी रोवे जादि बेजारवा रे ना
 रामा लड़िका रोवे लगे त गिरे मोतिया रे ना
 रामा हँसे लागे त गिरे हीरवा रे ना
 रामा ननदी उठवली लड़िकवा रे ना
 रामा आंवा के भीतरी डरली लड़िकवा रे ना
 रामा भउजी के गोदिया धइली दूटवा रे ना।

देवी दुर्गा से अब दसवंती का दुःख देखा न गया। वह मोरंग देश चल पड़ी। देवी ने शोभा को जादुगरनियों के पंजे से छुड़ाया। बरहज बाजार, लघी होते हुए शोभा अपने बहनोई दीपचंद के यहाँ पहुँचा। व्यापार के लिए जाते समय शोभा ने दीपचंद से

कर्ज लिया था। उसी कर्ज को चुकता करने वह आया। वहाँ उसने दसवंती को रसोइया का काम करते देखा। दोनों का मिलन हुआ। वहीं उसे सारी सच्चाई मालूम हुई। दसवंती को साथ लेकर वह बांसडीह नगर पहुँचा। केका कुम्हार के यहाँ से बालक बुलवाया गया। केका ने इस पर आपत्ति की। केका की स्त्री ने कहा कि यह बालक मेरा है। इसकी परिक्षा ली गई-

रामा दादा हम ना देब लड़िकवा रे ना
 रामा केका बोलावे आपन जनानवा रे ना
 रामा बोले लागल हमरे कोरिव जनमवा रे ना
 रामा हम चौथ के कइनी बड़ हवानवा रे ना
 रामा सात गो तावा बांधे छतिया दसवन्ती रे ना
 रामा सातवां तो तावा बांधे कोंहइनिया रे ना
 रामा दसवंती के मारे दुधवा जोरवा रे ना
 रामा हो गइल फैसलवा रे ना
 रामा लड़िका के ले गइले घरवा रे ना

उसके बाद शोभा ने अपनी बहिन फुलकारी को गड्डे में डालकर पटवाकर मार डाला। चतुर्गुन को घर का मालिक बनाया। इस प्रकार शोभानायक और दसवंती का दिन फिर लौटा और वे सुख से रहने लगे। इस लोकगाथा में तत्कालीन व्यापारी समाज के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का चित्रण मिलता है। व्यापार के काम से व्यापारियों का मोरंग (पूर्णिमा और नेपाल के निकट तराई का इलाका) बहराइच, बरहज जाना पीछे पत्नी का दुख झेलना और अंत में सच्चे प्रेम की जीत के साथ सुखांत कथा विधान प्रेम के बहुविध रूपों को भी संवेदनशीलता से चित्रित करता है। इस लोकगाथा में दसवंती का चरित्र नैतिकता, सहनशीलता, प्रेम, निष्ठा और सत्य का मूर्तिवत आदर्श बनकर व्यक्त हुआ है। शोभानायक भी पत्नी को दिए कष्ट का बदला लेकर न्यायप्रियता और सत्यनिष्ठा प्रमाणित करता है। पति पत्नी का एक दूसरे पर अटूट विश्वास गार्हस्थ प्रेम की महत्ता स्थापित करने के साथ जीवन की कठिनाईयों और समस्याओं का सामना करने की शक्ति और प्रेरणा भी देता है।

लोक कला की परम्परा

डॉ. मोहनसिंह मावड़ी

लोक की उत्पत्ति मानव सभ्यता के साथ हुई। कला का विकास अतीत के उन सभी युगों में हुआ, जिसे हम आज लोक कला कहते हैं। लोक के अभिप्रायों को आयाम प्रदान करने में लोक कलाकारों ने स्थायित्व दिया। इस तरह लोक कला की निरन्तरता में एक सामाजिक संचेतना है जो सृजन के लिए सदैव प्रेरित रहती है। लोक कला में एक सार्वभौमिक गुण विद्यमान रहता है, जो अपनी परम्परा की निरन्तरता: संजोये रखती है। अपनी इस प्रवृत्ति के माध्यम से वह अपने में एक संस्कृति की ऐतिहासिकता को बनाये रखती है। विगत युगों की अधिकांशतः कलाकृतियों में भारतीय संस्कृति की स्पष्ट झलक समाहित है।

लोक कला जनमानस की पारम्परिक अभिव्यक्ति है। इसका सृजन विभिन्न तरह के लोकोत्सवों, त्योहारों एवं संस्कारों इत्यादि में होता है। भारत के विभिन्न स्थानों पर यह विभिन्न तरह के अभिरूपों के द्वारा दृष्टिगोचर होती है। यँ तो हमारे देश में लोक कला का अपार भण्डार है, जिसे लोक जन अपनी आस्था से इन्हें साकार करने की कोशिश करता है। जनमानस द्वारा इस तरह के आस्थावान प्रसंग में ईश्वर के प्रति तत्परता व्यक्त होती है। जन मानस लोक कला के उन आयामों को स्वरूप प्रदान करता है, जिसे हम लोक कलाकार कहते हैं। समाज की संस्कृति को प्रबलता प्रदान करने में लोक कला का विशेष योगदान है। इसकी सृजनात्मक प्रवृत्ति को वह एक परम्परा के सूत्र में परिवर्तित करता है, जो सतत् गतिवान रहती है।

भारत में लोक कला के प्रत्यक्ष दर्शन यहाँ के त्योहारों, उत्सवों एवं संस्कारों में किये जा सकते हैं। भारत भूमि को देवी-देवताओं का निवास स्थल माना जाता है। कुमाऊँ में भी लोक कला के विभिन्न आयाम स्वरूप ग्रहण करते हैं, जिनमें जीवमातृका (ज्यँति) पट्टा को विवाह संस्कार पर चित्रित किया जाता है।

यहाँ मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती है, ऐसी यहाँ की जनश्रुति है। विभिन्न तरह की जातियों वाला यह देश अपने में एकता को संजोये हुए है, जो विभिन्न रीति-रिवाजों को हर्षोल्लास से मनाते आ रहे हैं। यही इस बात का प्रमाण है कि लोक कला का अस्तित्व आज भी है।

लोक कला प्राचीन युग की देन है। इसमें देश की पूर्ण सभ्यता की झलक छिपी रहती है। भारतीय लोक कला आर्य तथा अनार्य दोनों जातियों के तत्त्व का निचोड़ है, जो आलेखन प्रायः देखने को मिलते हैं, उनमें दो युगों की आरम्भिक अवस्था के स्वरूप का फल है।¹

प्रागैतिहासिक काल से लेकर अब तक 'लोक कला' निरन्तर मानव जाति के विकास के साथ आगे बढ़ी है।² लोक कला निरन्तर प्रगतिशील और परिवर्तनशील रही है। यह गहरे मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण, अति संवेदनशील, जीवन के उत्थान के लिए आनन्दायी, सूक्ष्म और असरदार खूबियों से परिपूर्ण है।³ लोक कला इसी मानव अभ्युदय के साथ विकसित हुई है। उसके धार्मिक विश्वासों तथा आस्थाओं के नियमन में पली है। घर-आँगन की भित्तियों पर स्त्रियों द्वारा चित्रों को उकेरने के उदाहरण मिलते हैं। उसकी सौन्दर्यानुभूति एवं उसके घर-आँगन की मांगलिक अभिलाषा पारस्परिक सुख-समृद्धि के प्रतीक रूप में अभिव्यक्त होती रही है।⁴

लोक कला लोक जीवन से पोषण और प्रेरणा पाती है एवं उसी को प्रतिबिम्बित करती है। जन साधारण का जीवन सीधा-सादा होता है। उसका स्वभाव सरल और रुचि संस्कार शून्य होते हुए भी सहज सुभग होती है। लोक जीवन के ये शाश्वत तत्त्व लोक कला की सीधी और ओजमय रेखाओं, सिद्धान्त व सम्प्रदाय से उन्मुक्त कल्पना विस्तार तथा नयनाभिराम वर्ण विन्यास में अभिव्यक्त होते हैं।⁵

कला की उन्नति में लोक कला का भी बहुत महत्त्व रहा है। कला का विकास तो राजाश्रयों में पेशेवर कलाकारों द्वारा हुआ है, परन्तु लोक कला का विकास घरों के आँगनों में, ग्रामों में, अशिक्षित जातियों में, बिना कोई प्रसिद्धि के शान्त व अबोध रूप से धार्मिक तथा सांस्कृतिक व पारिवारिक परम्पराओं के साथ बिना बौद्धिक पुट के होता आ रहा है। लोक कला को किसी आश्रय, प्रलोभन या प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं होती। वह तो स्वच्छंदता तथा मौलिकता के साथ सदा प्रगति करती है, क्योंकि उसका सम्बन्ध तो प्राणिमात्र से है।⁶ लोक कला का निर्माण लोकोपयोग के लिये होता है, इसलिये सरलता तथा सादगी इसके प्राण हैं, यद्यपि इस सरलता तथा सादगी में भी कई प्रकार की ऊपरी सूझ-बूझ लगानी होती है। इसलिये कई बार लोक कलाओं में सामान्य जन को

अस्पष्टता का आभास होता है तथा आज की पाश्चात्य संस्कृति में रंगी जनता के दिल में ये प्राचीन भी दृष्टिगत होती हैं। इसलिये लोक कलाओं के प्रति उदासीन भी रहते हैं।⁷

लोक कला क्षेत्रीय आधार पर ग्रामीण जनमानस की परम्परागत प्रवृत्ति से गतिशील रहती है। इसकी गतिशीलता में भारतीय संस्कृति को प्रबलता मिलती है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में लोक कला का स्वरूप भिन्न-भिन्न होते हुए भी एक है। इन्हीं के आधार लोक कला में सौन्दर्यात्मक तत्त्वों की अनुभूति होती है। लोक कला के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टि डालें तो हमें यहाँ की परम्परागत संस्कृति की अनुभूति होती है। लोक कला में परम्परागत प्रतीकों को स्वरूप दिया जाता है। यहाँ विभिन्न तरह के रीति-रिवाजों एवं संस्कारों पर पारम्परिक विधाओं को क्रमबद्धता से अंकित किया जाता है। लोक कला में क्रियात्मक पहलू महत्त्वपूर्ण होते हैं।

परम्परागत हमारी लोक रुचियों को जीवित रखने के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों में लोक कला ने जो कार्य किया, विज्ञान और दर्शन की दृष्टि से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। हमारे अज्ञानतम लोक कलाकारों ने, जिनमें नारियों की मुख्यता रही है, धरती के प्रति अपनी पवित्र निष्ठा को अपने हृदय की अजस्र रस-धारा द्वारा अभिसिंचित करके कुछ ऐसी सहज, सुन्दर कलाकृतियाँ हमें दीं, जो हमारे राष्ट्र की सम्पूर्ण चेतना को आह्लादित करती है।⁸ लोक कला से हमारा स्वाभाविक अपनत्व है। भारतीय कला और विशेषतः चित्रकला के संवर्द्धन-समुन्नयन की दृष्टि से उसका विशिष्ट महत्त्व रहा है।⁹ इन्हीं लोक परम्पराओं के अन्तर्विलयन और संस्करण से जिस लोक कला परम्परा का यहाँ विकास हुआ है, वह निश्चित देश के अन्य स्थानों में प्रचलित लोक कला परम्पराओं से कहीं अधिक परिष्कृत और विकसित थी।¹⁰ कलाकार का सहज प्रयास यही रहता है कि वह केवल उन्हीं बिम्बों को उभारे जो कि विषय के चारित्रिक गुणों को उद्घाटित करने में सक्षम हों। वस्तुतः मानव की सहज संवेदनशीलता किसी भी वस्तु के चारित्रिक गुणों को क्षणिक इन्द्रियानुभव होने पर ही पहचान लेती है।¹¹

लोक कला की सार्थकता ही लोक कला को सार्वभौमिक स्वरूप देती है। उदाहरण के लिये मिट्टी से बनी खिलौना गाड़ी। गुजरात के गाँवों में आज भी बच्चे इससे खेलते हुए देखे जाते हैं, लेकिन यह खिलौना अति प्राचीन है। कुछ विद्वानों के मत में तो

यह प्रागैतिहासिक है।¹² 'लोक कला जन-सामान्य की विशेषताओं व ग्रामीण जन समुदाय की सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है।'¹³ लोक कला, लोक मानस से प्रेरणा और पोषण पाती है एवं उसी को प्रतिबिम्बित करती है। जन साधारण के जीवन का स्वभाव अटल और उसकी रुचि-संस्कार शून्य होते हुए भी सहज और प्रकृत होती है। लोक जीवन के ये शाश्वत स्वर लोक कला की रक्ष और ओजमय रेखाओं, सिद्धान्तों व सम्प्रदायों के झमेले से उन्मुक्त कल्पना-विस्तार तथा चारु वर्ण-नियोजन में अभिव्यक्त होते हैं। हृदय की सरलता, सुबोधता, लोक कला के प्राण हैं।¹⁴

इन लोक चित्रों में भी एक प्रकार की लय, गति, रंग आदि की समुचित योजना होती है। इन चित्रों में अलौकिक आकर्षण होता है। रंगों का संयोजन पृष्ठभूमि को देखते हुए ही किया जाता है। यदि पृष्ठभूमि लाल है तो उस पर खड़िया से सफेद रेखाओं से आकृति बनाई जाती है। सफेद पृष्ठभूमि पर गेरू या लाल व पीले रंगों का चित्रण किया जाता है। नीले रंग का भी प्रयोग लोक चित्रों में बहुत मिलता है। चावल, आटा और हल्दी का तो लगभग सारे देश के लोक चित्रों में प्रयोग मिलता है।¹⁵ भारतीय कला की लोक परम्पराएँ आज भी गाँवों में, नगरों में अपनी सुदृढ़ आस्थाओं के साथ प्रचलित हैं। उन लोक परम्पराओं के दर्शन संस्कारों में, अनुष्ठानों में, धार्मिक कार्यों में लोक कल्पना गौर-गणेश, करवा पूजन, दीप पूजन आदि के रूप में होते हैं। इनकी पृष्ठभूमि में परिवार की समृद्धि, पत्नी द्वारा पति के दीर्घायु की कामना, अपने सुहाग की रक्षा की कामना, बाल-वृन्दों के चिरंजीव होने की मंगल भावना निहित है।¹⁶ लोक कला के ये तत्त्व लोक जीवन से ही ग्रहण किये गये हैं। लोक जीवन इन तत्त्वों में ताने-बाने से बुना हुआ सचमुच आज भी उसी सरलता, स्वतन्त्रता, सच्चाई और विश्वासों के अलंकरणों से दीप्त मानव समाज के काम आ रहा है।¹⁷

अनादि लोक कला से प्रेरणा प्राप्त कर हमारे सभी युगों के चित्रकारों ने अपनी कलाकृतियों में लोकप्रियता का तत्त्व भरा। आज का चित्रकार प्राचीन चित्र शैलियों की मान्यता के सम्बन्ध में भले ही मतभेद रखता हो, किन्तु लोक कला के लिए उसकी भी स्वाभाविक अभिरुचि है। लोक शैली की प्रेरणा से आज के प्रतिष्ठा प्राप्त कुछ चित्रकार अच्छे प्रयोग प्रस्तुत कर रहे हैं। लोक शैली से प्रेरित इस प्रकार आधुनिक चित्र सामाजिक जीवन में उसी

निष्ठा से अपनाये जा रहे हैं।¹⁸ लोक कला किसी राष्ट्र की सांस्कृतिक मर्यादा है। इस मर्यादा में अनुस्यूत भिन्न-भिन्न संस्कृतियाँ अपने मूल रूप में एक ही दृष्टिगत होती हैं। इस दृष्टि से लोक कला का राष्ट्रीय महत्त्व है। हमारी सांस्कृतिक भावभूमि को अभिसिंचित करके लोक कला की धारा समान गति से निरन्तर बढ़ती रही है। उसमें उत्ताल तरंगें नहीं, गर्जन-तर्जन नहीं। वह तो सागर के समान गम्भीर और अनन्त है।¹⁹

लोक कला जनमानस की अभिव्यक्ति है, जो परम्परागत रूप से संस्कृति की एक उपज है। समाज में विभिन्न तरह के कार्य-कलापों से ओत-प्रोत होकर यह अपना स्वरूप निरन्तर गतिशील बनाये हुए है। किसी भी समाज की पहचान वहाँ की संस्कृति एवं लोक कला के आयामों से होती है। वास्तविकता को व्यक्त करने में जनमानस की यह एक सहज अभिव्यक्ति है। ग्रामीण जनों की निष्ठा का यह प्रमाण है कि वह परम्परागत रूप से विभिन्न अवसरों पर अपने स्वरूप को व्यक्त करती है। लोक कला के आयामों में एक संचेतना है, जो धर्म की ओर सदैव प्रेरित करती है। संस्कृति में धर्म का समन्वय लोक कला को प्रबलता प्रदान करता है। जन सामान्य की यह धारणा अपनी पारम्परिक रीति-रिवाजों के प्रति सजगता को व्यक्त करती है।

अपने देवी-देवताओं को संस्कारों, त्योहारों, अनुष्ठानों इत्यादि अवसरों पर प्रतीकात्मक रूप से प्रतिष्ठित करना जनमानस की आस्था है। लोक कला में प्रतीकों का पूजन किसी देवी-देवता के प्रति आस्था को इंगित करता है। इससे जनमानस की भावना को प्रबलता मिलती है। जनमानस की यह परम्परा अपने पारिवारिक सौहार्द्रता के प्रति सजगता को वर्णित करता है। उनकी इस निष्ठा में हृदय की करुणा समाहित रहती है। आज देश के विभिन्न अंचलों में लोक कला के आयाम परम्परागत रूप में अत्यधिक परिष्कृत एवं विकसित हो गये हैं। उन पर गहन शोध, अन्वेषण, प्रचार-प्रसार एवं अन्य कई सम्भावनाएँ साकार हो रही हैं। मानव की सहजतम प्रवृत्ति से लोक कला को मौलिक रूप से परम्परागत गतिशीलता प्रदान हुई है।

लोक कला का संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यह मानव के बाह्य एवं आन्तरिक मूल्यों को अभिव्यंजित करती है। लोक कला जन साधारण की सहज अभिव्यक्ति का ही एक स्वरूप है। यह कला मानव की आस्था व विश्वास के साथ

चली है। लोक कला में जीवन के अनेक आयाम समाहित रहते हैं। लोक कला के ये आयाम संस्कृति की गहनता को व्यक्त करते हैं। संस्कृति के आधारभूत सिद्धान्त लोक कला को साकार करने में सहायक होते हैं। लोकहित में क्रियान्वित ये आयाम अपनी विभिन्नताओं से प्रबलता प्रदान करते हैं। संस्कृति के परिवेश में

इसकी प्रासंगिकता यहाँ के संस्कारों, उत्सवों एवं अनुष्ठानों में विभिन्नतम आयामों के रूप में मुखरित होती है। इस प्रकार लोक कला देवी-देवताओं के प्रतीकों को व्यक्त करने के साथ-साथ परम्परागत रूप से गतिमान रहती है।

सन्दर्भ

1. झा, डॉ. चिरंजी लाल- भारतीय चित्रकला का विकास।
2. चतुर्वेदी डॉ. गोपाल मधुकर - भारतीय चित्रकला।
3. वही।
4. अग्रवाल, डॉ. आर.ए.- कला विलास, भारतीय चित्रकला का विवेचन।
5. कादरी, एस.एम. असगर अली- भारतीय चित्रकला का इतिहास पृ. 307, स्टूडेंट स्टोर 35 ए-1, रामपुर बाग, बरेली-243001 (2002)
6. शर्मा, डॉ. लोकेश चन्द्र- भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास।
7. चन्द्ररवाकर, प्रो. पुष्कर- लोक कला मूल्य और सन्दर्भ।
8. गैरोला, वाचस्पति- भारतीय चित्रकला।
9. वही।
10. हाण्डा, ओमचन्द्र- पश्चिमी हिमालय की लोक कलाएँ।
11. वही।
12. धमीजा, जसलीन- इण्डियन फोक आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स।
13. डॉ. चिरंजीलाल - कला के दार्शनिक तत्त्व।
14. अग्रवाल, डॉ. आर.ए.- कला विकास भारतीय चित्रकला का विवेचन।
15. शर्मा, डॉ. लोकेश चन्द्र- भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास।
16. चतुर्वेदी, डॉ. गोपाल मधुकर- भारतीय चित्रकला।
17. वही।
18. गैरोला, वाचस्पति- भारतीय चित्रकला।
19. वही।

कुमाऊँ और भारतीय कहावतें

प्रो. शेरसिंह बिष्ट

मौखिक लोकसाहित्य में लोकोक्तियों का विशेष महत्त्व है। यदि हम प्रत्येक प्रकार की उक्ति को लोकोक्ति मानें तो लोकोक्ति के दो भेद माने जा सकते हैं—एक पहेली और दूसरा कहावतें। यद्यपि 'लोकोक्ति' शब्द प्रायः कहावत के अर्थ में व्यवहृत होता है। कहावत को कुमाऊँनी में 'किस्स' या 'किस-पाँस' कुमाऊँ के ही शौका समाज की जोहारी बोली में 'औखाण', गढ़वाली में 'पखाणा' या औखाणा राजस्थानी में 'ओखाणो' या 'कुवावत', लहंदी में 'अखाण', गुजराती में 'उखाणुं', मराठी में 'आणा' 'आहणा' या 'म्हण', बांग्ला में 'प्रवाद' या 'वचन' उर्दू में 'जर्बुल मिस्ल' मालवी में 'केवात' तमिल में 'पजामोलि' तेलुगु में 'समेटा' मलयालम में 'पजम चोल', संस्कृत में 'आभाणक' 'प्रवाद' या 'लोकोक्ति', पालि में 'भसितो' 'आहाण' या 'आहाणय', प्राकृत में 'आहाण' या 'आक्खाणयं' तथा अंग्रेजी में 'प्रोवर्ब' कहा जाता है।

कहावतें लोक मानस द्वारा युग-युगों से प्राप्त जीवन और जगत के कटु अनुभवों एवं व्यावहारिक सत्यों की वे अनुभवजन्य ज्ञानशिमियाँ हैं, जिन्हें व्यावहारिक जीवन का 'नीतिशास्त्र' कहा जा सकता है। सामान्यतः कहावतें घटनामूलक होती हैं। जीवन और जगत में घटित किसी घटना विशेष से प्राप्त अनुभव ही एक 'सीख' या 'नसीहत' के तौर पर 'कहावत' का रूप ले लेती है।

इसी कारण श्रेष्ठ कहावतों का संदर्भ प्रायः बहुत व्यापक होता है। उनकी सार्थकता और प्रासंगिकता देशकाल में आबद्ध न होकर, कालातीत हो जाती है, जैसे 'चोर थे चोरि करिए, गुसै थे चितैक है रह' ऐसे दोगले चरित्र वालों के लिए है, जो हर युग में विश्व के हर समाज में पाए जाते हैं। 'रीस खे आपण घर, बुद्धि खे परै घर' ऐसी कहावत है जो जीवन के व्यावहारिक अनुभव से उपजी है। किसी देशकाल निबद्ध घटना विशेष के अनुभव से उपजी ये उक्तियाँ अपने में अनुभवजन्य सत्य की ज्ञानराशि को समेटे रहती हैं, जिससे ये देशकाल निरपेक्ष होकर सार्वभौमिक प्रासंगिकता से सम्पृक्त हो जाती है। इसी कारण इनका महत्त्व कभी कम नहीं होता। कुमाऊँनी की ऐसी सैकड़ों कहावतें हैं, जिनकी प्रासंगिकता हर युग में बनी हुई है।

कहावतों में गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है। कहावतों के माध्यम से जीवन-सत्यों को बड़ी कुशलता से उद्घाटित किया जाता है। कहावतें युग-युगों से प्राप्त ज्ञान व अनुभव की संक्षेपीकृत वे मणियाँ हैं, जो अपनी प्रकाश रश्मियों से प्रत्येक पीढ़ी का पथ प्रदर्शन करती हुई, उन्हें सांसारिक जीवन का व्यावहारिक अनुभव कराती हैं। जीवन में भावावेश के कारण होने वाली गलतियों तथा अबुझ पहली सदृश रहस्यमय मानव प्राणी को विविध कोणों से न समझ सकने के कारण आने वाली परेशानियों के प्रति ये कहावतें मानव समाज को सचेत और सावधान करती रहती हैं। कहावतें बुद्धि और अनुभव के संयोग से उत्पन्न ऐसी मणियाँ हैं, जो अपनी आभा चतुर्दिक विकीर्ण कर, मानव-जाति के मानसपटल को प्रकाशमान करते हैं। व्यावहारिकता, चरित्र-मूल्यांकन तथा सामान्य बुद्धि ज्ञान का जैसा सटीक एवं सहज निदर्शन कहावतों में मिलता है, वैसा अन्य किसी भी साहित्यिक विधा में इतने सूक्ष्म लयात्मक रूप में नहीं मिलता। कहावतों में गूढ़ ज्ञान का सहज ढंग से अपने भीतर समेटने की अद्भुत शक्ति है, जो भाषा में न केवल नई प्राण-शक्ति का संचार करती है, अपितु एक विशिष्ट प्रकार की भाषिक समाहार शैली के माध्यम से 'गागर में सागर' को समेट लेती है।

कहावत है- 'चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी'। जहाँ तक 'बानी' या 'बाणी' का सवाल है, भारत एक बहुभाषी एवं बहुसंस्कृतियों का देश है। आश्चर्य तब होता है, जब इस बाहरी विविधता के गर्भ में सांस्कृतिक सोच एवं भावात्मक एकता की एक ऐसी स्रोतस्विनी प्रवाहमान नजर आती है, जो ऊपरी तौर पर देखने से नहीं दिखाई देती। यदि आप गौर से भारतीयता झाँककर देखें तो 'भारतमाता' चाहे बाहरी तौर पर कितनी ही नानारूपिणी, बहुरंगी और विविध भंगिमाओं से सुसज्जित क्यों न दिखाई दे, भीतर से अंतरात्मा की एक ही पुकार, एक ही स्पंदन, प्राणों की एक ही झंकार और एक ही लय उसमें सुनाई देती है। धर्म चाहे कोई हो, संप्रदाय चाहे कितने ही हों, वेशभूषा भले ही कैसी ही हो, भाषिक अभिव्यक्ति चाहे कोई भी क्यों न हो, अंतरात्मा का स्वर एक ही है।

इसी भावात्मक एकता, बुनियादी सोच, जीवनानुभवों की गहरी पैठ एवं सांसारिक व्यावहारिकता के प्रति भारतीय जनमानस के दृष्टिकोण में आश्चर्यजनक रूप से पाई जाने वाली एकता को

प्रामाणिक रूप से उद्घाटित करने के लिए भारतीय भाषाओं की कहावतों के चंद ऐसे नमूने प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जो कुमाऊँनी कहावतों से 'हुबहू' मिलते हैं। यकीन नहीं होता कि भारत के दक्षिणी छोर का केरलवासी लोकमानस भी वही सोचता और कहता है, जो हिमालय की उपत्यका में वर्षा एवं बर्फ की फुहारों से नहाता, हवा के ठण्डे झोंकों से रोमांचित होता, ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी भू-भाग में कुलाँचें हिरन व गाय-बछियों की तरह छलाँगें मारता (उदुङकता) कुमाऊँवासी सोचता है। ऐसा लगता है कि वास्तव में उत्तरांचल भारत का मस्तिष्क है, क्योंकि जो वह सोचता है, वही गगनचुंबी हिम पर्वतमालाओं से टकराकर देश के दक्षिणी-पूर्वी व पश्चिमी भू-भागों के जनमानस में प्रतिध्वनित हो उठता है। अन्यथा ऐसा कौनसा कारण है कि कुमाऊँ हिमालय के लोकमानस से उपजी कहावतें शदियों से श्रुति परंपरा से प्रवाहमान होकर, अद्यतन अपनी चिरंतनता, प्रासंगिकता एवं सार्वभौमिकता बनाए हुए है तथा भारत की अन्य भाषाओं की कहावतों में कुमाऊँनी कहावतों की अनुगूँज ही प्रतिध्वनित होती सुनाई देती है। कुछ कहावतें तो कुमाऊँनी कहावतों की अनुवाद-सी जान पड़ती है।

अर्थगौरव, अर्थलय, सूक्ष्मता, गंभीरता, जीवनानुभवों की पैनी दृष्टि तथा नीतिगत निर्णयों की दृष्टि से कुमाऊँनी कहावतें कथ्य एवं अभिव्यक्ति-भंगिमा की जिन ऊँचाईयों को छूती हैं, उनकी तुलना बिहारी के दोहों के अर्थ-वैविध्य एवं समाहार शक्ति तथा संस्कृत साहित्य की सूक्तियों से की जा सकती है। ऐसी विशिष्टता अन्य भाषाओं की कहावतों में कम देखने को मिलती है। ये तथ्य कुमाऊँनी तथा भारतीय कहावतों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट उजागर होते हैं।

कहावतों का तथ्य वैविध्यमय एवं बहुरंगी होता है। उनमें ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नृतात्विक एवं स्थानीय तत्त्व पाए जाते हैं, जो अपने अतीत को समझने के द्वार भी हैं। कहावतें भाषिक वैशिष्ट्य को भी सुरक्षित रखती हैं, जो क्षेत्र विशेष के भाषा विषयक अध्ययन में सहायक होती है। यहाँ हमने बारह भारतीय भाषाओं की चंद कहावतों के समकक्ष, समान आशय वाली कुमाऊँनी कहावतों की एक छोटी-सी बानगी प्रस्तुत की है, जिससे प्रामाणिक किया जा सके कि भारतीय जनमानस के बुनियादी सोच में एकरूपता है तथा विविधता में आंतरिक एकता विद्यमान है। भारतीय कहावतों के लिए मैंने श्री विश्वनाथ दिनकर नरवणे

द्वारा संपादित ग्रंथ 'भारतीय कहावत संग्रह' (1993) को आधार बनाया है तथा कुमाऊँनी कहावतें मेरे द्वारा स्वयं की एकत्रित की हुई हैं।

कुमाऊँनी और असमीया की कुछ कहावतें

1. कु. - अतपुरि विद्या जियड़ी काव।
अस. - अल्प विद्या भयंकारी।
हिं. अनु. - अधूरा ज्ञान भयंकर होता है।
2. कु. - काण्किक तै कि दिन कि रात।
अस. - कणार कि दिन राति।
हिं. अनु. - अंधे के लिए क्या दिन क्या रात।
3. कु. - घ्वड़ तो दिनै में दौड़ौ, ब्याज रात-दिन दौड़ौ।
अस. - टकार सुद घोरा आगत लरे।
हिं. अनु. - रुपये का ब्याज घोड़े के भी आगे दौड़े।
4. कु. - दानाक गोरुक कि दाँत देखण।
अस. - दानर गरुर दाँत नाचाबा।
हिं. अनु. - दान में मिली गाय के दाँत क्या देखना?
5. कु. - जस दाम, उस काम।
अस. - दाम चाइ काम।
हिं. अनु. - जैसा दाम वैसा काम।
6. कु. - नखाणी ब्वारिक नौ नखार।
अस. - बंचिबर कन्यार ओंठरता मत।
हिं. अनु. - बसना न चाहने वाली बहू के अठारह बहाने।
7. कु. - समार आडुवलि घ्यु न निकलन।
अस. - पो न आडुलिरे घिउँ नोलाम।
हिं. अनु. - सीधी उँगली से घी नहीं निकलता।
8. कु. - स्याप लै मरि जौ, लट्ठि लै न टुटौ।
अस. - सापो मरक लाठिओ ना भाडक।
हिं. अनु. - साँप भी मरे, लाठी भी न टूटे।
9. कु. - आँसि आपणी तरफ कै खँचौ।
अस. - काछि गालै टाने।
हिं. अनु. - हंसिया अपनी ओर ही खींचता है।

कुमाऊँनी और उड़िया की कुछ कहावतें-

1. कु. - खाण आपण मनक, पैरण दुसरक मनक।

- उड़ि. - आप रुचि भोजन, पररुचि पहरण।
हिं. अनु. - अपनी रुचि से खाना, दूसरों की रुचि से पहनना।
2. कु. - आ बल्दा मैकें मार।
उड़ि. - आ बळद मोते बिन्ध
हिं. अनु. - आ बैल मुझे मार।
3. कु. - घ्यु ढोलीण खिचड़ि में।
उड़ि. - घिड कहिं रे पड़िला ना, मुग पड़ितरे पड़िला।
हिं. अनु. - घी किस में गिरा? मूंग की खिचड़ी में।
4. कु. - बात् सरौन्यक हात चुपड़ँ
उड़ि. - दीप तेजिले हात चिक्कण।
हिं. अनु. - दीपक की बाती ऊँची करने वाले के हाथ चिकने ही होंगे।
5. कु. - दुदयाव गोरुकि लातै सौन।
उड़ि. - दुध खाइब जे, नात सहिब से।
हिं. अनु. - दूध खाएगा जो (गाय की) लात सहेगा वह।
6. कु. - बालकि जन मरौ इज, बुड़कि जन मरौ ज्वे।
उड़ि. - न मरु बाल जननी, न मरु बुढ़ा धरणी।
हिं. अनु. - न मरे बालक की माँ, न मरे बूढ़े की पत्नी।

कुमाऊँनी और गुजराती की कुछ कहावतें-

1. कु. - जैलि करि शरम, वीक फुट करम।
गुज. - जेणे राखी लाज तेनुं बगड्युं काज।
हिं. अनु. - जिसने की शर्म, उसके बिगड़े कर्म।
2. कु. - बिन पाद्ये बास न आँनि।
गुज. - पाद वगर गंध न उठे।
हिं. अनु. - बिना पाद के गंध नहीं उड़ती।
3. कु. - स्याप सब जाग ट्यड-म्यड कै हिटौ,
दुव पण जाणहै समार है जावौ।
गुज. - साप सधले वांकों, पर दरमा पेसे प्यारे पाधरो।
हिं. अनु. - साँप सर्वत्र टेढ़ा चले, बिल में सीधा घुसे।
4. कु. - वीक तो मूताक दि जलनई।
गुज. - एने मूतरे दीवो बले।

- हिं. अनु. - उसके पेशाब से भी दिये जल रहे हैं।
5. कु. - उजड़न किमोई, लागन पाँख।
गुज. - कीडीनें पांखो आवी ते मरवानी निशानी।
हिं. अनु. - चीटी को पंख आवे तो मरने की निशानी (समझो)।
6. कु. - ग्यड़-ग्यड़ कै राश बड़ौ।
गुज. - कण-कण करतां मण थाय।
हिं. अनु. - कण-कण करने मन हो जाए।

कुमाऊँनी और पंजाबी की कुछ कहावतें

1. कु. - काण कै कि चैं, द्वि आँख साण।
पंजा. - अन्ना की लोड़े, दो आँखिआँ।
हिं. अनु. - अंधा क्या चाहे, दो आँखें।
2. कु. - नौ नौ दिन, पुराण सौ दिन।
पंजा. - नवां नो दिन, पुराणां सो दिन।
हिं. अनु. - नया नौ दिन, पुराना सौ दिन।
3. कु. - बुड़ मरि सकन नै क्वड़ छोड़ि सकन।
पंजा. - बुढ़ा ना मरे ना मंझां देवें।
हिं. अनु. - न बूढ़ा मरे, न जगह खाली करे।
4. कु. - सैपकि अघाड़ि, घ्वाड़कि पछाड़ि न जाण।
पंजा. - हाकम दे अगगों ते घोड़े दे पिच्छों नही लंघणा चाहेंदा।
हिं. अनु. - शासक के आगे और घोड़े की पीछे नहीं आना चाहिए।
5. कु. - म्यार घर आलै कि लालै, त्यार घर ऊँलो कि देलै?
पंजा. - साड़े आओ की लिआओ, असी जासां की देसो?
हिं. अनु. - मेरे घर आओगे तो क्या लाओगे, तेरे घर जाऊँगा तो क्या दोगे?
6. कु. - झुटि लै खुटि नै।
पंजा. - झूठ दे पैर नहीं होन्दे।
हिं. अनु. - झूठ के पाँव नहीं होते।

कुमाऊँनी और बंगला की कुछ कहावतें

1. कु. - अनदेखी चोर बुब-बाब करोबरि।
बांग. - अदेखा चोर बापेर ठाकुर।
हिं. अनु. - अनदेखा चोर दादा के (बाप के) बराबर।
2. कु. - द्वि भान जै दगाड़ हवाला, ट्वासाठोस होली।
बांग. - एक जाय गाय थाकले हाँड़िते हाँड़िते ठोकाटुकि हय।
हिं. अनु. - एक साथ होने पर बर्तन बजते हैं।
3. कु. - बैठण एसि ठौर कि क्वे न कवो उठ,
बुलाण यस कि क्वे न कवो चुप।
बांग. - एमन ठाँये बसबे, केउ ना बले- 'ऊठ'
एमन कथा कइबे, केउ ना बले- 'झूठ'
हिं. अनु. - ऐसी जगह बैठ, जहाँ से कोई ना कहे 'उठ',
ऐसी बातें बोल कि कोई न कहे- 'झूठ'
(अर्थात् झूठ मत बोलो, चुप हो जाओ)
4. कु. - कर जै नै तो, डर क्याक?
बांग. - करिनि तो डरि केन?
हिं. अनु. - जब किया ही नहीं तो डर काहे का?
5. कु. - गूड़ उज्याव में खवौ मिठै, अन्यार में खवौ मिठै।
बांग. - गुड़ अंधकारेओ मिष्टि।
हिं. अनु. - गुड़ अंधेरे में भी मीठा।
6. कु. - मै चावौ प्यट, स्यैणि चावौ फ्यट।
बांग. - मा चाय आँत पाने, माग चाय टेंक पाने।
हिं. अनु. - माँ देखे पेट की ओर, पत्नी देखे पोटली की ओर।

कुमाऊँनी और मराठी की कुछ कहावतें

1. कु. - कुल देखि चेलि लौन, थौन देखि गोरु लौन।
मरा. - कूल पल्लून चलि, हाडका, थलि पल्लून गाइ हाडका।
हिं. अनु. - कुल देखकर लड़की लाएँ, थन देखकर गाय लाएँ।

2. कु. - चले दिण तुल घर, व्वारि लौन नान घर।
मरा. - चलि होडांगेरि दिवकां, सून गारिबा घरचि हाडका।
हिं. अनु. - लडकी बडे घर में दी जाय, बहू गरीब घर की लाई जाय।
3. कु. - जसि तेरि दछिन, तसि मेरि पुज्।
मरा. - दक्षिणा तशी प्रदक्षिणा।
हिं. अनु. - जैसी दक्षिणी वैसी प्रदक्षिणा।
4. कु. - वाल्कि टोपि पालाक् ख्वार, पालकि टोपि वालाक् ख्वार।
मरा. - नर्सपा मुंडासु, पुर्सपा बोडाक।
हिं. अनु. - नर्सण की पगड़ी पुर्सण के सिर।
5. कु. - पाणि सबुकैं ध्वी, पाणि कैं को ध्वी?
मरा. - पाणी सर्वास धुते, पण पाण्यास कोणी धुवावे?
हिं. अनु. - पानी सबको धोता है, लेकिन पानी को कौन धोए?

कुमाऊँनी और सिंधी की कुछ समानार्थी कहावतें -

1. कु. - मैक प्यटै बै सिखि बेर क्वे न औंन।
सिंधी - माउ पेटां को सिखीर कोन ईदो आहे।
हिं. अनु. - माँ के पेट से ही कोई सीखकर नहीं आता।
2. कु. - पाकी खाण छोड़ि दिण, पर दगड़ न छोड़न।
सिंधी - मानी पकी छड़िजे, सुहिबत न छड़िजे।
हिं. अनु. - पका खाना छोड़ दो, पर साथ मत छोड़ो।

कुमाऊँनी और राजस्थानी की कुछ कहावतें

1. कु. - ज्योड़ि जलि गै पर पैणि न गै।
राज. - जेवड़ी बलगी पण बल को गयो ना।
हिं. अनु. - रस्सी जल गई पर बल (रेंटन) नहीं गया।
2. कु. - मैं राणि तु, राणि, को भरौ नौल बै पाणि।
राज. - मैं बी राणी तूँ, बी राणी, कूण भरै पैंडे को पाणी।
हिं. अनु. - मैं भी रानी, तू भी रानी कौन भरेगा पानी।
3. कु. - बंदि मुट्टि लाखकि, खुलि गै खाककि।
राज. - बंधी मूठी लाख की, खुल्ली बीखर ज्याय।

- हिं. अनु. - बंद मुट्ठी लाख की, खुल जाए तो खाक की।
4. कु. - जस-जस कामल भिजौ, तस-तस भार बड़ौ।
राज. - ज्युँ-ज्युँ भीजै कामली, त्युँ-त्युँ भारी होय।
हिं. अनु. - ज्यों-ज्यों कम्बल भीगे, त्यों-त्यों भारी होय।
5. कु. - भगवान जैकैं दिण में जै ऐ, छप्पर फाड़िबरे दिंछ।
राज. - भगवान दै जणा छप्परफाड़ रई दे दे।
हिं. अनु. - जब ईश्वर देता है तो छप्पर फाड़कर देता है।
6. कु. - एकै तौलक र्वट कि छ्वट कि म्वट।
राज. - एक तवा की रोटी, के छोटी के मोटी।
हिं. अनु. - एक ही तवे की बनी रोटी, क्या छोटी क्या मोटी।
7. कु. - चोर थै चोरि करिए कै, गुसै थै चितैक है रए।
राज. - चोर नै कह चोरी कर, साहूकार नै कह जाग।
हिं. अनु. - चोर से कहा चोरी करो, साहूकार से कहा सजग रहो।
8. कु. - दाई बै कि पेट लुकुँन?
राज. - दाई सैं पेट छानो कोनी?
हिं. अनु. - दाई से पेट क्या छिपाना?

कुमाऊँनी और कन्नड़ की कुछ कहावतें

1. कु. - खाण आपण मणकस, पैरण दुसरक मणकस।
कन्न. - ऊट तन्निच्छे, नोट पररिच्छे।
हिं. अनु. - खाना अपनी मर्जी से, पहनना दूसरों की मर्जी से।
2. कु. - एक आँखिक कि उज्याव, एक च्यलक कि पुत्यार।
कन्न. - ओंदु कण्णु कण्णल्ल, ओब्ब मगनल्लन।
हिं. अनु. - एक आँख, आँख नहीं, एक बेटा-बेटा नहीं।
3. कु. - मन करै हौर, करम करै हौर।
कन्न. - तानेणिसुवुदोंदु, देव बगेयुवुदोंदु।

- हिं. अनु. - हमारी मर्जी कुछ, दैव में और कुछ।
4. कु. - टाड़क मितुर, न्यड़क पाणि।
कन्न. - नेंटरू दूरविरबेक, नीरू हत्तिरविरबेकु।
हिं. अनु. - रिश्तेदार दूर हों, पानी पास हो।
5. कु. - कानैली निकलौ कान।
कन्न. - मुल्लिनिंद मुल्लु तेगेयबेकु।
हिं. अनु. - काँटे से ही काँटा निकले है।
6. कु. - रीस खे आपण घर, बुद्धि खे परै घर।
कन्न. - सिट्टु तनगे केडु, समाधान पररिगे, केडु।
हिं. अनु. - क्रोध अपना दुश्मन, सब औरों का।
7. कु. - माघकि मरी सासु, भदौ ऐ आँसु।
कन्न. - अत्ते, सत्ते आरू तिगल मेले सौसेकण्णल्लि
नीरू बन्तु।
हिं. अनु. - माघ में मरे सास, भादौ में आए आँसू।

कुमाऊँनी और तमिल की कुछ कहावतें

1. कु. - जैक क्वे न हुन, वीक भगवान हुँछ।
तमि. - अकदिक्कुत् देय्वमे तुणै।
हिं. अनु. - अनाथ का भगवान ही मालिक है।
2. कु. - सौड़ अनुमान खुट पसारण।
तमि. - वरवुकुत् तगुंद शेलवु।
हिं. अनु. - आय के अनुकूल खर्च।
3. कु. - कूण सितुल, करण मुशिकल।
तमि. - शोल्वदु इलेशु शोय्वदु अल्लवा पिरयाशम्।
हिं. अनु. - कहना सरल है, करना तो कठिन है।
4. कु. - मै चावौ प्यट, स्यैणि चावौ प्यट।
तमि. - पेट्रवल् वयिट्रै पार्माल्, पेण्सादि मडियै
पार्पाल्।
हिं. अनु. - माँ पेट देखगी, पत्नी गोद (गठरी) देखेगी।
5. कु. - म्यार् याँ आलै कि लालै, त्यार् या ऊँलो कि
देलै।
तमि. - एन, वीट्टुक्कु वंदाल् एन्न कोण्डु वरूगिराय
उन् वीट्टीक्कु, वंदाल एन्न कोडुक्किराय?
हिं. अनु. - मेरे घर आओगे तो क्या लाओगे?, तुम्हारे
यहाँ आऊँगा तो क्या दोगे?

कुमाऊँनी और तेलुगु की कुछ समानार्थी कहावतें-

1. कु. - सौँ है ब्याज लाडिल।
तेलु. - असलु कंटे वड्डी मुद्दु।
हिं. अनु. - मूलधन से ब्याज प्रिय है।
2. कु. - कुकुर मुख लगै, थोल चाटौ।
तेलु. - कुक्कनु मुद्दु पेट्टकोण्टे, मूतेल्ला तेगनाकुतुन्दि।
हिं. अनु. - कुत्ते को चूमने पर (वह) मुँह चाटने लगता है।
3. कु. - नान मुख टुलि बात।
तेलु. - चिन्न नोटिकि पेद्द माट।
हिं. अनु. - छोटा मुँह, बड़ी बात।
4. कु. - जाँ पाणि वाँ हिल।
तेलु. - नीरू उन्न चोटने बुरद।
हिं. अनु. - जहाँ पानी होगा, वहाँ कीचड़ भी होगी।
5. कु. - भुकणी कुकुर काटण नै।
तेलु. - मोरिगे कुक्क करवदु।
हिं. अनु. - भौंकनेवाला कुत्ता कभी काटता नहीं।
6. कु. - च्यलो तु जी रये, ब्वारी त्यर चर्यो टुटि
जावो।
तेलु. - कोडुकु बागुण्डवले, कोडलु मुण्डमुय्यले।
हिं. अनु. - पुत्र सुखी रहे, पर पुत्रवधू विधवा बने।

कुमाऊँनी और मलयालम की कुछ कहावतें

1. कु. - जसै देखनक क्वा भैर, उसै भितेर।
मल. - आकृति पोल, प्रकृति।
हिं. अनु. - जैसी सूर वैसी आदत।
2. कु. - पाणिलि तली कै जाण, ध्वाँलि मली कै
मल. - तालन्न निकत्ते नीरोटु।
हिं. अनु. - नीची जमीन की ओर ही पानी बहता है
और धुँवा ऊपर की ओर।
3. कु. - सबै जै मरि जाला त उनुहि रोल् को?
मल. - लोकरेल्लां चत्ताल शोकं चेटवानार्।
हिं. अनु. - सब लोग मर जायेंगे, तो कौन मातम करेगा?
4. कु. - जसि-कसि औलाद है, बिन औलादै भल।
मल. - वल्लात्त मक्केलेक्काल् इल्लात्तमक्कल्।

- हिं. अनु. - कपूतों की अपेक्षा अपूत रहना ही अच्छा।
 5. कु. - जाँ स्यूड़लि जाण, वाँ धागालि जाण।
 मल. - सूचि पोय वलिये नूलुं।
 हिं. अनु. - सूई के पीछे सूत भी।

इस प्रकार कुमाऊँनी तथा भारतीय भाषाओं की कहावतों में तमाम ऐसी कहावतें मिलती हैं, जो सामूहिक अनुभव को विविध बिम्बों के साथ एक ही आशय के रूप में प्रस्तुत करती है। भारतीय भाषाओं की कहावतों में समानता का एक कारण हमारी अतिप्राचीन

सांस्कृतिक विरासत भी रही है, जिसकी जड़ें सदियों से पीढ़ी यहाँ के लोकमानस में संस्कार रूप में विद्यमान हैं। चिंतन और जीवन शैली का वह प्राचीन सांस्कृतिक आधार भारतीय जनमानस की सोच को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है, जिससे जीवन-जगत के प्रति नजरिये में उसमें एकरूपता पाई जाती है। निष्कर्षतः इन कहावतों की तुलनात्मक तालिका के माध्यम से इस बहुभाषी, बहुआयामी, बहुधर्मी एवं बहुरंगी भारतवर्ष में पूरब से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक भारतीय एकात्मकता की एक झलक अवश्य दिखाई देती है।

संदर्भ :

- 1 हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 (पारिभाषिक शब्दावली), वाराणसी संवत् 2020 - प्रधान संपादक : डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
- 2 भारतीय कहावत संग्रह, पुणे, 1993 - विश्वनाथ दिनकर नरवणे
- 3 लोक साहित्य विज्ञान, आगरा, 1971 - डॉ. सत्येन्द्र
- 4 कुमाऊँ का लोक साहित्य, अल्मोड़ा, 1962 - डॉ. त्रिलोचन पाण्डे
- 5 कुमाऊँनी भाषा और उसका साहित्य, लखनऊ, 1977 - डॉ. त्रिलोचन पाण्डे
- 6 कुमाऊँ का लोक साहित्य (परिचयात्मक संग्रह), बरेली, 1971 - डॉ. कृष्णानंद जोशी
- 7 प्यास, अल्मोड़ा 1950 - चन्द्रलाल चौधरी
- 8 कुमाऊँनी भाषा की कहावतें, अल्मोड़ा, 1960 - चन्द्रलाल चौधरी
- 9 कुमाऊँनी हिन्दी शब्दकोश, नई दिल्ली, 1985 - डॉ. नारायण दत्त पालीवाल

कमार जनजाति

डॉ. सुशील सोमवंशी 'नेताम'

कमार जनजाति मध्यप्रदेश की अत्यंत पिछड़ी जनजाति में से एक है। आज 'कमारों' के जीवन एवं साहित्य की विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है। 'कमार' ग्रामीण आदिवासी हैं, जो प्रायः गाँव और जंगलों के समीप होते हैं। 'कमार' ग्रामीण बस्ती से दूर जंगल में किसी नदी के किनारे बसते हैं। 'कमार' एक विशेष पिछड़ी जनजाति है। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में कुछ अंग्रेज अध्ययनकर्ताओं ने कमारों के सामाजिक अध्ययन की पहल की थी, तब उन्होंने 'कमारों' को अत्यधिक पिछड़ा हुआ और गुफाओं में रहने वाला बताया था। 'कमार' जंगलों में पाये जाते हैं, जहाँ वे जंगली जीवन व्यतीत करते हैं। वे वन उत्पाद पर जीवन-यापन करते हैं। उन्हें कृषि से सख्त नफरत है।

'कमार' आदिवासी आज भी वनों में झोपड़ियाँ बनाकर रहते हैं, गुफावासी या गुहावासी 'कमार' अब दिखाई नहीं देते। तात्पर्य यह है कि 'कमारों' के समूहों ने गुहावास का त्यागकर वनवासी जीवन स्वीकार कर लिया है। हो सकता है 'कमारों' के साथ यह क्रम उन्नीसवीं शताब्दी तक चला हो। इसी के आधार पर डॉ. बाल ने 1878 में 'जंगल लाइफ इन इण्डिया' में 'कमारों' को गुहावासी कहा होगा। कमारों के मुख्यतः दो उपभेद होते हैं- बुधरजिया, माकड़िया। बुधरजिया उच्च वर्ग के माने जाते हैं, जबकि 'माकड़िया' निम्न वर्ग के। 'माकड़िया कमार' बंदरों का माँस खाते हैं।

'बुधरजिया' मैदानी इलाकों में निवास करते हैं। 'माकड़िया' कमार जिन्हें 'पहाड़पाटियाँ' भी कहा जाता है। ये जंगलों में पहाड़ पर निवास करते हैं। ये मैदानी इलाकों में नहीं पाये जाते हैं, जिस कारण इन्हें 'आमा मौरा' कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है- 'मैदान में नहीं।'

'कमार' एवं कंवर जनजाति को प्रायः एक ही माना जाता है क्योंकि दोनों ही जनजाति की उपशाखाएँ एक सी हैं। 'कमार' जनजाति की उपशाखाओं में कनकार, तनवार, कमलावंशी, दूधकंवर, पैकरा आदि मानी जाती है।

हिन्दुओं की ही आदिकालीन शाखा होने के कारण कमार जनजाति में भी गोत्र पाये जाते हैं। 'कमार' जाति में सात गोत्र पाये जाते

हैं- जगत, नेताम, मरकाम, सोरी, (बाघ सोरी और नागसोरी) कुंजम, मरै और छेदैहा।

कमार जनजाति चार गोत्र समूहों में विभाजित हैं।

येर वेन सगा; सात भाइयों का गोत्र समूह
सार वेन समा; छः भाइयों का गोत्र समूह
सि वेन समा; पांच भाइयों का गोत्र समूह
नाल वेन समा; चार भाइयों का गोत्र समूह

इन चारों गोत्र समूहों का निर्माण क्रमशः 7,26,22 और 14 गोत्रों को मिलाकर हुआ है। उपरोक्त गोत्रों की उत्पत्ति के विषय में कमार अत्यंत रोचक कथा प्रस्तुत करते हैं।

कथा

अत्यंत प्राचीन समय की बात है कि संसार में भयंकर प्रलय आया, जिसके बाद पृथ्वी का निर्माण हुआ। कुछ समय पश्चात् दूसरा जल विप्लव आया। 'कमार' लोगों के घरों में पानी भरने लगा और वे अपनी जान बचाने के लिए इधर-उधर भागने लगे। तैरने के सिवाय उनके पास कोई दूसरा साधन नहीं था, किन्तु इतने बड़े समुद्र को 'कमार' कैसे पार कर सकता था?

कमारों का एक समूह 'कछुए' की पीठ पर बैठकर पानी को पार कर गया, जिसे 'नेताम' कहते हैं। आज वे कछुए को अपना गोत्र चिन्ह मानते हैं तथा उसकी पूजा करते हैं।

दूसरा समूह मगरमच्छ की पीठ पर बैठकर पानी को पार कर रहा था, किन्तु मगरमच्छ बीच में ही बिगड़ गया, उन्हें खाने लगा। उनमें से कुछ तैरकर कछुए की पीठ के निकट पहुँच गये तथा कछुए से उन्होंने अपनी पीठ पर बैठाने की प्रार्थना की। कछुए ने कहा- उसकी कमर पर काफी बोझ है और वह अधिक नहीं ले जा सकता। कमारों ने कछुए से कहा -मामा हमारी जान बचा लो। तब कछुए ने उन्हें अपना भांजा बनाया और उनको अपनी पीठ पर बैठाकर उनकी जान बचाई। इस वर्ग को 'मरकाम' कहा जाता है, ये मगरमच्छ को जहाँ भी देखते हैं, उसे मार डालते हैं और कछुए की पूजा करते हैं।

एक वृद्ध कमार अपने पुत्र के लिए पुत्र वधू लाया। पुत्र वधू घर में बुहार (झाड़ू) लगा रही थी, तभी वहाँ बुद्धदेव का बकरा आ गया तथा उस पुत्र वधू पर मोहित हो गया, साथ ही उसे आलिंगन

करना भी चाहा। पुत्र वधू ने कहा - यदि मेरे तुम्हारे प्रेम से संतान उत्पन्न हुई तो क्या होगा? बुद्धदेव के बकरे ने कहा कि कुंजम गोत्र कहलायेगी। बकरे ने उस पुत्र वधू को जंगल में तीन दिन अपने पास रखा। चौथे दिन कमार लोगों ने वृद्ध की पुत्र वधू को खोजना प्रारंभ किया। खोजते-खोजते उसे जंगल में पकड़ा, परन्तु तब तक वह गर्भवती हो चुकी थी। इस स्त्री से जो संतान हुई वह 'कुंजम' गोत्र की कहलायी तथा उनका गोत्र चिन्ह बकरा हुआ।

आदिवासी कमारों का एक समूह संसार में घूमता फिरता रहा, इसे 'जगत' कहते हैं। एक कमार वर्ग भूखा होने के कारण 'मुर्दे' को खा गया, इसे 'मरै' कहते हैं। ये प्राकृतिक मृत्यु से मृत प्राणी नहीं खाते, बल्कि स्वयं प्राणी की हत्या कर खाते हैं। जो कमार अपना निर्वाह किसी प्रकार नहीं कर सके, उन्हें 'छेदैहा' कहा जाता है।

प्राचीन काल में गोत्र 'कमार' आदिवासियों के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण नहीं थे, किन्तु अब गोत्रों का विकास हो रहा है।

'कमार' जनजाति में अब गोत्र-संगठन विकसित हो गया है, फिर भी गोंडों की तुलना में 'कमारों' में गोत्र का महत्त्व कम है।

गोंड की ही शाखा कमार है, किन्तु गोंड विकसित हैं और कमार अल्पविकसित। कमार गोत्र पर विशेष ध्यान नहीं देते, लेकिन अनेक स्थानों पर अब 'कमार' गोत्र को कुछ हद तक महत्त्व देने लगे हैं। प्रत्येक गोत्र का 'गोत्र चिन्ह' होता है। गोत्र एवं गोत्र चिन्ह का आपस में घनिष्ठ सम्बंध होता है, जिसे अंग्रेजी में टोटम कहते हैं।

गोत्र एवं गोत्र चिन्ह का पारस्परिक संबंध बहुत ही घनिष्ठ होता है। गोत्र चिन्हों को प्रतीक के रूप में प्रयोग किया जाता है। अपने-अपने गोत्र का संबंध किसी भौतिक वस्तु, पशु, पेड़-पौधे या अन्य किसी प्राकृतिक वस्तु से मान लेते हैं, तब ये प्राकृतिक जीव या वस्तु गोत्र चिन्ह कहलाने लगते हैं। अतः स्पष्ट है कि गोत्र या गोत्र समूह का गोत्र चिन्ह वस्तु के साथ एक गूढ़ या अलौकिक सम्बंध होता है, यह विश्वास या धारणा ही गोत्र चिन्हों का आधार है। यह आवश्यक नहीं है कि गोत्र अथवा गोत्र समूह अपनी उत्पत्ति गोत्र चिन्ह से ही माने, इन दोनों में कुछ विशिष्ट संबंध है यह विश्वास ही पर्याप्त है। यह संबंध कुछ पवित्र व अलौकिक

विश्वासों पर आधारित होता है। उनमें सबसे प्रमुख विश्वास तो यही है कि गोत्र चिन्ह गोत्र के सदस्यों की रक्षा करता है, उन्हें आपदाओं के सम्बन्ध में चेतावनी देता है तथा भविष्य के कार्यों के सम्बन्ध में राह सुझाता है। गोत्र के प्रति भय, श्रद्धा, भक्ति और आदर की भावना होती है। गोत्र चिन्ह को मारना या खाना अथवा उसे किसी प्रकार से चोट पहुँचाना निषिद्ध होता है, उसके मरने पर या मरने का समाचार पाकर उसी प्रकार से शोक मनाया जाता है और उसका मृत्यु संस्कार किया जाता है जैसा कि परिवार के किसी सदस्य के मरने पर किया जाता है, जैसे घर में पानी छिड़कते हैं, लीपते हैं, एक हांडी बाहर कर देते हैं, इत्यादि।

गोत्र चिन्ह के प्रति श्रद्धा के कारण, उसके चित्र की गुदाई शरीर पर भी करवाते हैं।

सामान्यतः व्यक्ति न तो अपने गोत्र के भीतर विवाह कर सकता है और न ही अपने गोत्र-समूह के अन्य गोत्रों के अंदर विवाह करने की अनुमति मिलती है।

‘कमार’ प्रकृति-पुत्र होने के कारण ईश्वर में अटूट विश्वास रखते हैं। प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में वे अपने ईष्ट देव की उपासना करते हैं। उनसे सभी के मंगल कार्य करने की प्रार्थना करते हैं। अपने प्रत्येक कार्य में ईश्वर को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। क्योंकि उनका मानना है कि उनकी उत्पत्ति स्वयं ईश्वर के द्वारा की हुई है।

मान्यता है कि कमारों की उत्पत्ति देवडोंगर गाँव से हुई है। मान्यतानुसार इनका सबसे बड़ा देवता आज भी ग्राम देवडोंगर के वामन डोंगरी में निवास करता है। कहते हैं इन्हीं वामन देव ने पृथ्वी की उत्पत्ति के समय ‘कमारों’ को पैदा किया था। आज भी कमार वामन देव की पूजा करते हैं और किसी भी सुख-दुख में उनका नाम लेते हैं।

कमार जनजाति में हिन्दुओं के समान ही एक या दो ईश्वर नहीं होते, बल्कि ‘कमारों’ में अनेक ईश्वर पाये जाते हैं, प्रत्येक ईश्वर अपने-अपने क्षेत्रों में प्रमुख होते हैं, फिर भी सर्वोच्च ईश्वर का पद ये महादेव को देते हैं।

संस्कृति : रीति-रिवाज एवं परम्पराएँ

किसी संस्कृति की व्याख्या अनेक साहित्यकारों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से की जाती रही है, किन्तु साहित्यिक दृष्टिकोण से

संस्कृति का क्षेत्र सामाजिक व्यवस्था की समग्रता से जुड़ा है। अर्थ की दृष्टि से संस्कार का रूपान्तर ही संस्कृति है।

कमार समाज में रहकर अनेक प्रकार के संस्कारों द्वारा अपने जीवन को परिमार्जित करता है, जन्म से मृत्यु तक के आवश्यक विधि-विधानों के द्वारा कमार जीवन में जो कुछ भी प्राप्त करता है या प्रदर्शन अथवा अभिव्यक्ति के द्वारा एक दूसरे को हस्तांतरित करता है, वह संस्कृति के अंतर्गत माना जा सकता है।

संस्कृति के सम्बंध में टायलर के शब्द - ‘संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के नाते प्राप्त करता है।’

पिडिंगटन के कथनानुसार- ‘संस्कृति उस भौतिक तथा बौद्धिक साधनों या उपकरणों का सम्पूर्ण योग है, जिनके द्वारा मानव अपनी प्राणीशास्त्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि तथा अपने पर्यावरण को अनुकूल करता है।’

हाबल के अनुसार- ‘उन सब व्यवहार प्रतिमानों की समग्रता को संस्कृति कहा जाता है, जिन्हें मानव अपने सामाजिक जीवन में सीखता है।’

कमारों के लिए संस्कृति समाज का उपहार है, इसके अंतर्गत कपड़ा, मकान, भाषा, धर्म, कला आदि का समावेश होता है।

समाज में आवश्यक सम्बन्ध बनाने और निरंतर स्थाई रखने के लिए कोई न कोई संस्थात्मक तरीका प्रत्येक समाज में पाया जाता है, जिसे रीति-रिवाज कहा जाता है। रीति-रिवाज प्रत्येक समाज चाहे वह आदिम हो या सभ्य, समाज की संस्कृति का एक आवश्यक अंग होता है, क्योंकि यही आधार है जिससे समाज की प्रारंभिक इकाई का निर्माण होता है। समाज में जीवन के लिए इसी कारण रीति-रिवाज आवश्यक भी है। यही कारण भी है कि प्राचीन जनजातियों से लेकर अतिआधुनिक समाज में रीति-रिवाज आज भी जीवंत पाये जाते हैं।

कमार जनजाति के रीति-रिवाज सरल एवं स्पष्ट हैं। कमारों में अधिक जटिलता नहीं पायी जाती। आज भी कमार अपने आदिम सरल रीति-रिवाजों की मान्यताओं के साथ वनों के भीतरी भागों में निवास कर रहे हैं।

कमार समाज में रीति-रिवाज का आधार परिवार है। इस परिवार के साथ ही इनके नातेदारी के संबंध, जो गोत्रों के आधार पर बनाये जाते हैं रीति-रिवाज की इकाई के रूप में कार्य करते हैं। कमार दो वर्गों में विभाजित हैं - बुधरिया, माकड़ियां। कमारों की आंतरिक व्यवस्था में ये अन्य गोत्रों में विभाजित हैं, जैसे- नेताम, मकरम, सोरी (नाग सोरी, बाघ सोरी) मरै, कुंजाम, जगत तथा छेदेहा। इन्हीं गोत्रों के आधार पर कमार अपने रीति-रिवाजों के साथ विवाह संबंधों का निर्धारण करते हैं। एक ही गोत्र-चिन्ह सम्बंधी मान्यताएँ भी कमारों के रीति-रिवाजों से जुड़ी हुई हैं।

कमारों में प्रायः रिश्ते-नातों का आधार श्रद्धा एवं सम्मान का होता है तो कुछ प्रेम-प्रीति का। माता-पिता के साथ जो संबंध होता है- उसका आधार श्रद्धा और सम्मान है, पत्नी के साथ प्रेम का सम्बन्ध, छोटे भाई-बहनों के साथ प्रीति का सम्बन्ध, साले-बहनोई-या जीजा साली का सम्बन्ध-मधूर सम्बन्ध है। तात्पर्य यह कि सम्बन्धियों के मध्य व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए, इसके लिए कमारों में कुछ नियम होते हैं, इसी को नातेदारी नीतियाँ कहते हैं। कमार आदिम संस्कृति के अनुसार नातेदारी एवं रिश्तेदारी रखते हैं, इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- रक्त संबंधी, विवाह संबंधी। कमारों का रक्त संबंधियों में विवाह करना निषिद्ध है। कमार नातेदारी संबंध संज्ञाओं के आधार पर दो वर्गों में विभाजित है- वर्गगत नातेदारी, विशिष्ट नातेदारी। अधिकतर कमारों में वर्गगत नातेदारी पायी जाती है, जो इनके आदिम संस्कृति के प्रमाण प्रस्तुत करती है, इन सभी संबंधों के प्रयोग में कमार जिन सम्बोधनों को उपयोग में लाते हैं, वे सभी 'कमारी बोली' के होते हैं।

कमारों में अपने माता के भाई या पिता की बहन, पुत्र या पुत्री के मध्य विवाह संबंध पाये जाते हैं। कमार-पत्नी के पिता, माता के भाई, पति के पिता तथा पुत्र के ससुर को 'मामा' 'ममा' शब्द से सम्बोधित करते हैं, जो आदिम संस्कृति को प्रमाणित करता है।

कमारों में अन्य जनजाति के समान ही परिहास एवं परिहार सम्बन्ध दिखाई देते हैं, जिसके अंतर्गत जीजा-साली, देवर-भाभी, तथा काका-भतीजा के मध्य हँसी-मजाक का संबंध होता है, अतः ये परिहास की श्रेणी में आते हैं। सास, ससुर, छोटे भाई की पत्नी, पति के बड़े भाई के मध्य हास-परिहास नहीं होता, इस कारण ये परिहार की श्रेणी में आते हैं।

कमारों के रीति-रिवाजों में पड़ोसी जनजातियों, स्थानीय लोगों का प्रभाव देखने को मिला, जिस कारण कमारों में नातेदारी, रिश्तेदारी के अलावा संस्कार सम्बंधी रीति-रिवाज भी पाये जाते हैं, जिन्हें कमार 'मितान' कहते हैं, जिनमें दो-गोत्र, जाति या समुदाय के लोग आपसी सहयोग, आत्मसम्मान की भावना से जुड़ते हैं। कमार में प्रचलित 'मितान'-समूह 'महाप्रसाद', 'गजामुन', 'गंगाजलीन' है। मितान समूह की रीतियाँ मौखिक होती हैं, जब मितान सम्बंध बनाये या बनते हैं तब इन मौखिक रीतियों का पालन अनिवार्य होता है।

कमार जंगलों में रहकर जीवन चक्र से सम्बंधित सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करते हुए जीवन के आवर्तन-जन्म-विवाह-मृत्यु के साथ कठिन जंगली जीवन यापन करता है।

कमारों में विवाह के पश्चात् रजोधर्म का न आना, यह इंगित करता है कि महिला गर्भावस्था में है। गर्भावस्था के दौरान महिला के खान-पान पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। लेकिन कुछ कार्य करने की निषिद्धता हो जाती है। शिशु का जन्म घर पर ही होता है। प्रसूति के लिए बुजुर्ग महिला सहयोग करती है, प्रसव के पश्चात् शिशु की नाल को माता का भाई (मामा) 'कांड' या 'हंसिये' से काटता है- शिशु यदि पुत्र है तो नाल को 'कांड' (तीर) से काटा जाता है, यदि शिशु पुत्री है तो नाल 'हंसिये' से काटी जाती है। कमारों की मान्यता है कि पुत्र वर्णों के कार्यों में दक्ष होगा एवं पुत्री घरेलू कार्यों में दक्षता प्राप्त करेगी।

शिशु जन्म के छह दिन पश्चात् शिशु का नामकरण किया जाता है, जिसे 'छठी' कहते हैं। नामकरण वार, समय, घटना के आधार पर होता है, जैसे:-

नामकरण

दिन	बालक	बालिका
सोमवार	सोमु, सोम्या, सोमल्या, सोल्या, सोतु, सुक्या।	सोमली, सरती, सरली, सुली, सुकी।
मंगलवार	मंगलु, मंगतु, मुर्म्या, मालू, मेहरू।	मुंगरी, मंगली, मंगती, मोहली, मोली मारी,
बुधवार	बुधा, बुद्धा, बुदा, बुला बुद्ध, बुधसिया, बिरला, बुनी, बन्नी, बदली।	बुधी, बुरली, बुनी, बनी बिरा, बिल।

गुरुवार	गुमान, गुलिया, गणस्या गुरिया, गुबरू, गबरू, गोबर।	गुली, गुमली, गुरली, गुटी, गुमची
शुक्रवार	शुक्या, सुकालु, सुकलु सुकला, शुमान, शुस्मान, सुल्या, सुरिया	सुकली, सुरती, सुरमी, सुरली।
शनिवार	सालक, सानु, सालु, शांतु, शनी, शान्तु, शाल्या, शानुक।	सत्या, शौनी शुस्मी, शुमी।
रविवार	रतन, दिवा, रूजन, रूकलु रूपजा, रानजी, रोकलु।	रूमली, रतनी, रतिया, रकली, रूहली, रूपला, रमला।

शिशु के नामकरण की और भी रीतियाँ हैं, जैसे शिशु के जन्म के बाद बैगा शिशु के कान में उसके पूर्वजों के नाम बारी-बारी से लेता है, किसी नाम पर शिशु रोने लगता है तो यह माना जाता है कि संतान के रूप में उस विशिष्ट पूर्वज ने जन्म लिया है और उसका नामकरण बैगा उसी पूर्वज के नाम पर कर देता है। एक अन्य विधि में बैगा नवजात शिशु की हथेली पर चावल के दाने गिराता है, शिशु की हथेली में जितने चावल के दाने रुकते हैं, वह उतनी पीढ़ी पूर्व का है। बैगा उस पीढ़ी का विवरण उसके दादा-दादी से पूछकर यदि लड़का है तो 'आजे' का नाम, यदि लड़की है तो 'आजी' का नाम रखकर नामकरण कर देता है।

छठी के ही दिन शिशु एवं माता का शुद्धीकरण किया जाता है, फिर भी यदि लड़का हुआ है तो 3 माह एवं लड़की हुई है तो 2 माह तक माता को किसी भी प्रकार का कोई कार्य नहीं करने दिया जाता।

अधिकांश कमार युवा अपने माता-पिता की पसंद से ही विवाह करते हैं। विवाह योग्य युवक-युवती के परिवार से बात करना एवं दोनों के मध्य सम्बंध स्थापित करने वाले व्यक्ति को 'महालिया' कहते हैं। प्रायः 'महालिया' लड़की का जीजा होता है, किंतु यह कोई आवश्यक नहीं है। अर्थात् कोई भी 'कमार पुरूष' 'महालिया' बन सकता है। विवाह के प्रारंभ से अंत तक के समस्त वैवाहिक रीति-रिवाजों में 'महालिया' की भूमिका अहम् होती है। विवाह बिना किसी पण्डित या पुजारी के सम्पन्न होता है। समस्त वैवाहिक कार्य 'महालिया' ही कराता है।

कमारों में जब कोई कन्या पसंद आ जाती है तो फलदान की रस्म होती है, जिसमें 'महालिया' के साथ वर के पिता व अन्य

रिश्तेदार वधू के घर 2 बोटल शराब, धान (2-3 पैली) तम्बाकू बीड़ी बंडल ले जाते हैं, इस समय 'धनु-कांड' का होना जरूरी है सम्पूर्ण सामग्री वधू के पिता को दे दी जाती है, फलदान के दौरान आपसी चर्चा एवं बैगा के द्वारा विवाह की तिथि निश्चित की जाती है। बैगा अपनी ईश्वरीय विद्या से धान के दानों को हाथ में लेकर, उन्हें विभिन्न संख्याओं में बांटकर विवाह की एवं दिन तय करता है। जब जंगल में महुए के वृक्षों पर फूल खिलते हैं और वे फूल गिरना शुरू हो जाते हैं, यही फूलों के गिरने का समय कमारों के लिए शुभ होता है। इसी समय ये विवाह करते हैं, यह माह फाल्गुन, चैत्र अर्थात् मार्च, अप्रैल, मई के होते हैं। विवाह के मंडप में महुए का खंभा गाड़ा जाता है, जिसे 'बुआ' कहा जाता है। इसके ऊपर मिट्टी का लेप कर उसे चौकार कर देते हैं एवं सूखने पर कुछ कलाकृतियाँ गेरू, छुई मिट्टी या नील से बनायी जाती हैं। मंडप के ऊपरी भाग पर जामुन के पत्ते डाले जाते हैं। रात भर चलने वाले इस विवाह में मंडप के चारों ओर बराती और घराती दोनों ही परंपरागत रीति में नाचते हैं और इसी मंडप में वर-वधू 'बुआ' के सात फेरे लेते हैं। विवाह के लगभग 4-5 दिन पूर्व से ही कमार वर-वधू का नाम लेना बंद कर दिया जाता है। उन्हें (वर-वधू को) राजा-रानी नाम से सम्बोधित किया जाता है। कमारों के विवाह कुछ-कुछ मराठी-बंगाली विवाह पद्धति से मेल खाते हैं, जैसे वर-वधू के सिर पर बंधा 'मौर' (मुकुट)। रातभर वर-वधू को गोद में उठाकर नृत्य करना। 'तेलचुधी', 'तेलचढ़ी' एवं सम्पूर्ण रात्रि वर-वधू का मात्र श्वेत वस्त्र धारण कर नृत्य इत्यादि। सभी कमार शादी के घर में जाकर जोर शोर से नृत्य करते हैं, जिसे 'जालिआना' कहा जाता है। कमारों में दहेज की कोई विशेष परंपरा नहीं, फिर कमारी रीति रिवाजों के अनुसार वर पक्ष पर आर्थिक दबाव ज्यादा रहता है। वर-पक्ष अधिक सामग्री भेंट करता है, जबकि जो सामग्री वधू पक्ष वर पक्ष को भेंट करता है, वह सम्पूर्ण भेंट वहीं मंडप में ही, समाज के मध्य वितरित हो समाप्त हो जाती है। विवाह में वर पक्ष द्वारा वधू के पिता को दी जाने वाली सामग्री में सफेद साड़ी, चूड़ियाँ, कलगी, दर्पण, चावल (आधा से अधिक किंवटल) 5 नारियल, एक पीपा महुए की शराब, 2 चकी गुड़ एवं इससे अधिक जो भी वर पक्ष वधू के पिता को देना चाहे, वधू के पिता द्वारा-कम से कम 6 बॉटल महुए की शराब एवं बारात को भोजन, जिससे अनिवार्यतः चावल, कढ़ी, सब्जी होती है।

कमारों के विवाह में परंपरागत गीतों एवं नृत्य के अतिरिक्त पारंपरिक वाद्ययंत्रों को बजाया जाता है, जिसे बजाने का कार्य 'गांडा जाति' के लोग करते हैं। विवाह के अंत में विदाई से पूर्व 'टिकावन' होता है और अंत में विदा। विशेषतः इस सम्पूर्ण विवाह में कहीं भी पण्डित या बैगा विवाह कार्य सम्पन्न कराते दिखाई नहीं देता, सम्पूर्ण वैवाहिक कार्य 'महालिया' ही करता है।

अभी विवाह पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ, इस विवाह की पूर्णता वर पक्ष के निवास पर पहुँचकर, कम से कम दो दिन बाद होगी, वहाँ भी तेल चढ़ेगा, तेल उतरेगा, रातभर पारंपरिक नृत्य होंगे।

कमार गाँव में जैसे ही बारात वधू को लेकर वर के घर के बाहर तक पहुँचेगी, बाहर ही वर-वधू को 1-2 घंटे चबूतरे पर बैठा दिया जाता है, जिसे 'बासा' कहते हैं। 'बासा' में गीत-नृत्य चलता रहता है, तभी जो लोग बारात में नहीं जा सके थे, वे वर-वधू (राजा-रानी) को ले जाते हैं। पुनः राजा-रानी जब 'बासा' में आते हैं, तब वर-वधू को गृह-प्रवेश के लिए द्वार पर खड़ा कर आरती उतारते हैं, जिसे 'आरथी' कहा जाता है। शाम होते तक सभी पुनः 'बासा' में एकत्रित होंगे और रातभर राजा-रानी (वर-वधू) को नचायेंगे, जिसे 'नचावा' कहते हैं। प्रातः होते तक भी 'नचावा' बंद नहीं होता। फिर वर-वधू के मध्य नेग की शराब सभी लोग बैठकर पीते हैं, जिसे 'जमाई बसून' कहा जाता है। इस शराब के सेवन के बाद 'लगीन' होता है, जिसमें मराठी रीति अनुसार दृश्य दिखते हैं। वर-वधू के मध्य चादर लगा दी जाती और सभी उन्हें चावल मारते हैं। वर की धोती से वधू की साड़ी बांध देते हैं, बंधने वाली गिठान में 'कच्ची हल्दी' और 'सात चावल' बांध देते हैं, इस 'लगीन गठ' को 'गठभारय' कहा जाता है। कमारों का वरिष्ठ व्यक्ति या अन्य अनुभवी कमार वर-वधू के पैरों के अंगूठों को मिलाकर बांधता है, जिसे 'लगीन जोड़ना' कहते हैं। 'धूत पईया' के तहत् आराध्य देव की अराधना की जाती है, बलि दी जाती है। कमारों में 'भांवर' होगी, वर-वधू को मंडप में खंभे से बांध दिया जाता है और ऊपर से चादर लपेट दी जाती है। हवा कहीं से अंदर प्रवेश नहीं कर पाती, कहीं-कहीं लिपटी चादर के अंदर दीया भी जला दिया जाता है, यह एक कमारी खेल है, जिसके निर्णय इस इस तरह होते हैं—काफी समय तक खंभे से बंधे एवं चादर से लिपटे वर-वधू पसीने में तर-बतर हो जाते हैं, तब 'महालिया' चादर खोलता है, जिसे

ज्यादा पसीना आयेगा, वह दूसरे पर हावी रहेगा। कुछ समय पश्चात् 'चुकिया दिया' होता है, इसके अंतर्गत हल्दी पानी में घोलेते हैं, इस पानी को 'धरमपानी' कहते हैं। 'चौथिया' (वधू के माँ-बाप) को आवाज देते हैं और उनके आने पर 'धरम पानी' देते हैं। इस पानी को बनाने से पहले देवों को एक बोतल शराब और नारियल चढ़ाते हैं। कमारी विवाह का अत्यंत रोचक दृश्य 'चिकलही' से अंत तक का होता है। 'चिकलही' के अंतर्गत वर-वधू मंडप के मध्य बैठ जाते हैं, वर-वधू को 'पाक नचाना' होता है, अर्थात् वर-वधू इस कीचड़ में साथ-साथ नाचेंगे, यह नृत्य की पराकाष्ठा ही कहें कि पुनः नृत्य प्रारंभ होता है और तब तक चलता है, जब तक सभी उस कीचड़ में लथपथ सिर से पाँव तक नहीं हो जाते, निश्चित ही 'होली-सा' आनंद प्राप्त होता है। नृत्य बंद होने पर सभी कीचड़ में सने वर-वधू के साथ नाचते-गाते स्नान के लिए तालाब पर जाते हैं। तालाब पर जाते समय कमारों के पास 'धनु-कांड', 'चुकि', 'मटका', मछुए की टहनी' होना अत्यंत आवश्यक है। स्नानादि के पश्चात् वर-वधू को नवीन वस्त्र धरण करवाये जायेंगे। जिसे 'मड़वा-सड़ना' कहते हैं। विवाह का अत्यंत रोचक तथ्य 'मिर्गा' जो कि एक खेल ही है, जिसे खेलते-खेलते वर-वधू निवास तक आते हैं। 'मिर्गा' में कोई कमार हिरण या अन्य जंगली जानवर का स्वांग रचेगा। वर-वधू अपने सिर पर मटका रखेगी, जानवर का स्वांगधारी व्यक्ति नव वधू के आगे-आगे जानवर की भांति चलेगा। वधू के सिर पर रखे मटके एवं मटके को पकड़े हाथ के मध्य से अर्थात् कान के पास से, वधू के पीछे चल रहा वर, धनु-कांड से उस जानवर का निशाना लगाता है। निशाना चूकना नहीं चाहिये अन्यथा उस वर की 'धनु-कांड' में पारंगता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है। महुए की टहनी की आड़ से जानवर को छुपाया जाता है, यही क्रिया बार-बार की जाती है। जब निवास बहत कम दूरी पर होता है, तब कमार 'मोर्गा' करते हैं। 'साबर' (खोदने का लोहे का औजार) से खड्डा खोदने के बाद उसे टोकनी में रखेंगे, इसे 'कांदा खना' कहते हैं। 'कांदा खना' को टोकनी में रखकर आगे बढ़ते हैं, जिसे 'डोड़क' कहा जाता है। पुनः सभी कमार नाचते-गाते निवास की ओर चलने लगते हैं, तभी अचानक वहाँ स्वांग आदि के मनोरंजन भी होते हैं। इस तरह खेलते-कूदते, नाचते-गाते संध्या हो जाती है और निवास भी आ जाता है, अब 'मांदी' का कार्यक्रम होता है, जिसमें सभी कमार खूब शराब पीते हैं एवं दावत का आनंद उठाते हैं।

चूड़ी विवाह

इस प्रकार का विवाह कमारों में अधिक प्रचलित है, जिसके अंतर्गत किसी भी कमार महिला को चूड़ियाँ पहनाकर उसे अपने घर लाया जा सकता है। ऐसे विवाह अधिकांश विधवा अथवा तलाकशुदा महिलाओं से होते हैं, ऐसे विवाह में वर चूड़ियाँ पहनाते समय चार बोतल शराब, एक बकरा, पाँच काठा धान, एक काठा दाल, एक साड़ी देता है, यह विवाह पुनर्विवाह के लिए किया जाता है।

घर-जमाई विवाह

जिस कमार परिवार में पुरुषों की संख्या कम होती है पुरुषों की संख्या कम होने से परिवार का जीविकोपार्जन कठिन हो जाता है, तब ऐसे कमार परिवारों में घर-जमाई विवाह होता है, इसमें दुल्हा-दुल्हन के निवास पर रहता है। साथ ही पुनः उसका विवाह दुल्हन से होता है, ऐसे विवाहों को कमार हृदय से आत्मसात कर लेते हैं। दामाद को इज्जत की नजर से देखते हैं। दामाद को उस परिवार के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। सास-ससुर की मृत्युपरांत सम्पत्ति पर भी दामाद का अधिकार होता है।

भगोड़ी विवाह

ऐसे विवाहों की मात्रा कमारों में काफी कम है, जब कोई लड़का किसी लड़की को भगाकर ले जाता है, तब ऐसे विवाह को भगोड़ी विवाह अथवा 'पोहाऊन गला' विवाह भी कहा जाता है। लड़का-लड़की को पकड़ने के पश्चात् पंचायत बैठती है, जाति में पुनः शामिल करने के लिए उन्हें दण्ड के रूप में समाज को चावल का भोज, बीड़ी बंडल, 6 बोतल शराब देनी पड़ती है।

पैठू विवाह

इस विवाह में कमार लड़की-लड़के के यहाँ जबरदस्ती आकर रहने लगती है तो लड़के को उस लड़की से विवाह करना आवश्यक हो जाता है, ऐसे विवाह को पैठू या 'घर-घसियाँ' विवाह कहा जाता है। ऐसे विवाहों का निर्णय पंचायत लेती है।

कमार जनजाति में विवाह-विच्छेद भी होते हैं, जिन्हें 'गला पिछाड़ी' कहते हैं। 'गला पिछाड़ी' का निर्णय पंचायत में ही हो जाता है।

कमारों में 'गला पिछाड़ी' बहुत कम मात्रा में है, यदा-कदा

पति-पत्नी के बीच सामन्जस्य स्थापित नहीं होता, तभी इस रीति को अपनाते हैं। इस रीति के उपयोग के लिए पंचायत का बैठना नितांत आवश्यक है। पंचायत में बड़े बुजुर्गों का होना भी जरूरी है। पंचायत दोनों पक्षों के कथन सुनती है, यदि वे तथ्य बुजुर्गों एवं पंचायत को उचित लगते हैं, तो उन्हें अलग-अलग रहने की अनुमति प्राप्त होती है, किन्तु ऐसी घटना बार-बार न हो, इसलिए उन्हें कड़ा आर्थिक दण्ड दिया जाता है, जिसकी न्यूनतम सीमा 100 रु. तथा अधिकतम 500 रु. या अधिक भी हो सकती है। इसमें दण्ड का भार किसी एक पक्ष पर ही पड़ता है। सामाजिक भोज भी देना पड़ सकता है।

कमार जनजातीय रीति-रिवाजों में मृत्यु से संबंधित कई मान्यताएँ एवं विश्वास आज भी जीवंत हैं मृत शरीर को 'मला' कहते हैं, कमार आत्मा को हमेशा जीवित एवं शरीर को मृत मानते हैं। अतः मृत्यु के पश्चात् आत्मा आह्वान किया जाता है, जिसे 'गाताडूमा' कहते हैं तथा पूर्व की आत्माओं की आराधना करते हैं।

कमारी रीति-रिवाजों में 'मला' की पारंपरिक मान्यताएँ अधिक हैं। यहाँ मृत्यु को दो भागों में विभाजित किया गया है- सामान्य मला और आपदा मला। सामान्य रूप से प्राकृतिक मृत्यु में मृत शरीर को श्मशान में ले जाकर गाड़ा जाता है, आपदा से मृत जैसे:- जानवरों के शिकार से, बीमारी से मौत हुई हो तो उन्हें रीति-रिवाज से नहीं गाड़ा जाता, साथ ही उसका मृत्यु संस्कार भी पूर्ण नहीं किये जाते, इतना अवश्य किया जाता है कि ऐसी दुःखद घटना पुनः न हो, इसलिए देवी-देवता के सामने बली दी जाती है।

मृतक को जब श्मशान ले जाया जाता है, तब मृतक के पैर अग्र चालक की तरफ और सिर पश्च चालक की तरफ होता है। पैर आगे अर्थात् श्मशान की ओर एवं सिर गाँव की ओर होता है। इसके पीछे मान्यता यह है कि 'पुनः' लौटकर यहाँ मत आना। श्मशान गाँव से दूर जंगल में रहता है, जहाँ सिर्फ कमारों को ही दफनाया जाता है। श्मशान में मृतक की लम्बाई एवं चौड़ाई से ज्यादा आकार का 3 से 5 फीट गहराई का गड्ढा खोदा जाता है। इस गड्ढे को मृतक के परिवार एवं रिश्तेदार ही खोदते हैं। मृतक के शरीर को सभी की सहायता से गड्ढे में उतारा जाता है, मृतक के पैर दक्षिण दिशा में एवं सिर उत्तर में रखते हैं। शरीर में पीठ आकाश की तरफ एवं पेट भूमि से लगा, कुछ तिरछा रखा जाता है, इसके ऊपर बाँस की चटाई एवं वह समस्त सामग्री जो मृतक द्वारा उपयोग

में लाई जाती थी, जैसे-धनु-कांड, कपड़े, बर्तन इत्यादि रख दिये जाते हैं। सबसे पहले पिता मिट्टी डालता है, पिता न होने की दशा में भाई, फिर बड़ा बेटा, चाचा आदि मिट्टी डालते हैं। पिता की मृत्यु पर सबसे पहले बड़ा बेटा मिट्टी डालता है, यदि उस मृतक कमार को पुत्र न हो तो चाचा सबसे पहले मिट्टी डालते हैं, मृतक को श्वेत वस्त्र से ढाका जाता है। शव के सिर पास तीन लकड़ी के खंभे गाड़े जाते हैं। मृत्यु के बाद कमार घर त्याग कर देते हैं। गर्भवती महिला, बच्चे, वृद्ध एवं स्त्री-पुरुषों के मृत्यु संस्कार एक समान होते हैं।

कमार परिवार में यदि किसी की मृत्यु होती है तब उसके घर में पाँच दिन का शोक मनाया जाता है। साथ ही ये 5 दिन उसके घर में भोजन नहीं बनाया जायेगा, आस-पास के लोग अन्य रिश्तेदार भोजन की व्यवस्था करेंगे। 3 दिन होने पर मृतक के रिश्तेदारों का मुंडन होता है, इस मुंडन को 'तीज नहवान' कहा जाता है। मुंडन का कार्य अलग गोत्र के व्यक्ति करते हैं तथा मुंडन करने वाले व्यक्ति का शुद्धिकरण भी आवश्यक होता है। कभी भी मुंडन एवं शुद्धिकरण स्वगोत्र के व्यक्ति नहीं करेंगे, जैसे यदि मृतक नेताम गोत्र का है तो 'तीन नहवान' का कार्य सोरी, कुंजम, छेदेहा, मरकाम आदि के द्वारा ही किया जायेगा। शुद्धिकरण के लिए एक पात्र में गोबर का घोल तैयार किया जाता है, उसे चाँदी की अंगूठी से नेताम (मृतक) गोत्र के व्यक्तियों पर छिड़का जाता है। साथ ही जो भी यहाँ उपस्थित होते हैं, उन पर यह घोल फेंक देते हैं, जिससे सभी का शुद्धिकरण हो जाता है। सभी तालाब या अन्य किसी नदी पर सामूहिक स्नान करते हैं। बहुत कम यह भी देखा गया है कि पाँच दिन पूर्ण होने पर मृतक का परिवार सभी गोत्र के कमारों को भोज देता है। ऐसे परिवारों की संख्या अधिक होती है, जिनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती, वे तुरंत भोज नहीं करा सकते। ऐसे कमारों के लिए दिनों की संख्या को आवश्यकतानुसार बढ़ा दिया जाता है। मृतक भोज से पूर्व मृतक के घर में रखे मिट्टी के बर्तनों को बाहर फेंक दिया जाता है, तत्पश्चात् भोज की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। भोज में शराब का महत्त्व अधिक है। मृतक परिवार शराब का सेवन अवश्य करायेगा।

धार्मिक भावना से सम्बद्ध जादू-टोने की प्रक्रिया भी मृत्यु के बाद करते हैं। जादू-टोने की सहायता से मृत्यु के कारण को पता करते हैं। मृतक जादू-टोने से मारा गया है तो इसकी पुष्टि के

लिए वे तालाब के पानी में हल्दी से भरी कटोरी डालते हैं। यदि पानी का रंग लाल होता है तो मृतक की मृत्यु निश्चित जादू-टोने से हुई थी।

जादू-टोने के साथ ही साथ ये आत्माओं पर भी अटूट विश्वास करते हैं। इनकी मान्यता है कि मृत्यु के बाद भी आत्मा जीवित रहती है, वह कमारों को सहयोग करती है। इस कारण ये आत्मा का आह्वान करते हैं, जिसे 'गाताडूमा' कहते हैं। कमार के घर में 'गाताडूमा' की स्थापना रहती है- कमारों में मात्र पुरुष ही श्मशान जाते हैं स्त्रियों का प्रवेश निषेध रहता है।

मितान

कमारों के मध्य संस्कार संबंधी नातेदारी के लक्षण भी पाये जाते हैं। रक्त संबंध एवं विवाह संबंध के अतिरिक्त अपने पड़ोसी, जातियों, जनजातियों से ये संबंध स्थापित करते हैं, जो कि संस्कार संबंधी रिश्तेदारी होती है, जिसे 'मितान' कहा जाता है। इस प्रकार के रिश्ते बहुत से होते हैं, जिसमें महिला एवं पुरुषों के भिन्न-भिन्न रिश्ते होते हैं। इसे बनाने के लिए 'मितान' नियमों का पालन करना पड़ता है, जो मौखिक होते हैं। 'मितान' बनाने के लिए समलिंगी होना आवश्यक है, अर्थात् स्त्री-स्त्री के मध्य, पुरुष-पुरुष के मध्य 'मितान' बनाये जाते हैं। इन संबंधों का निर्वाह पीढ़ी-दर-पीढ़ी किया जाता है। कमार नियमानुसार एक से अधिक व्यक्ति को मितान नहीं बना सकते, किन्तु ऐसा भी होता है कि कुछ समय पश्चात् किसी अन्य को भी मितान बना लिया जाता है। तात्पर्य यह है कि अनेक व्यक्तियों को भी 'मितान' बना लेते हैं। 'मितानी' 15 से 30 किलोमीटर से कम दूरी में निवास करता है। 'मितान' बनाने में गोत्र, जाति, अमीरी-गरीबी का कोई महत्त्व नहीं होता, फिर भी अपने से निम्न जाति को कमार 'मितान' नहीं बनाते हैं। ऐसा संबंध प्रायः निषिद्ध होता है। कमारों में विभिन्न प्रकार की 'मितान' संबंधी विधियाँ हैं।

महाप्रसाद मितान

समाज के बड़े बुजुर्गों से मशवरा एवं निर्देश प्राप्त होने के बाद ही 'महाप्रसाद' मितान बनाया जाता है। अनुमति मिलने पर दिवस तय किया जाता है, निश्चित दिवस को सभी रिश्तेदारों एवं स्थानीय लोगों को एकत्रित कर सभी के सामने एक दूसरे को एक धोती, नारियल कुछ अन्य कपड़े एवं धान भेंट की जाती है, साथ

ही एक दूसरे को एवं समस्त उपस्थित सभासदों को 'जौहार ले' (नमस्कार करना) हाथ जोड़कर कहा जाता है, इसके बाद दोनों एक दूसरे को नाम से न पुकार कर हमेशा महाप्रसाद कहकर पुकारते हैं। श्रीफल को महाप्रसाद कहते हैं, इसी कारण इस संस्कार संबंधी रिश्ते का नाम भी 'महाप्रसाद मितान' पड़ा।

गजामुन मितान

जब रथयात्रा होती है (जगन्नाथ पूजा), तभी उस निश्चित समय में ही 'गजामुन मितान' बनाये जाते हैं। 'गजामुन' रथयात्रा का प्रसाद होता है, जिसमें चना एवं गेहूँ मिलाया जाता है, इस रथ के समक्ष दोनों को मिलाते हैं एवं शपथ दिलायी जाती है। दोनों ही कपड़े-नारियल-धान एक दूसरे को भेंट करते हैं। जौहार ले कहते हैं। गजामुन के समक्ष इस रिश्ते की आधारशिला रखी जाती है, इस कारण ही इसे 'गजामुन मितान' कहा जाता है।

गोबर्धन मितान

ग्राम में गोवर्धन की पूजा के समय इस संबंध को बनाया जाता है। किसी चबूतरे या स्थान को गोबर से लीपकर उस लीपे भाग में गोबर एकत्रित किया जाता है। उस गोबर में 'धान की बाली' को डाल देते हैं एवं गाय से खुदवाकर उस बाली को दोनों एक दूसरे के कान में फँसाते हैं। इस प्रकार ये 'गोबर्धन मितान' बन जाते हैं सभी उपस्थित गणों को 'जौहार ले' दोनों के ही द्वारा कहा जाता है।

गंगाजलीन मितान

इस प्रकार की प्रक्रिया अत्यंत सरल होती है, जिसमें सभा आयोजन होता है। दोनों मितान एक दूसरे को गंगाजल अपने हाथों से पिलाते हैं। आयोजन में उपस्थितजनों को जौहार ले कहते हैं। गंगाजल का उपयोग करने के कारण इसका नाम 'गंगाजलीन मितान' पड़ा।

तुलसी मितान

तुलसी मितान में दोनों मितान तुलसी पत्र डले जल को अपने हाथ से एक दूसरे को पिलाते हैं, तो ये 'तुलसी मितान' संबंध कहलाता है।

सभी मितान संबंधी बनने के बाद नियमों का पालन करते हैं, एक-दूसरे का नाम नहीं लेते मितान संबोधन से सम्बोधित करते

हैं। ऐसे संबंधों से कमारों को आर्थिक व सामाजिक लाभ व सहयोग मिलता है। इन मितानों के मध्य आपसी रजामंदी व सहयोग की भावना ज्यादा होती है। कमारों में पूर्णतः इस बात का निषेध होता है कि वे आपस में झगड़ा या गाली गलोच करें। यदि मितान संबंध किन्हीं कारणों से टूट रहा हो तो उस संबंध को बनाये रखने का कमार पूर्ण प्रयास करते हैं, यदि टूट जाता है तो इन पर कोई दण्ड नहीं लगता, लेकिन ऐसा बहुत कम ही होता है। दोनों मितान परिवारों के मध्य विवाह या शारीरिक संबंध आर्थिक लाभ तथा स्वार्थ से परे होते हैं।

गोदना

गोदना गोदने की प्रथा कमार महिलाओं में अधिक प्रचलित है। मात्र महिलाएँ ही गोदना गुदवाती हैं। इनकी मान्यता यह है कि शरीर के साथ कुछ भी नहीं जाता, यदि कुछ जाता है तो बस ये चिन्ह। एक अन्य मान्यता के अनुसार-बिना गोदना गुदवाये उनकी आत्मा को मुक्ति नहीं मिलती।

गोदना हमेशा 'देवार जाति' के पुरुष या महिलाओं द्वारा ही गुदाया जाता है। देवार इस वन प्रांत में घूमकर गोदना गोदते हैं। शरीर के विभिन्न भागों के लिए अलग-अलग गोदने होते हैं, जैसे:-पैर- चूरा गोदना, एड़ी-पैरी गोदना, पिण्डली- रायदा गोदना, हथेली का ऊपरी भाग- हाथोरी गोदना, कलाई- हाथोरी गोदना, कोहनी-केहुनी गोदना, अग्रबाह- बांहो गोदना, भुजा-पहुंचा गोदना, टुड्डी- थोथना गोदना, चेहारा- मुँह मेटकी गोदना, नाक-नाक मेटकी मोदना, ललाट-मुहाती गोदना इत्यादि।

कमारों में गोदनों की आकृतियों में भिन्नता होती है, क्योंकि महिला की पसंद के आधार पर आकृति के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है। ये आकृतियाँ सखियों, पड़ोसनों या अन्य सदस्यों की पसंद से अपने शरीर के विभिन्न अंगों पर बनवा ली जाती हैं। कमारों में गोदना गोदने की क्रिया प्रायः दो चरणों में पूर्ण होती है। पहला-जब बालिका लगभग 7 से 15 वर्ष तक हो, उस समय बालिका के ललाट, नाक, चेहरे तथा टुड्डी पर, हाथों के ऊपरी भाग में गोदना गुदवाते हैं। दूसरा जब किशोरी की उम्र 15-22 के मध्य होती है। अंत में विवाह से पूर्व शरीर के अन्य भागों में गोदना गुदवाया जाता है। कमारों में गोदनों को उम्र के अनुसार विभाजित किया गया है, यदि कम उम्र में गोदना के आकार-प्रकार में भी

परिवर्तन होने लगता है, जो शरीर की सुन्दरता बढ़ाने के स्थान पर घटाने लगता है और गोदना की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। विवाह से पूर्व गोदना गुदवाना आवश्यक होता है, अन्यथा विवाह में अड़चनों का सामना करना ही पड़ता है। कमार पुरुषों की मान्यता है कि गोदना क्रिया के बाद किशोरी पवित्र हो जाती है तथा सौन्दर्य में भी वृद्धि होती है।

स्थानीय लोगों की सहायता से गोदने की स्याही का निर्माण किया जाता है। इस स्याही को बनाने की दो विधियाँ होती हैं। प्रथम विधि में केले के पत्ते को जलाकर, राख को पानी में घोलकर स्याही बनाई जाती है। द्वितीय विधि में तेल के दीपक से कागज पर काजल बनाया जाता है। इस काजल को पानी में घोलकर स्याही बनती है। दोनों स्याही में से किसी एक स्याही का ही उपयोग होता है। महिला के जिस अंग पर गोदना होता है, सर्वप्रथम उस अंग पर स्याही से आकृति बनाई जाती है। साथ ही सुई या नुकीली वस्तु में स्याही लगाकर छिद्र किये जाते हैं। उन छिद्रों से रक्त निकल आता है। रक्त एवं स्याही के मिलने से स्याही में स्थायित्व आ जाता है। आकृति पूर्ण होने के बाद ऊपर से पुनः स्याही लगा दी जाती है। गोदने का कार्यपूर्ण होने पर महिला स्नान करती है, वह स्नान के बाद ही घर में प्रवेश एवं गृहकार्य कर सकती है। महिला के स्नान न करने पर उसे दंड देना पड़ता है।

न्यायिक परंपरा

प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण कमार समाज में परंपरागत व्यवस्थाओं का है, जिससे समाज हमेशा नैतिक मार्ग की ओर अप्रेसित होता है। यह नैतिकता का मार्ग न्याय-प्रणाली बनाती है, जिसके भय से कमार अनैतिक कार्य नहीं करता। कमारों की न्याय प्रणाली को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम-ग्राम स्तर पर और दूसरी-समाज स्तर की न्याय प्रणाली।

प्रथम स्तर की ग्रामीण पंचायत लगभग सभी ग्रामों में पायी जाती है, जहाँ ग्राम के समस्त मामले विचाराधीन होते हैं एवं समस्त ग्राम की दण्डप्रक्रिया का निर्धारण ग्राम पंचायत करती है।

किन्तु कमार समाज की अपनी एक विशिष्ट पंचायत होती है, जिसका गठन एवं निर्णय अलिखित होते हुए भी सर्वमान्य होता है, ये अपनी अदालत लगाते हैं, निर्णय देते हैं, साथ ही साथ प्राकृतिक तरीकों से संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजते हैं।

कमार समुदाय की पंचायत में 10-20 ग्रामों के सदस्य होते हैं, इन सभी सदस्यों के ऊपर एक जज होता है, जिसे 'मूढादार' कहते हैं। व्यवस्थाओं के लिए एक या दो 'चिपरासी' (चपरासी) होते हैं। सम्पूर्ण व्यवस्थाओं को संभालने का काम 'छड़ीदार' करता है। 'छड़ीदार' के हाथ में हमेशा छड़ी रहती है, कमार इस पद को बड़े सम्मान से देखते हैं, क्योंकि यह पद भीड़ पर नियंत्रण, खाने-पीने की व्यवस्था एवं अन्य व्यवस्थाएँ करता है। लिपि न होते हुए भी यहाँ कमारों की लिपि में संदेश भेजे जाएंगे और अदालत लगेगी। इनकी लिपि रस्सी की गिटानों पर आधारित रहती है। इन गिटानों को बांधकर ये समस्त जानकारियाँ एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचा देते हैं, जिस रस्सी में गिटाने बांधी जाती हैं, वह 'सियारी' की रस्सी होती है। उदाहरण के लिए- किसी गाँव का लड़का-लड़की लेकर भाग गया, अब यह मामला समाज में सदस्य के पास दर्ज हुआ। दर्ज मामले को चपरासी या समाज सिपाही लिखित तौर पर 'मूढादार' के गाँव तक लेकर जायेगा 'मूढादार' से मिलकर उसे समुदाय सदस्य का सियारी रस्सी में गिटाने बांधा संदेश देगा। उन गिटानों से 'मूढादार' समझ जायेगा, प्रकरण क्यों दर्ज हुआ है और उसका निर्णय करने उसे उस गाँव तक जाना है। सियारी की रस्सी में तीन गाँठ बांधी जाती है, इन तीनों ही गाँठों का अलग-अलग अर्थ होता है। पहली गिटाने-जय जौहार- नमस्कार स्वीकार करें। दूसरी गिटाने- मत बेहरा - प्रकरण का कारण (भगाकर ले जाना) तिसरी गिटाने- हुक्कापानी बंद-जात से बाहर कर दिया अब आप आकर निर्णय करें।

दोनों प्रकार की न्याय-प्रणाली के सीमा क्षेत्र निश्चित हैं। एवं वे अपने-अपने सीमा क्षेत्र के आधार पर ही निर्णय लेते हैं, इनकी दण्ड-प्रणाली मौखिक रूप से सभी को मान्य होती है।

परम्पराएँ

सबसे प्रमुख परंपरा कमारों की स्थानान्तरित कृषि करना ही है। कमार मुख्यतः तीन प्रकार से स्थानान्तरित खेती करते हैं, जिसे दाही, बेवर या गुहाद के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार की कृषि के लिये कमार सर्वप्रथम ऐसे स्थान का चुनाव करते हैं, जहाँ पानी का बहाव हो, तत्पश्चात् वहाँ के वृक्षों को काटकर गिरा दिया जाता है। वृक्षों की शाखाओं को सूखने के बाद अलग कर दिया जाता है। बैगा से एक निश्चित दिन तय किया जाता है, फिर सूखी शाखाओं को बैगा की अनुमति से जलाया जाता है। इसी दिन 'बूढ़ा देव' की

पूजा की जाती है, जैसे ही वर्षा ऋतु की बौछार पड़ती है, कमार बीजों का छिड़काव कर देते हैं तथा उस स्थान की सुरक्षा एवं देखभाल के लिए एक मचान (अस्थायी झोपड़ी) की तरह 'लारी' बनाई जाती है। इस प्रकार की खेती के अंत में पकी हुई फसल का काटना ही होता है।

इस खेती की सुरक्षा के लिए अत्यंत रोचक कथा भी है- जिसमें कमार कृषक का पक्षियों से तालमेल का सुन्दर चित्रण है।

कथा

बहुत समय पूर्व एक कमार किसान ने बहुत मेहनत की, उसके खेत लहलहाने लगे। जब फसल पकने के करीब हुई तो उसकी चिन्ता बढ़ने लगी। कहीं चोर आकर फसल न ले जाए, खेत की रखवाली मैं अकेला कैसे करूँ? बड़े खेत पर एक ही जगह से नजर कैसे रखूँ? तब उसने वृक्ष पर रात बिताने की व्यवस्था की, जहाँ से खेत उसे स्पष्ट दिखाई देता था, फिर भी उसकी चिन्ता का अंत नहीं था, क्योंकि रात्रि का जागरण भी संभव नहीं था। इसी रखवाली की चिन्ता में वह दिन-प्रतिदिन कमजोर होता गया। उसका कष्ट पक्षियों से देखा नहीं गया। पक्षियों ने सोचा इस फसल से हमारा भी तो लाभ होता है। पक्षियों ने किसान की सहायता का निर्णय लिया। नहीं चिड़िया ने उड़ान भरी और कमार के कंधे पर बैठ गई और कहा - 'मैं खेत की रखवाली करूँगी।' कमार ने उसे देखा और पूछा- कैसे? चिड़िया ने कहा- 'जब चोर आएंगे तब मैं चीं-चीं करके तुम्हें जगा दूँगी। कमार ने कहा- तुम्हारी चीं-चीं में इतना दम कहाँ?' चिड़िया निराश होकर चली गई। कौए ने चिड़िया को निराश देखा और पूछा- चिड़िया ने कौए को बता दिया। कौए ने चिड़िया से कहा - 'कौआ कमार की मुड़ेर पर जा बैठा। उसने कमार से कहा- कमार ने उसकी तरफ पुनः प्रश्नवाचक दृष्टि से देखा। कौए से वही प्रश्न किया- 'तुम रखवाली कैसे करोगे।' कौए ने हल प्रस्तुत किया - 'मेरी आवाज कठोर है, तेज इतनी की दूर-दूर तक सुनाई देती है। कमार ने कौए से कहा- 'नहीं भाई- तुम्हारी आवाज कर्कश है, मेरे बच्चे, मुर्गिया डर जायेंगी। तुम जाओ।' कौआ भी वापस निराश आ गया। तभी मुर्गा आया, कमार और मुर्गे में पुनः रखवाली के विषय पर चर्चा हुई। मुर्गे ने कहा- कमार भाई, मैं तुम्हारी परेशानी समझता हूँ, पर तुम चिन्ता मत करो, मैं तुम्हारे खेत की रखवाली करूँगा, मेरी आवाज बुलंद है, कर्कश भी नहीं है, तुम-तुम्हारे बच्चे, मुर्गियाँ सभी मुझसे परिचित हैं, मेरी

आवाज से कोई नहीं डरेगा, तुम बेफिक्र रहो, मैं तुम्हारे खेतों की रखवाली करूँगा। चोर आएंगे तो मैं तुम्हें खबर कर दूँगा।' मुर्गे की बातों से कमार आश्वस्त हो गया।

एक रात चोर आए। मुर्गा दौड़ता हुआ किसान के पास गया। थका मांदा किसान खरटे मारकर सो रहा था। मुर्गा जोर-जोर से चिल्लाकर किसान को उठाता रहा, लेकिन खरटे मारता किसान नहीं उठा। मुर्गे की चीख चोरों ने सुनी, उन्हें लगा कहीं मुर्गे की चीख से कमार उठ न जाए। चोरों ने निर्णय लिया, मुर्गे की आवाज बंद कर दी जाय। चोरों ने मुर्गे को पकड़ा, उसे मारा, वहीं भूनकर खा गये। उसके बाद बेफिक्र होकर चोरी की सारे धान को बोरो में भरा और रात के अंधेरे में भाग गये। कुछ समय बाद सुबह हो गई। मुर्गे का बांग देने का समय हो गया। चोरों के पेट में उसने जोर से- कुकड़ू-कूँ की बांग दी। चोर डर गये। गाँव भी पास ही था, मुर्गे का चिल्लाना बंद हो ही नहीं रहा था। चोरों ने सोचा- अब सभी गाँव वालों को पता चल जायेगा, अब चोरों को मुर्गे से मुक्ति पाना जरूरी था। फसल काटने के लिए चोरों के पास जो हंसिया था, उससे उन्होंने अपना पेट चीरा और मुर्गे को निकाल दिया। पेट काटने पर चोर कैसे जीवित रहते। अंततः मुर्गा किसान के पास पहुँचा। उसे सारी कथा विस्तार से सुनाई, कमार को अपने साथ ले गया अनाज वापस दिलाया। किसान की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। अनाज समेटकर घर ले आया, मुर्गा पुनः रखवाली करने लगा।

रूढ़ियाँ

कमार समाज में रूढ़ियाँ जीवन की शाश्वत आधारशीला हैं, इनके संचालन के अंतर्गत एक से अधिक निर्णायक इकाईयों का आपसी तालमेल है, जो कमारों को एक सूत्र में बांधकर रखती है। रूढ़ियों में नातेदारी, स्थान, संस्कार, धर्म, जादू, गोत्र चिन्ह आदि कारक कमार समाज में पाये जाते हैं। कमारों की रूढ़ियाँ वर्तमान युग में लाभप्रद भी हो सकती हैं एवं हानि कारक भी, किंतु देखा जाय तो हानि की अपेक्षा लाभ का पुट कमारों के हित में अधिक दिखाई देता है। आज के अल्पशिक्षित कमार युवकों ने हानि की रूढ़ियों को अस्वीकार कर उन्हें त्यागने की भावना को जागृत किया है, किसी भी रूढ़ी को अच्छा या खराब वहाँ की प्राकृतिक परिस्थिति पर निर्भर करता है, क्योंकि जीवन ही अमूल्य होता है और जीवन एक सक्रिय प्रक्रिया है। इस जीवन में जन्म, विवाह

मृत्यु के अतिरिक्त अन्य संस्कारों, कार्यों का निर्वहन भी आवश्यक होता है। अतः प्रत्येक कार्य स्थान और परिस्थिति के अनुरूप हो तभी समाज और प्रकृति उसे स्वीकारती है। कमारों में रूढ़ियों का प्रारंभ प्रसव से पूर्व अर्थात् गर्भावस्था से ही प्रारंभ हो जाता है।

कमार महिलाओं को शिशु के रूप में लड़का अधिक प्रिय होता है। वे गर्भावस्था में ही बैगा अथवा जादू-टोने के द्वारा बच्चे के लिंग परिवर्तन का प्रयास करती हैं साथ ही इनके द्वारा दी गई भूत के प्रति श्रद्धा भाव रख, बताये नियमानुसार खाती भी हैं। ऐसा भी होता है कि जब किसी महिला के एक-दो बच्चे मृत पैदा होते हैं, तो तीसरा बच्चा यदि जीवित रह जाए, तो उसे अपने किसी पूर्वज का चिन्ह अथवा अवतार स्वीकार किया जाता है।

विवाह के पश्चात् महिला का ऋतुमति न होना, उसकी गर्भावस्था की ओर संकेत करता है। बुजुर्ग महिलाएँ इस बात की जानकारी देती हैं। 'बैगा' महिला की नाड़ी देखकर इस बात की पुष्टि करता है। गर्भावस्था में कमार महिला को कुछ सामाजिक नियमों का पालन करना पड़ता है, जैसे:- धार्मिक कार्य में हिस्सा न लेना, पवित्र स्थलों पर प्रवेश न करना, देवी-देवताओं की पूजा न करना, कृषि औजारों को स्पर्श न करना, कृषि भूमि में प्रवेश न करना और कुछ बाँस के बर्तनों का निर्माण न करना।

बच्चे का जन्म पति के ही यहाँ होता है। कोई चिकित्सक या चिकित्सा केन्द्र, प्रसूतिगृह में शिशु को जन्म नहीं दिया जाता। जन्म पति के घर किसी कोने में दाई की सहायता से पूर्ण होता है। प्रसूति कक्ष में किसी को भी प्रवेश नहीं दिया जाता। यहाँ तक महिला की सास (पति की माँ) का भी प्रवेश निषेध होता है, यदि प्रसव में परेशानी हो रही हो तो चिकित्सक के स्थान पर 'बैगा' को आमंत्रित किया जाता है और 'बैगा' झाड़-फूँक करता है। ऐसी परिस्थिति में भी महिला के साथ परिवार का कोई सदस्य नहीं होता।

नवजात शिशु की नाड़ी मामा (स्त्री का भाई) द्वारा काटी जाती है। नाड़ी काटने की सामग्री बाँस की पिन्ची, कांड, हंसिया या चाकू मामा अपने साथ लाता है। नवजात शिशु की नाड़ी बांस की पिन्ची से काटी जाती है। कहीं-कहीं लड़का होने पर कांड से, लड़की होने पर हंसिये से नाड़ी काटते हैं। इसके पीछे इनकी अपनी पृथक-पृथक मान्यताएँ हैं।

प्रसूता को प्रसूति के बाद छिनकांदा, कुल्थी, छाली आदि

औषधि के रूप में दी जाती है। साथ ही भोजन के रूप में मात्र 'पसिया' (चावल का पानी) दिया जाता है। यह क्रिया तीन माह तक होती रहती है।

विवाह के लम्बे समय तक कमार महिला को यदि संतानोत्पत्ति न हो, तब पूजा एवं मन्तें मांगी जाती हैं। प्रमुखतः सातधार पहाड़ पर स्थित 'गादीबाई' की पूजा कर मन्त मांगते हैं। बजि में मुर्गी, सूअर, बकरी आदि चढ़ाई जाती है। इसके बाद भी संतान की प्राप्ति न हो तो पति को दूसरा विवाह करने की स्वतंत्रता रहती है।

छठी के दिन बच्चे के बाल काटते हैं। सिर पर पिण्ड (चुटकी) छोड़ दी जाती है। माता एवं बच्चे को गरम पानी से नहलाया जाता है, तत्पश्चात् देवी-देवता की पूजा करते हैं। सभी कमार भाइयों को भोजन एवं शराब के लिए आमंत्रित करते हैं। यदि कन्या हो तो उसका मुंडन नहीं होता। बच्चे को सर्वप्रथम शराब का सेवन कराया जाता है, मान्यतानुसार इससे बच्चे की शुद्धि हो जाती है।

जन्म के समय यदि बच्चे की मृत्यु हो जाए, तो ऐसा माना जाता है कि उस पर काला जादू या टोना वगैरह किया गया है। बच्चे के जन्मापरंत माता का देहांत हो जाए तो बच्चे का लालन-पालन पिता द्वारा किया जाता है, यदि पिता चाहे तो पुनर्विवाह कर सकता है।

यद्यपि मामा की लड़की से विवाह को कमार प्राथमिकता देते हैं, तथापि फूफा-बुआ के लड़के-लड़कियों के मध्य विवाह निषेध होता है।

लड़के-लड़की का पता चलने पर कमार आपस में बात करते हैं। इसमें लड़के-लड़की के माता-पिता शामिल नहीं होते। इसमें एक व्यक्ति दोनों पक्षों का माध्यम होता है, जिसे 'महालिया' कहते हैं। लड़की को पसंद करने के लिए जाते समय माता-पिता को छोड़कर, परिवार के सदस्य अन्य रिश्तेदार 'महालिया' के साथ जाते हैं। सदस्यों के साथ धनु-कांड, तम्बाखू, दो बोटल शराब, चावल, गुड़ भी जाता है। यह सामग्री वधू पक्ष को दी जाती है। इस समस्त सामग्री का उपयोग विवाह पक्का होने पर वधू पक्ष के द्वारा दिया जाता है, इससे पूर्व नहीं। इस सामग्री के साथ धनुकांड रखना अनिवार्य होता है। महिलाओं को साथ नहीं ले जाया जाता। इस

क्रिया को 'फलदान' कहते हैं।

लड़के को लड़की मड़ई, मेला, साप्ताहिक हाट में ले जाकर दिखाते हैं। शनिवार के दिन कमार विवाह के लिए लड़की मांगने नहीं जाते।

लड़के के घर पर फलदान के बाद विवाह की तिथि निश्चित की जाती है। इस कार्य को बैगा चावल दानों पर मंत्र उच्चारित कर निर्धारित करता है।

कमारों में विवाह के बाद नव-दम्पति नवीन गृह-निर्माण कर अलग निवास करने लगते हैं।

कमारों में दूकान पर जाकर बाल कटवाना वर्जित है। कमार ही कमार के बाल काटते हैं या कमार स्वयं ही अपने बाल काट लेते हैं। ऐसा भी देखा गया कि शादी के बाद यदा-कदा समधी से बाल कटवाए जाते हैं। किसी अन्य से बाल कटवाने पर कमार को जात बाहर कर दिया जाता है। पंचायत में दण्ड देने के बाद ही उसे जाति में शामिल किया जाता है।

कमार कभी चमड़े के जूते नहीं पहनते। पहनने पर जाति से बाहर किया जाता है। ये प्लास्टिक के जूते पहनते हैं। जाति में वापसी दण्ड लेकर की जाती है।

कमार नगनावस्था में रहना ज्यादा पसंद करते हैं। कमार यदि कपड़े पहनता है तो छुआ-छूत मानते हैं। उसे सभी चिढ़ाते हैं कि वह खान का बच्चा है।

कमार शहरी या आवासीय स्थानों पर वास नहीं करते। ये जंगलों के आंतरिक भागों में निवास करते हैं, जहाँ कोई आसानी से नहीं पहुँच सकता। कमारों को पक्के मकानों में रहना भी पसंद नहीं है।

महिलाएँ शादी से पूर्व तक नाक में फुल्ली (नथ) पहनती हैं। शादी के बाद फुल्ली वर्जित है। विवाह से पूर्व बालिका हाथों में 'गिलएटी' नहीं पहन सकती 'गिलएटी' पहनना कुँआरी महिलाओं को वर्जित है। कमार महिलाएँ विवाह के पश्चात् ही 'मंगलसूत्र' पहन सकती हैं। यदि घाव में इल्ली पड़ जाए तो उस कमार को समाज को भात देना पड़ता है। लड़की भगाने पर जाति से बाहर कर दिया जाता है एवं दण्ड भरने पर शामिल किया जाता है।

'कमारों की रूढ़ियों को, रीति-रिवाजों को आघात पहुँचाने

वाले को यदि जाति बाहर किया जाता है, तो उससे दण्ड स्वरूप जो सामग्री ली जाती है, वह निम्नानुसार है- जाति में शामिल होने के लिए - बारह काठा चावल (30 किलो लगभग), एक पीपा दारू महुआ (25 बॉटल लगभग), माँ के लिये साड़ी (लड़का-लड़की की माँ को देगा), बड़ी बहन को साड़ी, बीड़ी बण्डल माचिस (20-25 बण्डल), छड़ीदार को नारियल।

किसी अन्य छोटे अपराध में शराब एवं बीड़ी बण्डल का ही दण्ड वसूला जाता है।

समस्त दण्ड राशि मूढ़ादार (जज) के पास जमा की जाती है। पूर्णता की जाँच के पश्चात् कमार समाज के उत्थान में ही उपयोग में लगा दी जाती है।

व्रत-त्योहार

कमारों के एक गाँव से दूसरे गाँव के मध्य की दूरी 8-15 किलोमीटर तक होती है। एक गाँव में 4 से 8 परिवार ही पाये जाते हैं। इस लम्बी दूरी को करीब लाने का कार्य त्योहार करते हैं, क्योंकि सभी गाँवों के लोग एक ही स्थान पर एक-दूसरे से मिलते हैं, प्रत्येक के सुख-दुख से परिचित होते हैं।

कमारों में त्योहारों की अधिकता नहीं है। बहुत कम त्योहार बड़े ही उल्लास से मनाते हैं। कुछ त्योहारों को हिन्दू त्योहारों से ले लिया गया है। हिन्दू रीति-रिवाज में जिस तरह त्योहार के दिन गृहणियाँ व्रत रखती हैं, ठीक उसी प्रकार कमार महिलाएँ भी व्रत रखती हैं। कमार कन्याएँ भी मनवाँछित वर प्राप्ति हेतु ईश्वर की आराधना कर व्रत रखती हैं। कमारों के प्रमुख त्योहार निम्नलिखित हैं।

हरेली	- श्रावण (जुलाई-अगस्त)
नवाखाई	- भाद्रपद (सितम्बर-अक्टूबर)
होली	- फाल्गुन (फरवरी-मार्च)
दीपावली	- कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर)
छछैरा	- पौष (दिसम्बर-जनवरी)
दशहरा	- आश्विन (अक्टूबर-नवम्बर)

हरेली तिहार

कमारों के त्योहारों में 'हरेली' विशेष होता है, क्योंकि कमार जादू-टोने में विश्वास रखते हैं, इसी कारण इनकी मान्यता है कि

‘हरेली’ की रात को ‘टोहन-टोहनी’ (जादूगर-जादूगरनी) ईश्वर से प्रार्थना कर अपने जादू की विद्या को, आगामी समय तक सुरक्षित रखने की प्रार्थना करते हैं। इस कारण कमार लोग ‘हरेली की रात्रि’ में बाहर नहीं निकलता।

हरेली प्रमुखतः खेती से जुड़े कमारों का त्योहार है, किन्तु जिनके पास खेती नहीं है, वे भी इस पर्व को बड़े ही उत्साह से मनाते हैं। इस पर्व के दिन गाँव का बैगा प्रातः स्नान के बाद नीम व भुलवा पेड़ की टहनी तोड़ता है, सभी कमार एकत्र होकर गाँव से कुछ बाहर वन में देवी स्थान तक जाते हैं, बैगा देवी की पूजा करता है। वापसी में प्रत्येक कमार के घर पर एक-एक टहनी बैगा फँसाता है।

आज ही के दिन महिलाएँ घर की अच्छी तरह साफ-सफाई करती हैं, जब तक पुरुष तालाब, नदी से स्नान कर आते हैं, तब तक घर स्वच्छ हो जाता है। पुरुषों के आगमन पर परिवार का मुखिया ‘गाताडूमा’ देवता के सामने एक दोने में धान अथवा चावल रखकर आह्वान करता है, साथ ही प्रार्थना करता है कि विपत्तियों से हमारी रक्षा करना। महिलाएँ भोजन बनाती हैं, सभी साथ बैठकर मंद (शराब) का सेवन कर भोजन का आनंद लेते हैं। यह प्रयास किया जाता है कि हरेली के दिन भोजन में मांस हो। कमार आज के दिन किसी भी प्रकार का कोई कार्य नहीं करते। दिन भर शराब और खुशियों का दौर चलता रहता है।

नवाखाई तिहार

कमारों में नवाखाई की तिथि, समय निश्चित नहीं होता, इसमें परिवर्तन बैगा द्वारा किया जाता है। बैगा ही नवाखाई की तिथि का निर्धारण करता है।

नवाखाई नवीन फसल को उपयोग में जाने के लिए मनाते हैं। इस पर्व को इसलिए भी मनाया जाता है, ताकि ईश्वर धान की सुरक्षा करें एवं भविष्य में उनकी धान की फसल को नुकसान न पहुँचे।

धान को नवीन हण्डी में डालकर ‘अध-पका’ पकाया जाता है। मूसली से कूटकर उसकी (धान की) भूसी को निकालते हैं। आज ‘ढेकी’ (धान कूटने का लकड़ी से बना औजार) का उपयोग वर्जित है। भूसी निकलने पर चावल पकाया जाता है। यही पका चावल ‘बूढ़ा देव, दूल्हा देव, गाताडूमा’ के समक्ष रख भोग लगाया

जाता है। पूजा अर्चना की जाती है, प्रार्थना की जाती है कि- हे भगवान! आप हमारी नयी फसल का भोजन स्वीकार करें, हमें आशीर्वाद दो कि हमारी फसल अच्छी हो, हमें परेशानियों से दूर रखना। तत्पश्चात् वे ‘कटरा’ (बलि) देते हैं। ‘कटरा’ आज के दिन चाकू से नहीं होता, बल्कि जो शस्त्र कमार शिकार के समय उपयोग करते हैं, उनमें से किसी एक के द्वारा बलि दी जाती है। नवाखाई में भोजन से पूर्व जमकर मद (शराब) का सेवन किया जाता है।

फागुन तिहार (होली)

कमार हिन्दुओं के समान ही, परन्तु कुछ आंशिक भिन्नता लिए होली तिहार मनाते हैं। यह त्योहार फाल्गुन मास में आता है। हिन्दुओं के समान कमार होलिका दहन नहीं करते। सभी कमार महुए के फूलों को एकत्रित कर जंगल में ‘ठाकुर देव’ के स्थल पर जाते हैं, महुए के फलों को पानी डाल गरम करते हैं। ‘ठाकुर देव’ को इन्हीं का भोग लगाते हैं, तत्पश्चात् प्रार्थना करते हैं कि हमारे जंगल खाद्य फलों से, वस्तुओं से भरे-पूरे रहें, ‘ठाकुर देव’ जंगली जानवरों से हमारी रक्षा करें। वहीं शराब का सेवन किया जाता है।

कमार वनप्रांतर से लौटकर होली रंगों से खेलते हैं। इनके रंग स्वतः निर्मित होते हैं। रंगों के निर्माण में केले के पत्ते जलाकर पानी में घोल देते हैं, यही केले की राख का पानी एक दूसरे पर फेंककर होली तिहार मनाते हैं।

दीपावली

कमार दीपावली को ज्यादा महत्त्व नहीं देते, ये इस दिन न तो दीप जलाते हैं, न पटाखे फोड़ते हैं। गाँव के ही अन्य लोगों की भांति ये लक्ष्मी की पूजा करते हैं। आपस में एक दूसरे को, गाँव के अन्य सदस्यों को बधाई देते हैं।

छछैरा

छछैरा दिसम्बर-जनवरी (पौष) माह में मनाया जाने वाले त्रिदिवसीय त्योहार है। इस त्योहार में एक छोटा सा दल बनाते हैं। दल के सभी कमार अपने शरीर पर रंग से विभिन्न प्रकार की कलाकृतियाँ निर्मित करते हैं। रंग से ही अपने मुँह पर, आँखों के नीचे, भौंहों पर, गालों पर आड़ी-तिरछी लकीरों के साथ आकृतियाँ बनाते हैं। सम्पूर्ण दल प्रत्येक कमार के घर के बाहर नाचते हैं घर-घर जाकर नाचना और सभी से उपहार में चावल-धान-पैसे लेना

इस त्योहार में इस दल का उद्देश्य होता है, अंतिम अर्थात् तीसरे दिन उपहार में जो भी एकत्रित होता है, उसे सभी भोज में ग्रहण करते हैं। शराब को प्रमुखता से ग्रहण किया जाता है।

दशहरा

दीपावली से पूर्व कमार दसहरा तिहार मनाते हैं। इसके दूसरे दिन दंतेश्वरी माई की पूजा की जाती है। इनकी परंपरानुसार 'छुरा' के राजा का वंशज ही यह पूजा कर सकता है। इस दिन 'छुरा' के राजा का वंशज नवागढ़ आता है और पूजा करता है। इस पूजा में बैगा राज का सहयोग करता है। अन्य कमार जो नवागढ़ नहीं पहुँच पाते हैं, वे अपने ही क्षेत्रों की देवी जात्रा में शामिल होते हैं। दूल्हादेव, मरमाटी देव, ठाकुर देव की पूजा करते हैं। इस पूजा में शिकार के औजार, अस्त्र-शस्त्र होना अत्यंत आवश्यक है। पूजा में बलि भी दी जाती है। ऐसी मान्यता है कि आज की इस पूजा में बलि (कटरा) देने से देवी प्रसन्न हो जाती है और उन्हें कष्टों से मुक्तकर, रक्षा का दायित्व उठायेंगी। प्रसाद ग्रहण करने से पूर्व मद (शराब) का सेवन किया जाता है।

जादू-टोना

कमारों में जादू-टोना (टोनहा-टोनहीं) करने वाले गुप्त रूप से मिलते हैं। ऐसे कमार जंगल में जहाँ मृतक को दफनाते हैं, वहाँ जाकर कब्र के इर्द-गिर्द एक विशेष प्रकार की साधना करते हैं। कुछ विनाशकारी शक्तियों को प्राप्त कर किसी व्यक्ति को अशक्त, निर्जीव-सा कर उसका खून चूसते हैं। यह कभी-कभी भयंकर महामारी फैलाकर, अत्यधिक विनाश भी कर देते हैं। ऐसे सभी व्यक्ति जो टोनहा-टोनहीं के शिकार होते हैं, उनका हल बैगा के पास होता है। बैगा अपने मंत्रों के माध्यम से उस प्रभावित व्यक्ति को मुक्त करने का प्रयास करता है, यदि हठधर्मी टोनहा हुआ तो झाड़-फूँक के साथ मारा-पीटा भी जाता है। उसकी इच्छा से परिचित हो उसे बीड़ी शराब, बलि देकर भगाया जाता है।

धार्मिक विश्वास

विश्व के समस्त धर्मों में ईश्वर को अनंत, अगोचर शक्तिमान माना गया है- यह शक्ति सदैव अदृश्य व अज्ञात रहती है। सभी इस शक्ति की भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ और मान्यताएँ प्रस्तुत करते हैं, जो स्वाभाविक ही जान पड़ती है, धर्म का आधार यही शक्ति

होती है निश्चित ही यह शक्ति मानव से श्रेष्ठ है, इसी कारण मानव इसमें विश्वास के साथ भावना का बंध बांधता है। जगत् का धार्मिक होना उस अलौकिक का लौकिक से संबंध की जानकारी देता है। सभी संस्कृतियों में धर्म को समाज के अंदर स्थान दिया गया है।

कमार जनजाति का यह विश्वास है कि मृत्यु के बाद भी जीवन समाप्त नहीं होता तथा वह कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। कमारों की आत्माओं का आह्वान कर पूजा करना, इस विश्वास को मजबूती प्रदान करता है। पूर्वजों की आत्माएँ विपरीत परिस्थितियों में, रोगों में, दुष्ट आत्माओं को दूर भगाने का कार्य करती हैं। अन्य विश्वासों में यह मान्यता है कि - कमार आत्माएँ नजदीकी रिश्तेदारों से, परिवार में प्रिय से संपर्क बनाए रखती हैं। एक अन्य मान्यतानुसार वे आत्माओं का आह्वान इसलिए करते हैं कि सभी कमारों के परिवारों में सुख-शांति बनी रहे।

कमारों की मान्यता है कि आत्माएँ मनुष्य के नियंत्रण के बाहर हैं, साथ ही आत्माएँ मनुष्य से संबंध बनाए रखती हैं। कमारों के अच्छे-बुरे व्यवहार से इन आत्माओं को सदैव सुख और दुख होता है, इसके अलावा इन आत्माओं को खुश रखने से लाभ और दुखी रखने से हानि भी हो सकती है। इसी कारण कमार इनका आह्वान कर पूजा अवश्य करते हैं, जिससे पूर्वजों की आत्माएँ अनिष्ट न करें। इस विश्वास और आशा के साथ प्रार्थना करते हैं कि ये सभी कष्टों का, आपदाओं का अंत करने में हमारी सहायक होंगी।

कमार जिस जीव अथवा आत्मा की प्रार्थना करते हैं, उसे 'गाताडूमा' कहते हैं। अर्थ की दृष्टि से 'गाता' का शाब्दिक अर्थ 'जाना' एवं 'डूमा' का अर्थ 'आत्मा'। 'गाताडूमा' के आह्वान के लिए स्वयं द्वारा निर्मित चावल का आटा लिया जाता है। इसी आटे से चौक बनाया जाता है। सात पतली रस्सीयों को उमेंठ (बल देकर) कर एक रस्सी बनाई जाती है, जिसमें तांबे अथवा पीतल की अँगूठीनुमा छल्ला बांध दिया जाता है, इसे छत से बांध देते हैं। इस रस्सी से बंधे छल्ले को 'जीतिया सूत' कहते हैं। कमारों की मान्यता के अनुसार आत्मा इसी जीवतिया सूत के सहारे जमीन पर पूजा में शामिल होती है। पत्तों से निर्मित दो दोने बनाते हैं। एक

दोने को धान से दूसरे का पानी से भर दिया जाता है। परिवार का वरिष्ठ व्यक्ति दोनों में से धान और पानी लेकर सात बार रस्सी पर ऊपर से नीचे की ओर लगाता है। इसी क्रम में परिवार के अन्य सदस्य पाँच बार धान पानी को ऊपर से नीचे की ओर लगाते हैं, जिससे आत्मा के आने का संकेत भी इन्हें प्राप्त हो जाता है आत्मा के आगमन की सही सूचना के लिए एक मुर्गी को छोड़ा जाता है, यदि मुर्गी ने दोनों में से दानों को उठा लिया तो तात्पर्य यह हुआ कि आत्मा का आगमन हो गया, अंत में मुर्गी की बलि चढ़ा दी जाती है।

‘गाताडूमा’ की आराधना की अन्य विधि भी कमारों में प्रचलित है- देव स्थान से लगे आँगन के मध्य सफेद मिट्टी से गोलाकार आकृति बनायी जाती है। इस आकृति पर कांसे के ‘चरू’ (लोटा) में पानी भरकर रख देते हैं। चार दोनों में से, दो दोनों पानी से एवं एक धान से, एक चावल से भरा ‘चरू’ के चारों तरफ रख देते हैं। अब परिवार का मुखिया जलते कंडे के अंगार पर एक विशेष सुगंधित धूप डालता है। चारों ओर आँगन में धुँआ ही धुँआ हो जाता है। इस धुँए की अधिकता इतनी होती है कि आँगन की दीवारें भी स्पष्ट दिखाई नहीं देती, धूप डालता कमार अब आत्मा को आमंत्रित करता हुआ कुछ जोर से कहता है- ‘इहां ये जो काये डूमा जर के तब धरियों, इहा कौन धिराय, काये बिमारी, काये दुख, काये देव धारियों अब का ये जो धारियों तभी तो जानू चो ये डूमा हों।’ दो-चार बार कहते-कहते वहाँ उपस्थित किसी भी व्यक्ति में आत्मा का प्रवेश होता है, वह सामान्य व्यक्ति से अलग व्यवहार करता है। जोर-जोर से चिल्लाना, हाथ पैर पटकना इत्यादि, जिसे ‘सिरआना’ कहते हैं। इसी व्यक्ति से कमार अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान करते हैं, जिस जानवर की बलि दी जाना है, उस जानवर को ‘सिरआए’ व्यक्ति के हाथ से एक दोना चावल एक दोना धान एक दोना पानी दिया जाता है, तत्पश्चात् बलि दी जाती है। मांस का एवं शराब का सेवन इस समय मात्र पुरुष ही कर सकते हैं, महिलाएँ इस मांस एवं शराब का सेवन नहीं कर सकती।

कमार धर्म की रूढ़ियों को मजबूती से पकड़े रहते हैं। प्रत्येक कमार के घर में पूजा स्थान आँगन से लगा होता ही है, जो कमार नित्य धर्मानुसार आराधन करता है। देव स्थल पर तांबे-कांसे का ‘चरू’ होता है, चरू के ऊपर ‘फल’ (नारियल) रखा जाता है। चरू के अंदर पानी भरा रहता है, जिसे कमार श्रद्धाभाव से ‘पूर्वजों

का जल’ कहते हैं। ‘पूर्वजों’ के जल की पूजा प्रत्येक सोमवार और गुरुवार को की जाती है। यह पूजा परिवार का मुखिया या परिवार का बड़ा सदस्य ही कर सकता है। महिलाएँ यह पूजा नहीं कर सकती। कहीं-कहीं इस पूजा को ‘माटीमाई’ से भी सम्बोधित किया जाता है। कमारों की चेतना का ही दूसरा रूप धर्म है। धार्मिक भावना ही कमारों को नैतिक रूप से सामाजिक बंधनों में बांधकर रखती है। परिवार के सभी धार्मिक कार्य मुखिया (परिवार का) के सान्निध्य में सम्पन्न होते हैं। परिवार से बाहर, समाज के सभी धार्मिक कार्य बैगा, डीही, सिरहा, गुनिया आदि पूर्ण करते हैं। पूजा के दो उद्देश्य होते हैं- व्यक्तिगत लाभ और सामाजिक लाभ। प्रायः कमार व्यक्तिगत लाभ के लिए पूजा नहीं के बराबर करते हैं, इनमें सामाजिक लाभ की भावना अत्यधिक होती है फिर भी संतान प्राप्ति या अन्य किसी व्यक्तिगत लाभ के लिए देवस्थान पर जाते हैं और वहाँ मन्त मानते हैं, जिसे ‘बदना’ कहते हैं। कार्य पूर्ण होने पर परिवार के सभी सदस्य बैगा के साथ देवस्थान पर जाते हैं, बदना अनुसार पूजा करते हैं। बैगा वहाँ और भी कुछ सामग्री चढ़ाने की बात यह कहकर कहता है कि ‘देव का आदेश है’ जिसे बलि एवं शराब प्रमुख होते हैं। अधिकांशतः कमार बूढ़ा देव, बड़ादेव, दूल्हादेव, ठाकुर देव, बस्तरीन देवी, माटी देव, गुस्माटी, धरतीमाता, माटीमाई, गाताडूमा, इत्यादि की पूजा समय-समय पर करते हैं।

ब्राम्हण देव

यह आराधना जनवरी-फरवरी अर्थात् माघ माघ में की जाती है, जिसे ‘बामनदेव’ भी कहते हैं। इस पूजा को केवल कमार गाँव का मुखिया ही करता है। इस पूजा का उद्देश्य गाँव की सुख-शांति को कायम रखने के लिए देव से प्रार्थना करना है। गाँव का मुखिया गाँव के समस्त घरों में जाकर चावल, मुर्गे, मुर्गी, बकरा, बकरी (सबकी श्रद्धानुसार) एकत्रित करता है। गाँव से वह तीर्थ स्थल ‘देव डोंगर’ एकत्रित सामग्री को लेकर जाता है। देव डोंगर में अन्य स्थानों से आये गाँवों के मुखिया अपने साथ लायी गई सामग्री को एक स्थान पर एकत्रित करते हैं। सम्पूर्ण चावल को पकाया जाता है, बैगा द्वारा एक के बाद एक बलि (कटरा) दी जाती है बलि के समय निकले रक्त को एक पात्र में एकत्रित किया जाता है। इस एकत्रित रक्त को पके चावल में बैगा की उपस्थिति में मिलाया जाता है। चावल मिले रक्त के लड्डू बनाते हैं, समस्त

गाँव के मुखिया देव के समक्ष बैठ लड्डू के प्रसाद को ग्रहण करते हैं।

दंतेश्वरी देवी

बस्तरीन माता या दंतेश्वरी देवी की पूजा नये वर्ष के आगमन के रूप में अर्थात् मार्च-अप्रैल (हिन्दी माह चैत्र) में नवरात्रि के समय किया जाता है। इस पूजा की मुख्य विशेषता यह है कि प्रतिवर्ष इसके स्थान परिवर्तित होते रहते हैं। यह पूजा लगातार नौ दिन तक चलती है, क्योंकि नवीन वर्ष का आगमन हो रहा है, इस कारण महिलाएँ दैनिक वस्तुओं का निर्माण करती हैं और इन्हीं वस्तुओं को वर्ष के अंत तक उपयोग में लाती हैं।

सभी कमार शराब, मुर्गा, बकरा, चावल, धान में से श्रद्धानुसार कुछ भी प्रसाद स्वरूप साथ में लेकर, गाँव के बाहर बूढ़ादेव के स्थान पर एकत्रित होते हैं। बैगा एवं बैगा के सहयोगी पूजा करते हैं यहीं बैगा के सिर देवी आती है और अनेक समस्याओं को हल करती हैं। अंत में बलि दी जाती है, मांस सभी में बांट दिया जाता है। यहाँ पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की संख्या अधिक दिखाई देती है। इसी प्रकार यह पूजा नौ दिन तक चलती रहती है।

माटी देव

कमारों के समस्त देवों में माटी देव का स्थान सर्वोच्च है। किसी भी पूजा में सर्वप्रथम माटी देव की पूजा की जाती है। माटी देव को कहीं धरती माता, माटीमाई, माटीदेव, से संबोधित किया जाता है। यह कमारों की श्रद्धा का केन्द्र है, क्योंकि इनकी मान्यता है कि समस्त पूर्वज इसी माटी के अंदर सुरक्षित हैं और माटी देव के रूप में अपने पूर्वजों की पूजा करते हैं। यह पूजा सामान्यतः आषाढ़ माह अर्थात् जून-जुलाई में होती है, जिसका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि माटी से फसल का उत्पादन अधिक हो एवं गाँव में माता का प्रकोप (चेचक) न हो। इस पूजा को गाँव का मुखिया एवं बैगा साथ-साथ करते हैं। समस्त कमार मुखिया के साथ खेतों में जाते हैं, वहाँ धान की बालियों के साथ बैगा भूमि पर फल (नारियल) मुर्गी रखता है। भूमि पर चावल के दाने छिड़कता है, उसी भूमि पर नारियल फोड़कर मुर्गी की बलि देता है। वहाँ से धान की बालियों को उठाकर प्रत्येक घर में लगाता है, साथ ही प्रार्थना करता है कि 'तुम्हारी फसल माटी देव की कृपा से अच्छी हो।' बाली लगाने के बाद कमार भेंट में चावल बैगा को देते हैं। कमारों

की मान्यता यह भी है कि गाँव में माता का प्रकोप (चेचक) भी माटी माई की वक्रदृष्टि से होता है। इसलिए कमार गाँव वनमार्ग पर (वन के समीप) माटीमाई की स्थापना करते हैं। यहाँ वे धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, इन अनुष्ठानों में सभी कमार एकत्रित होकर माटीमाई के स्थल तक पहुँचते हैं, जिसे 'माता पहुचनी' कहा जाता है। पूर्व में जो 'बदना' (मन्नत) माना गया था, आज के दिन अक्सर कमार वो 'बदना' पूर्ण करते हैं। इसी दिन माता के मंदिर में जिसे 'मतागुड़ी' कहा जाता है, बैगा द्वारा बलि दी जाती है एवं सभी प्रार्थना करते हैं कि 'माता हमारी प्रकोप से रक्षा करना।'

धनु कांड

वर्ष में दो बार धनुकांड एवं शिकार में उपयोगी वस्तुओं की पूजा की जाती है, धनुकांड पूजा में गाँव से बाहर माटीदेव 'मातगुड़ी' स्थल पर सभी कमार भाँति-भाँति प्रकार के धनु कांड लेकर एकत्रित होते हैं, वहाँ उपस्थित 'बैगा' और 'सिरहा' पूजा करते हैं। बैगा जोर-जोर से देव का आह्वान करता है, वहाँ बैठे कमारों में से किसी के भी सिर पर देव आते हैं और सभी उनसे अपनी अपनी समस्याओं को लेकर प्रश्न पूछते हैं। देव सभी समस्याओं का समाधान करते हुए उन्हें विगत वर्षों की त्रुटियों के विषय में भी बताते हैं। बलि के लिए मुर्गा-मुर्गी, बकरा-बकरी को पूर्व से ही तैयार रखा जाता है, जिसके सिर देव आते हैं, वह कमार देव के रहते-रहते अपने हाथ से उन जीवों को चावल खिलाते हैं। इन चावलों को 'आखत' कहते हैं, जो जीव आखत ग्रहण करता है, मात्र उन्हीं जीवों की बलि दी जाती है, अन्य की नहीं।

कमार यह मानते हैं कि इन्हीं धनु कांड के सहारे वे जंगलों में निर्भय होकर भ्रमण करते हैं और इन्हीं से उनके उदर की क्षुधा भी शांत होती है, अतः धनुकांड की पूजा में वे धरती माता से प्रार्थना करते हैं कि 'उनके धनुकांड हमेशा उनके साथ रहें और वे निर्भर हो जंगलों में विचरण करें।' इसी पूजा के अवसर पर अबोध बालकों को भी धनुकांड प्रदान किये जाते हैं और परिवार के सदस्य उन्हें धनुविद्या में पारंगत करते हैं। धनु कांड की पूजा आषाढ़ में अर्थात् जून-जुलाई के माह में होती है।

बूढ़ा देव

कमार बूढ़ा देव की पूजा नवम्बर-दिसम्बर माह में करते हैं। बूढ़ा देव जंगल के आंतरिक स्थानों पर स्थित रहते हैं। कमार इस

स्थान पर जत्रा निकालते हैं। इस अनुष्ठान को विपदाओं से बचने के लिए करते हैं। बूढ़ा देव के समक्ष बैगा एवं सिरहा रहते हैं। कमार भेंट की वस्तुएँ बूढ़ा देव को बैगा के माध्यम से चढ़ाते हैं। बैगा भेंट सिरहा को देते हैं, सिरहा बलि योग्य भेंट बलि चढ़ा देता है। बूढ़ा देव के पास कमारों को नारियल की भेंट लाना आवश्यक है। नारियल फोड़कर बचे हुए नारियल को घर ले जाते हैं। मांस वहीं खाया जाता है। महिलाएँ इस पूजा में शामिल नहीं होती।

कमारों के बूढ़ा देव लकड़ी से बनी विशिष्ट आकृति होती है। इस विशिष्ट आकृति के दोनों ओर दो-दो लकड़ी की आकृतियाँ होती हैं, जिसे बूढ़ा देव कहते हैं।

दुल्हा देव

दुल्हा देव की पूजा प्रायः विवाह से पूर्व होती है। विवाह के दिन बैगा यह अनुष्ठान कराता है, इसमें विवाह में पधारे मेहमान शामिल होते हैं। खाना बनाने के लिये चूल्हे की पूजा के रूप में दुल्हा देव की पूजा की जाती है। मान्यता है कि इस पूजा से विवाह में आहार की कमी नहीं होती। विवाह संबंधी समस्त कार्य आसानी से बिना किसी बाधा के पूर्ण हो जाते हैं।

शितला माता

तालाब के किनारे शितला माता का स्थान होता है। शितला

माता खुले स्थान पर नहीं होती। इसके दर्शन भी समय-समय पर ही किये जा सकते हैं। तालाब के तट पर एक मंदिर के समान कक्ष होता है, जिसमें माता का वास रहता है। इस मंदिर के पट (दरवाजे) हमेशा बंद रहते हैं। किन्हीं विशिष्ट कारणों से, विशिष्ट पर्व पर, आयोजनों पर एवं समस्याओं के निदान के लिए ही बैगा इस मंदिर के पट खोलता है। कमारों के सभी देवी-देवता जंगलों में ही पाये जाते हैं, अतः धार्मिक कार्य भी वनों में ही होते हैं। वनों में ही आत्मा का निवास होता है। इनके प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान का संबंध आत्मा से, आत्मा का संबंध वन से होने के कारण धर्म के नाते ही सही, ये सीधे वनों से जुड़े रहते हैं। वन के प्रत्येक परिवर्तन की इन्हें खबर रहती है।

प्रत्येक ईश्वर की आराधना में कमार यह इच्छा जरूर व्यक्त करते हैं कि उनके वन कंदमूलों से, बांस से, जानवरों से, फलों-फूलों से, वनोपज से सदा भरे रहें, ताकि उनका जीवन सुचारू रूप से चले। वे वनों से प्राप्त आपदाओं से भी सुरक्षित रखने की ईश्वर से कामना करते हैं। वन कमारों के अभिन्न अंग हैं, इसी कारण धार्मिक कार्य को भी वनों से सम्बद्ध किया है।

कमार जाति में ज्येष्ठ माह (जून) में कभी भी किसी भी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान एवं उत्सव नहीं मनाये जाते।

स्वतंत्रता संग्राम और संत

जीवन सिंह ठाकुर

अंग्रेजी साम्राज्यवाद की मंशा को भारतीय जन समुदाय अच्छी तरह समझ गया था। 1857 के महासागर के पूर्व से ही भारतीय जनता ने ब्रिटिश प्रभाव तथा उसके शोषणकारी शिकंजे के खिलाफ बगावत शुरू कर दी थी। यह बगावतें भारत के हर हिस्से में हुईं, इनका स्वरूप अखिल भारतीय और राष्ट्रीय था। 1857 से 1900 के बीच देश में स्वतंत्रता के गंभीर प्रयास हुए। संथाल परगने के वनवासियों का ब्रिटिशदासता के खिलाफ जन विद्रोह, वीर बिरसामुंडा के नेतृत्व में झारखण्ड में चला आंदोलन इसी बीच संन्यासी विद्रोह, राजाराम मोहनराय का आंदोलन, विवेकानन्द का उदय, प्रेमचन्द शरद चन्द्र, बंकीम, नजरूल इस्लाम, रवीन्द्र, देवकीनन्दन खत्री की लेखनी ने अपार जनचेतना का संचार किया था।

बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यभारत, आन्ध्र, केरल, मैसूर में अखबारों का प्रकाशन शुरू हो गया था। विशिष्ट जनचेतना का स्तर काफी ऊँचा हो गया था। क्या ऐसे में कल्पना कर सकते हैं कि देश के साधु-संन्यासी, घूणी, आश्रम प्रभावित नहीं हुए होंगे? गहराई से देखें और विश्लेषण करें तो पता चलता है कि घूणियों, संतों, साधुओं के ठिकानों ने बहुत बड़ी भूमिका स्वतंत्रता संग्राम में निभाई है। नाथों, उदासियों की घूणियाँ वैसे तो आध्यात्म के पवित्र केन्द्र थे। सिद्ध संतों के ठिकाने थे। इन साधना स्थलियों से जन सामान्य तथा सभी वर्ग श्रद्धा भक्ति भाव से जुड़े थे। लेकिन यहाँ के सतसंग, भजनों, लोगों के आवागमन, बातचीत ने सामाजिक चेतना में गहरी भूमिका निभाई। स्वतंत्रता, स्वाभिमान, विनम्रता का भाव संचार इन संतों, नाथ सिद्धों, साधुओं के द्वारा हुआ है। इसका सीधा प्रभाव भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को तीव्र तथा रचनात्मकता को बढ़ाने वाला रहा है। 1900 से 1947 के समय का विश्लेषण करें तो यह सत्य आश्चर्यजनक रूप से सामने आता है कि जहाँ-जहाँ घूणियाँ थीं, संतसंग होते थे, प्रवचन होते थे। उन क्षेत्रों में स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन तीव्र, प्रभावी और व्यापक हुआ है।

मालवा में नाथों की घूणी, उदासियों की घूणियाँ, रामदेवजी, तेजाजी के भजन गायक, कबीर, नानक पंथियों की मंडलियों, फकीरों के गीतों ने व्यापक चेतना के विकास में सशक्त कार्य किया। इंदौर में नाथ पंथी सदगुरु शीलनाथ जी 1899 तक रहे, वहाँ आज

भी शीलनाथ कैंप है। 1899 में शीलनाथ जी का देवास आगमन हुआ। देवास छोटी पांती (ज्यूनियर रियासत) के महाराज मल्हारराव पवार को शीलनाथ जी को लाने का श्रेय जाता है। आम जनता भी शीलनाथ जी के प्रति श्रद्धा भाव से भरी हुई थी। कालांतर में मल्हारराव पवार ने राजपाट छोड़ संन्यास ले लिया था। देवास क्षेत्र के लिये यह समय काफी महत्वपूर्ण था। देवास तथा मालवा में 1857 के समर का व्यापक असर था, वहीं तिलक युग की सक्रियता का गवाह देवास था। 1915 के बाद गांधी युग का जबरदस्त असर हुआ। 1928 के बाद समाजवादी विचार धारा, कांग्रेसी, खादीप्रचार, किसान संगठनों, को गति मिली थी। उन दिनों के मालवी लोक जीवन में राष्ट्रीय चेतना कैसी थी। शीलनाथ तथा घूणी का कितना प्रभाव था, वह स्वतंत्रता इतिहास लेखन, सामाजिक प्रभाव, राजनैतिक चेतना विकास की व्यापक भूमि के अध्ययन, शोध, दस्तावेजीकरण के सशक्त आधार देता है। 1919 में जलियांवाला बाग के काण्ड ने देवास के आमजन को व्यथित कर दिया था, उन दिनों का यह मालवी गीत देखने-सुनने लायक है-

चार चक्की चांदी की
चांदी की रेऽऽऽ
जय बोलो महात्मा गांधी की
गांधी की रेऽऽऽ
सगला के हेला पाड़ो
हेला पाड़ोऽऽऽ
गोकी खेले रांकस
टप टपा टप पड़िगिया
भैया भाभी रेऽऽऽ
गेंदी के बोलो
ईदी के बोलो.....
हेला पाड़ो रेऽऽऽ
चार..... चक्की..... चांदी.....

शीलनाथ का 1899 में देवास आगमन हुआ। 1920 तक वे देवास में रहे। इस बीच मालवी लोक गीतों में आध्यात्म और स्वतंत्रता संग्राम का अद्भुत दर्शन होता है।

भैया जी तम घूणी पे जाजो
(जाजो रेऽऽऽ) लम्बा राग.....

ली जो भभूत लगाय
पेणी के टोपी खादी की
(ओऽऽऽ पेणी के टोपी खादी की.....)
ली जो घणा उठाय.....
(भैया जी घूणी पे जाजा रेऽऽऽ)
लइके हसन लुहार.....
तोड़ी के बेड़ी
मां के लइजा पार.....
भैया जी..... तम..... घूणी पे..... जाजो रेऽऽऽ.....

एक गीत कुछ तरह से भी गाया जाता था.....। इस गीत का काल भी 1900 से 1920 के बीच का ही है।

राम नाम की माका फिर री
बाबा फेरे हाथ
गगन मंडक में बाजा बाजे
चारों खूंट हुंकार
भैया जी घूणी पो जाजो रेऽऽऽ.....
बाबा आसीसे और फेरे माथे हाथ.....
भैयाजी व घूणी पे चालो रेऽऽऽ.....
काटी के बेड़ी, तोड़ी के सांकल
लईजा मां के..... पार.....
भय्या जी..... घूणी पे चालो रेऽऽऽ.....

मालवा अंचल में तेजी से जन चेतना का प्रसार हुआ था। 1920 के बाद राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्रता संग्राम तेज हो रहा था। व्यापक बहस छिड़ी थी। गांधी के हमउम्र कुछ छोटे उम्र की पीढ़ी, नवीन विचारधारा का स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश हुआ था, उसका प्रभाव मालवी के स्थानीय गीतों में बखूबी आया है। 1925 के बाद विशेष कर 1928 के बाद देवास तथा उसके गाँवों में गाया जाने वाला गीत भारत के नवीन रूझान को दर्शाता था।

चार चक्की चांदी की
जय बोलो महात्मा गांधी की
बादशा आया..... आया जे.पी. रेऽऽऽ
लाल धजा है धजा में बेदयो..... किसनो रेऽऽऽ.....
चार चक्की चांदी की
जय बोलो महात्मा गांधी की.....

(इस गीत में 'बादशा' बादशाह खान है, जे.पी. जयप्रकाश नारायण हैं।)

1930 से मालवा तथा देवास में कांग्रेस आंदोलन, क्रांतिकारी गतिविधियाँ समाजवादी प्रभाव व्यापक हुआ था। भजन मण्डलियों, औरतों के गाये जाने वाले गीत, ग्रामीण कार्यकर्ताओं तथा स्थानीय नेताओं को गीतों में स्थान मिला था।

साथी बोल्यो-बोल्यो मांगू जीऽऽऽ
मामा जी आया, बोल्यो शंकर जीऽऽऽ
घर-घर धजा फेराये नाथू रे.....

(लोकगीत में कितनी खूबसूरती से ये पंक्तियाँ सहेज दी हैं।)

जय बोलो महात्मा गांधी की.....
बार जोईरी नानी बाई
अइरिया किसना जी
छानी रइजा.....
आसमान में घूल उड़ी री
अइगिया कृष्णा जी.....
साथी बोल्यो, मांगू बोल्यो, बोल्यो शंकर जी

1930-31 के बाद की घटना को भी देवास क्षेत्र की चेतना ने अपने में समेटा है।

फांसी चढ़ी गया भगत सिंह
गोली खइके पड़िया शेखर जी
टप टप टप आंसू टपके..... गेंदी के
धार-धार रोवे धीसी मांसी.....
लाड़ी कोसे फांसी केऽऽऽ
कूण बोले..... अईरी हिचकी रेऽऽऽ

1934 के बाद के गीतों में स्वतंत्रता की भावना तथा नये भारत का सपना सुस्पष्ट हो गया था।

साथी बोल्यो-बोल्यो शंकर जी
जाणो पेलाड़ी दूर भोत रेऽऽऽ
फर-फर-फर धजा उड़री
जे.पी. अइरिया रेऽऽऽ.....

हुंकार भरिया साथी जी
धजा ली के मांगू दा.....
बेड़ी में जकड़िया मौलाना
डमरू बाज्यो शंकर जी.....
फांसी चढ़ी गया भगत सिंह
गोली खइके पड़िया शेखर जी.....

1941 से 1943 के बीच देवास में किसान सम्मेलनों, सर्वर्ण-अवर्ण सहभोज, प्रभात फेरी होती थी। रियासत में सुधारवादी कार्य जारी थे। उस दौर में युवा मालवी गाते थे, जिस पर समतावादी गांधीवादी प्रभाव स्पष्ट है-

रोटी-बेटी को भेद मिटेगा
हाथे रोटी खावाँगा
एक कुँवा से पाणी भराँगा
सगला भण्णे जावाँगा.....

1945-46 में इन गीतों में एक महत्वपूर्ण पंक्ति जुड़ी थी-

रोटी बेटी को भेद मिटेगा
हाथे रोटी खावाँगा
एक कुँआ से पाणी भराँ
जोखू पाणी पिवेगा
सकला के हेला पाड़ो रे
अबे लहंगो ना मारियो जायेगो
खाण्डो लइके अइरी मां.....
अब डर केसो रेऽऽऽ.....
अमर सर में मेलो भरेगो
लहंगो आवेगो
रोटी बेटी को भेद मिटेगा
हाथे रोटी खावाँगा.....

1945 से 1947 तक मालवा में स्वतंत्रता संग्राम चरम पर था, लेकिन एक नवीन समाज का सपना भी तैर रहा था।

एक पंगत में सगला बैट्या
लाडू परसे लाला जी
ईदी छमा-छम पूरी बांटे
परसे कालू जी.....

पाणी पिवाड़े घूलू
भाजी मेले सुगणा जी
नानी बाई बार जोइरी
अइरिया कृष्णा जी.....
चार चवत्री चांदी की
जय बोलो महात्मा गांधी जी.....

मालवा में संतों ने आत्मविश्वास, स्वाभिमान, स्वतंत्रता का सशक्त भाव विचार दिया था। उसका प्रभाव मालवा के हर हिस्से में दीखता है। व्यापक रूप से गाये जाने वाले मालवी गीत और उनकी रचनाएँ इसके सशक्त प्रमाण हैं।

स्वतंत्रता संग्राम में साहित्य के पात्र

मालवा 1857 से 1947 तक के संघर्षों के हर कदम पर सक्रिय भागीदार रहा है। मालवा का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं रहा, जहाँ औपनिवेशिक साम्राज्यवादी सत्ता के खिलाफ संघर्ष न हुआ हो। मालवा के इस महान योगदान को इतिहासकारों ने जांचा-परखा है। इसे उचित स्थान भी दिया है, लेकिन कई स्थानों पर हुए संघर्ष तथा बलिदानों पर 'ब्रिटिश प्रमाणों' के अभाव में इतिहास 'किन्तु-परन्तु' में उलझे रहे, लेकिन लोकगीतों, कहानियों में इस भूले-बिसरे या भुला दिये गये संघर्ष की दास्तां पूरी ताकत से मौजूद है। जाति बिरादरी के भाटों की पोथियों में कई नाम बल्कि अनेक नाम ऐसे हैं, जो 'शहीद' हैं जिन्हें 'ऑफ द रेकार्ड' क्रूरता से कुचला और मारा गया था। 1957 तक वे लोग जीवित थे, जिन्होंने स्वतंत्रता संघर्ष तथा अंग्रेजी क्रूरता देखी थी। 1948 में 105 वर्षीय वृद्ध बताया करती थी कि शाजापुर से देवास की तरफ आते हुए उसने अनेक झाड़ू देखे थे, जिन पर लाशें ही लाशें टंगी थीं। इस बात की पुष्टि अनेक स्रोतों से होती है। ये गुमनाम शहीद इसलिए शहीद नहीं माने गये, क्योंकि ब्रिटिश दस्तावेजों में दर्ज नहीं हैं। साम्राज्यवाद किसी का सगा नहीं होता, सिर्फ ब्रिटिश दस्तावेजों के आधार पर 'शहीद' न मानना स्वतंत्रता संग्राम के प्रति अवमानना होगी।

देवास जिला स्वतंत्रता के पूर्व पवार, होल्कर, सिंधिया, धार रियासतों में बँटा था। बागली, हारपीपलिया, सोनकच्छ (सिंधियाँ, ग्वालियर रियासत) कन्नौद-खातेगांव (होल्कर-इंदौर रियासत) देवास सीनियर-जूनियर पवार रियासत, उदयनगर, पुंजापुरा, निमनपुर (धार के पवारों का) था। बावजूद 'नर्मदा,

क्षिप्रा, कालीसिंध' का क्षेत्र व्यापक क्षेत्र की भावात्मक एकता का प्रदर्शन करता था। 1857 में इस क्षेत्र ने पूरी एकजुटता प्रकट की थी। स्वतंत्रता के पश्चात् यह समग्र एक जिले में गठित हो गया।

देवास 1857 से 1947 तक स्वतंत्रता संग्राम का सक्रिय क्षेत्र रहा है। इस क्षेत्र में नाथों, उदासियों की धूनियाँ, कबीर भजन मण्डलियाँ, फकीरों के गीत, संज्ञा, मालवी लोकगीतों में 'उसने कहा था' कहानी का पात्र लहनासिंह, वजीरासिंह तथा मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुँआ' का पात्र 'जोखू' लोकगीतों में दाखिल हो गया था। साहित्य के इन पात्रों का लोकगीतों, मालवी जनमानस में पैठ एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक घटना है।

लहना सिंह जैसा देश का शानदार बेटा, उच्च नैतिक मूल्यों वाले बहादुर सिपाही को जनमानस आदर सम्मान तो देता है लेकिन साम्राज्यवादियों की सेना में दूर बेल्लिजयम में उसका मारा जाना मालवी मन को दुखी कर गया था। उसी तरह 'जोखू' को कुँए से पानी नहीं देना और मजबूरन नाले का गंदा पानी पीना..... मालवी मन और स्वतंत्रता के समर की जमीन को गहरे तक झकझोर गया था। इसीलिये इन दोनों महत्वपूर्ण कहानियों के पात्र मालवा के लोकगीतों में आशा के प्रतीक स्वतंत्रता के बाद बनने वाले भारतीय समाज का आधार प्रस्तुत कर रहे थे।

कहानी (स्व. चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' जी की 'उसने कहा था') में लहना सिंह शहीद हो जाता है, लेकिन 'मालवा' के लोक जीवन में वह वापस आने की प्रतीक्षा में है। देश में स्वतंत्रता संग्राम तीव्र हो रहा है। लहना सिंह की वापसी और वजीरा सिंह की भी प्रतीक्षा है। कहानी में वजीरासिंह, लहना को पानी पिलाता है।

रोटी बेटी को भेद मिटेगो
हाथें रोटी खावांगा
एक कुँआ से पाणी भराँगा।
जोखू पाणी पीवेगो
'अमर सर' में मेलो भरेगो
लहणो आवेगा
रोटी बेटी को भेद मिटेगो
हाथें रोटी खावांगा
तीस (प्यास) लागी री लहणा के
वाजीरों पाणी पीवाड़े

कुँआ मेरे (पास) खड़ियों वजीरो
जोखू पाणी पीवे रे
अमरसर (अमृतसर) में मेलो भरेगा
लहणो आवेगो।
बाट जोदूरी (रास्ता देख रही) नानी बाई
किसनों आवेगो

मालवा के स्वतंत्रता संग्राम में लोक जीवन के लोक सांस्कृतिक पक्ष ने बेहद रचनात्मक भूमिका निभाई थी। उक्त गीत में हिन्दी की दो श्रेष्ठ कहानियों के पात्र भी हैं तो नृसिंह मेहता के भजन की पंक्तियाँ भी गुंफित हैं। नानी बाई कृष्ण और पिता की तीव्रता बेचैनी से प्रतीक्षा करती है, यहाँ आजादी की प्रतीक्षा है साम्राज्यवाद से और जातिवाद से 'स्वतंत्रता संग्राम' है।

खाटू श्याम बाबा

बी.एल. द्विवेदी

पौराणिक आख्यान के अनुसार प्राग्जोतिषपुर में मुर नामक दैत्य निवास करता था, जो अत्यधिक बलशाली तथा पराक्रमी था। वह श्रीकृष्ण के द्वारा मारा गया। उसके मारे जाने पर उसकी पुत्री मौर्वी युद्ध करने आई। भगवान के साङ्ग धनुष से निकले सभी बाणों को उसने अपने खड्ग से ही काट दिया, तब उसका वध करने के लिये भगवान ने अपना सुदर्शन चक्र उठाया। उसी समय कामाख्या देवी ने प्रकट होकर उन्हें वर्जित किया। उन्होंने कहा कि मौर्वी को खड्ग और खेटका उन्हीं ने प्रदान किये हैं, जो अजेय हैं।

मौर्वी को उन्होंने कहा कि श्रीकृष्ण उसके भावी ससुर हैं, उसका विवाह भीमपुत्र घटोत्कच से होने का विधान है। अतः उनसे युद्ध करना उसके लिये अनुचित है। देवी के ऐसा कहने पर मौर्वी (कामकटकटा) ने क्रोध त्याग दिया तथा उन्हें प्रणाम किया।

मौर्वी ने प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति उसको किसी प्रश्न पर निरूत्तर कर देगा तथा उसी के समान बलवान होगा, वही उसका पति होगा।

घटोत्कच पांडवों से मिलने इन्द्रप्रस्थ गया। वहाँ उसे मौर्वी के बारे में जानकारी मिली। सभी पांडवों तथा श्रीकृष्ण से आशीर्वाद लेकर वह अपने साथियों सूर्याक्ष, बालाख्य तथा महोदय के साथ आकाशमार्ग से प्राग्जोतिषपुर पहुँचा। वहाँ उसने मौर्वी के कंचन महल पहुँचकर ऐसी उलझाने वाली कथा कही, जिसका उत्तर वह न दे सकी। पश्चात् उसने बल का प्रयोग किया, परन्तु वह परास्त हुई।

तदुपरान्त वे इन्द्रप्रस्थ गये, वहाँ गुरुजनों के समक्ष उनका विवाह हुआ। फिर अपने राज्य हिडिम्बनगर को चले गये। कालान्तर में उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई, जो जन्म से ही जवान हो गया। उसके बाल खूब घुँघराले (बर्वराकार) थे, अतः उसका नाम बर्वरीक रखा गया।

कुछ समय पश्चात् वे दोनों पिता और पुत्र द्वारा गये। वहाँ बर्वरीक ने श्रीकृष्ण से अनेक प्रश्न किये तथा क्षत्रियों के योग्य कर्म

के बारे में पूछा। श्रीकृष्ण ने कहा- क्षत्रियों के लिये बल ही प्रधान है। बल से दुष्टों का दमन तथा साधुओं का संरक्षण ही क्षत्रियों के लिये श्रेष्ठ कर्म है। अभीष्ट की प्राप्ति के लिये महीसागर संगम (गुप्तक्षेत्र) में नौ दुर्गाओं की उपासना का उसे उपदेश दिया।

वहाँ उसने तीन वर्ष तक देवियों की आराधना की। देवियाँ प्रसन्न होकर उसे दुर्लभ बल प्रदान किया तथा उसे वहाँ रहकर 'विजय' नामक आराधक की प्रतीक्षा करने को कहा।

मगध के ब्राह्मण साधक विजय का आगमन हुआ। विजय ने सिद्धाम्बिका देवी, फिर अपराजिया नामक वैष्णवी महाविद्या का जप किया। उसकी साधना में अनेक विघ्न, बाधाएँ आईं, उन्हें बर्बरीक ने पराजित कर दूर किया। अन्ततः विजय को वांछित सिद्धि प्राप्त हुई।

विजय के होम कुण्ड से प्राप्त सिन्दूर के समान लाल सात्विक एवं पवित्र भस्म बर्बरीक को प्रदान किया तथा आश्वस्त किया कि युद्धभूमि में उसे छोड़ देने पर, शत्रु के स्थान पर मृत्यु ही क्यों न उपस्थित हो, वह उसे भी नष्ट कर देगा।

उस आख्यानक के अनुसार मेरु पर्वत पर पृथ्वी ने सभी देवताओं से उसका भार उतारने की प्रार्थना की। ब्रह्मा ने भगवान विष्णु से अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारने की प्रार्थना की। उसी समय वहाँ उपस्थित सूर्यपर्वा नामक एक यक्ष ने कहा कि वह अकेला ही मनुष्य लोक में अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतार सकता है। देवताओं तथा भगवान को अवतार लेने की क्या आवश्यकता है। ब्रह्मा जी ने क्रोधित होकर उससे कहा कि जो कार्य समस्त देवताओं के लिये भी कठिन है, उसे वह अकेला ही कर सकता है, यह मात्र उसका अहं एवं कुचेष्टा है। उन्होंने उसे शाप दिया कि पृथ्वी का भार उतारते समय जब युद्ध प्रारम्भ होगा, उस समय भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उसके शरीर का विनाश होगा। उसी सूर्यपर्वा ने बर्बरीक के रूप में जन्म लिया, जिसका श्रीकृष्ण द्वारा वध किया गया।

जिस समय महाभारत युद्ध से पूर्व सभी पाण्डव तथा श्रीकृष्ण एकत्र हुये, उस समय कौरव-पाण्डव उभय सेनाओं के परमवीरों की क्षमता का आकलन इस प्रकार किया गया-

कौरव सेना के वीरों-भीष्म पितामह तथा कृपाचार्य ने समस्त

पाण्डवों सहित उनकी पूरी सेना का संहार एक साथ करने की प्रतिज्ञा की। द्रोणाचार्य ने पन्द्रह दिनों में, अश्वत्थामा ने दस दिनों में, कर्ण ने छः दिनों में सेना सहित पाण्डवों को मारने की घोषणा की।

युधिष्ठिर ने इसके प्रत्युत्तर में जानना चाहा कि उनकी सेना के वीरों का क्या कथन है। अर्जुन ने कहा कि युद्ध में इस प्रकार की घोषणा का कोई औचित्य नहीं है। पाण्डव पक्ष में भी दुपद्र, विराट, कैकेय, सहदेव, सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, घटोत्कच आदि ऐसे वीर हैं जो समूची कौरव सेना का संहार करने में समर्थ हैं। जहाँ तक उनका प्रश्न है, वे अकेले ही समस्त कौरवों को एक दिन में नष्ट कर सकते हैं।

इस पर बर्बरीक ने कहा कि वे लोग शान्त रहें, वे अकेले ही एक मुहूर्त में पूरी कौरव सेना को नष्ट कर सकते हैं। तब श्रीकृष्ण ने बर्बरीक से पूछा कि भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि महावीरों से रक्षित सेना को परास्त करना किसी के लिये भी दुष्कर कार्य है। अतः वह बताये कि उसके पास ऐसा कौन सा उपाय है, जिससे वह मुहूर्त भर में उसका नाश कर सकता है।

जिस पर बर्बरीक ने तुरंत ही धनुष चढ़ाया, उस पर बाण का संधान किया, फिर उसने बाण को लाल रंग के भस्म से भर दिया। उसने बाण छोड़ा, उसने जो भस्म उड़ी, वह दोनों सेनाओं के मर्मस्थलों पर गिरी। केवल पाँच पाण्डव, कृपाचार्य और अश्वत्थामा के शरीर से उसका स्पर्श नहीं हुआ। तब बर्बरीक ने कहा कि वह देवी के दिये हुये तीखे एवं अमोघ वाणों से सभी को मृत्युलोक भेज देगा।

सभी को बड़ा विस्मय हुआ, वे बर्बरीक को साधुवाद देने लगे, लेकिन श्रीकृष्ण ने क्रोधित हो सुदर्शन से उसका सिर काट दिया। किसी को पता भी नहीं चला कि क्या हुआ। सभी पाण्डव दुखित हो आंसू बहाने लगे। घटोत्कच तो शोक से मूर्छित होकर गिर पड़ा।

उसी समय सिद्धाम्बिका आदि चौदह देवियाँ प्रकट हुईं। जिन्होंने घटोत्कच को शान्त किया तथा मेरु पर्वत के यक्ष वाली घटना से अवगत कराया। देवियों ने अमृत से सिंचित कर बर्बरीक

के सिर को जीवित कर दिया। बर्बरीक ने युद्ध देखने की इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्ण ने उसके शीश को पर्वत शिखर पर स्थापित कर दिया तथा वहीं से पूरा युद्ध देखने को कहा। उसे यह भी वरदान दिया कि जब तक सूर्य चन्द्र विद्यमान रहेंगे, तब तक वह सभी के द्वारा पूजित होगा।

इस प्रकार के विवरण स्कन्ध पुराण आदि में प्राप्त होते हैं। परन्तु इस प्रकार के पौराणिक अख्यानों में कहीं न कहीं विसंगति प्रतीत होती है। जैसे बर्बरीक की घोर तपस्या के उपरान्त विजय की सेवा में प्रयुक्त करना, किस हेतु तथा स्वयं विजय की तपस्या का उद्देश्य तथा अकारण ही श्रीकृष्ण द्वारा उसका वध कर देना आदि।

वास्तव में लोक कथानक, लोक मान्यता तथा लोकप्रसिद्धि पौराणिक कथानकों से कम महत्वपूर्ण नहीं होती। इस प्रकार की मान्यता का स्रोत कहीं न कहीं लोक मानस से उद्भूत प्रतीत होती है। उसका आधार चाहे जो हो निश्चित की उसकी जड़ें कहीं गहरे विद्यमान होती हैं। बर्बरीक का राक्षस से देवत्व प्राप्ति के पीछे उनका लोक कल्याणकारी स्वरूप मुख्य कारण है। आज वे श्याम बाबा के नाम से जाने जाते हैं। वे हारे हुआओं के सहारा हैं, जो व्यक्ति सब ओर से निराश हो श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी शरण जाता है, उसकी हर मनोकामना पूर्ण होती है।

भीम के पौत्र, घटोत्कच पुत्र बर्बरीक एक अजेय योद्धा थे। उन्हें भगवान शिव एवं माँ दुर्गा का प्रत्यक्ष आशीर्वाद प्राप्त था। इनसे इनको तीन बाण प्राप्त हुये थे, जिनसे वे त्रिलोकी का संहार कर सकते थे।

महाभारत युद्ध की घोषणा हो जाने पर वे नीले घोड़े पर सवार होकर युद्ध देखने घर से निकले। बर्बरीक की माता को पाण्डवों की जीत पर संदेह था। इसलिये उन्होंने बर्बरीक से कहा कि बेटा युद्ध देखने भले जाओ, पर अगर युद्ध करना पड़े तो तुम हारने वाले का साथ देना, मन तो यही था कि पाण्डवों की ओर से लड़ना, पर खुलकर नहीं कहा। मातृभक्त पुत्र ने हारे का साथ देने का वचन दिया। अन्तर्यामी भगवान श्रीकृष्ण ने सोचा कि बर्बरीक युद्ध देखने निकले हैं और उन्होंने अपनी माता को हारे का साथ देने का वचन दिया था। युद्ध में दिये वचन के अनुसार, अगर वे कौरवों की तरफ से युद्ध करने लगे तो पाण्डवों की हार निश्चित है,

उन्हें कोई नहीं बचा सकता। उन्होंने माया रची। ब्रह्मण का भेष धारणकर वे बर्बरीक से मार्ग में मिले। बर्बरीक से भेंट होने पर उनका परिचय पूछा। बर्बरीक ने अपने बल-पौरुष तथा वीरता के साथ अपनी दानशीलता का भी परिचय दिया।

भगवान ने बर्बरीक से अपनी वीरता का प्रत्यक्ष परिचय देने को कहा। बर्बरीक ने एक ही बाण से समस्त सृष्टि का संहार करने की बात कही। भगवान ने कहा कि ऐसा करना किसी के लिए असंभव है। अगर वे ऐसा कर सकने में समर्थ हैं तो सामने स्थित पीपल के पेड़ के सभी पत्तों को वेधकर दिखायें। एक पत्ता उन्होंने अपने पैर के नीचे छिया लिया। परन्तु बर्बरीक ने जब एक ही बाण से सभी पत्तों को वेध दिया, यहाँ तक पैर के नीचे छिपे पत्तों को भी, तो वे आश्चर्यचकित रह गये।

ब्राह्मण भेषधारी श्रीकृष्ण ने उनकी प्रशंसा करते हुये आशीर्वाद दिया तथा उनकी अगर कोई इच्छा हो तो कहें। बर्बरीक ने सोचा कि एक ब्राह्मण भला उन्हें क्या दे सकता है। ब्राह्मण को ही अगर कुछ चाहिए दे सकते हैं। श्रीकृष्ण ने उनसे वचन ले लिया और कहा वे जो भी मांगेंगे उसे पूरा करना उनका धर्म है। इस प्रकार बर्बरीक के वचनबद्ध हो जाने पर श्रीकृष्ण ने कहा कि उन्हें उनका शीश चाहिये।

बर्बरीक आश्चर्यचकित रह गये, वे समझ गये कि उनके समक्ष उपस्थित व्यक्ति ब्राह्मण हो नहीं सकता। निश्चित ही यह कोई मायावी पुरुष है। परन्तु उन्होंने विनम्र भाव से कहा कि भगवान आपको मेरे शीश से क्या प्रयोजन है? आप ब्राह्मण हो नहीं सकते कृपया अपने को प्रकट होकर उनकी शंका का निवारण करें।

श्रीकृष्ण ने अपना रूप प्रकट किया और कहा- महाभारत युद्ध के लिये एक वीर की भी बलि चाहिये। तुम पाण्डव कुल के हो, इस बलिदान के लिये सदैव याद किये जाओगे।

बर्बरीक ने शीश दान से पहले युद्ध देखने की इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्ण ने तथास्तु कहकर उन्हें संतुष्ट किया। वीर बर्बरीक ने अपने देवी-देवताओं को नमन किया, अपनी माता को नमन किया और कमर से कटार निकालकर, अपने शीश को धड़ से अलग कर श्रीकृष्ण को दान कर दिया। वीर बलिदान का एक अद्भुत कृत्य

जो न कभी हुआ, न भविष्य में होगा। श्रीकृष्ण ने शीश को अपने हाथों में उठा लिया और उसे अमर करते हुये निकट स्थित पहाड़ी पर स्थापित कर दिया तथा दिव्यदृष्टि प्रदान की, ताकि पूरा युद्ध देख सके।

युद्ध प्रारंभ हुआ, युद्ध के दौरान अनेक लीलाएँ घटती रहीं। चाहे भीष्म का पतन हो या द्रोण, कर्ण, जयद्रथ वध अथवा दुर्योधन का परामण। पाण्डव एवं कौरव पक्ष की अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ अठारह दिन में समाप्त हो गईं। पाण्डवों की जीत हुई, कौरवों की हार।

विजयीभाव में सभी पाण्डव मतवाले हो रहे थे। सभी विजय का श्रेय स्वयं लेना चाहते थे। निर्णय के लिये सभी पाण्डव श्रीकृष्ण के पास पहुँचे। श्रीकृष्ण ने कहा कि वे रथ संचालन में व्यस्त रहते थे, अतः पूरा युद्ध कैसे देख पाते? हाँ, बर्बरीक ने पूरा युद्ध देखा है, निर्णय के लिये उन्हीं के पास चलें।

श्रीकृष्ण के बर्बरीक से पाण्डवों के पराक्रम के बारे में पूछने पर शीश ने उत्तर दिया कि उन्हें तो एक व्यक्ति युद्ध करते दिखाई दिया, जिसका सुदर्शन चक्र हर ओर नाच रहा था। उसी ने सबका संहार किया। और जगदम्बा खप्पर भर-भर कर लहू पान कर रही थी। ये लोग तो कहीं नजर नहीं आयें।

पाण्डवों के शीश शर्म से झुक गये। श्रीकृष्ण ने बर्बरीक को अपना नाम श्याम तथा शक्तियाँ प्रदान कीं तथा कलयुग में घर-घर पूजे जाने का वरदान दिया। उन्होंने घोषणा की 'बर्बरीक तुमसे बड़ा दानी आज तक न धरती पर हुआ है, न भविष्य में होगा। माँ को दिये वचन के अनुसार तुम हारे हुए का सहारा बनेंगे। श्रद्धा-भक्तिपूर्वक तुम्हारे द्वार पर कोई भी जो मांगेगा, उसे वह मिलेगा।

कोई भी खाली झोली लेकर वापस नहीं जायेगा। तुम्हारे दर पर सभी की इच्छाएँ पूरी होंगी।'

कालान्तर में वही शीश खाटूग्राम में प्रकट हुआ। कहा जाता है कि खाटूग्राम में स्थित श्याम बाबा का नित नया रूप देखने को मिलता है। राजस्थान के खाटूग्राम में बर्बरीक का अतिप्रसिद्ध मंदिर है, जिसकी अत्यधिक मान्यता है, वहाँ दर्शन करने वालों की सभी मनौतियाँ पूरी होती हैं। वह जन-जन की आस्था का केन्द्र बना हुआ है। अब तो बर्बरीक मंदिर अन्य स्थानों पर बन चुके हैं। अतः जिस प्रकार की लोकमान्यता उन्हें प्राप्त हो रही है, उसका कोई विशेष कारण होना चाहिये, जिसने उनके इस प्रकार के लोक कल्याण तथा लोकरंजन स्वरूप को स्थापित किया है।

खाटूग्राम राजस्थान के सीकर जिले में है, जहाँ इनका मुख्य मंदिर है, वहीं एक कुण्ड भी है जो श्याम कुण्ड के नाम से विख्यात है। वहीं से शीश प्रकट हुआ था। कुण्ड में स्नान करने से सभी कष्टों का निवारण होता है।

राजस्थान में जहाँ इन्हें शीश के दानी श्याम बाबा के नाम से जाना जाता है, वहीं गुजरात में इन्हें बलियादेव (बलि देने वाले देव) के नाम से जाना जाता है।

आज तो श्याम बाबा के मन्दिर कोने-कोने में हैं, पर मुख्य मंदिर खाटूग्राम में है। अतः यह खाटू धाम के नाम से जाना जाता है।

राजस्थान, हरियाणा तथा पंजाब में इनके मानने वाले बहुतायत में हैं, जो श्याम बाबा के दर्शनों के लिये खाटूधाम नियमपूर्वक आते रहते हैं। वैसे उन्हें मानने वाले पूरे भारत में हैं।